

**“HINDI EVAM AFRO-AMERICAN STREE KAVITAON
KA TULNATMAK ADHYAYAN (DALIT EVAM
ASHVET KAVITA KE VISHESH SANDARBH MEIN)”**

A Thesis submitted in Partial Fulfilment of the Requirement for the
degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY
in Hindi



2021
Submitted By
SUNITA PRADHAN
14HHPH06

Supervisor
Prof. V. KRISHNA

Department of Hindi, School of Humanities
University of Hyderabad
P.O. Central University, Gachibowli,
Hyderabad-500046
Telangana State, India

**“हिंदी एवं अफ़्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं का तुलनात्मक
अध्ययन (दलित एवं अश्वेत कविता के विशेष संदर्भ में)”**

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-
प्रबंध)



शोधार्थी
सुनीता प्रधान
14HHPH06

शोध-निर्देशक
प्रो. वी.कृष्ण
हिंदी विभाग, मानविकी संकाय
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद- 500046

विभागाध्यक्ष
प्रो. गजेन्द्र कुमार पाठक
हिंदी विभाग, मानविकी संकाय
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद- 50046

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद-500046



DECLARATION

I, **SUNITA PRADHAN** hereby declare that the thesis entitled “**HINDI EVAM AFRO-AMERICAN STREE KAVITAON KA TULNATMAK ADHYAYAN (DALIT EVAM ASHNET KAVITA KE VISHESH SANDARBH MEIN)**”

“हिंदी एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कवितों का तुलनात्मक अध्ययन (दलित एवं अश्वेत कविता के विशेष संदर्भ में)” submitted by me under the guidance and supervision of Professor V. KRISHNA is a bonafide research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in shodhganga/INFLIBNET.

Date: 10/03/2021

Signature of Supervisor

Signature of the Student

SUNITA PRADHAN

Regd. No. 14HHPH06



CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled “**HINDI EVAM AFRO-AMERICAN STREE KAVITAON KA TULNATMAK ADHYAYAN (DALIT EVAM ASHVET KAVITA KE VISHESH SANDARBH MEIN)**”

“हिंदी एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन (दलित एवं अश्वेत कविता के विशेष संदर्भ में)” submitted by **SUNITA PRADHAN** bearing Regd. No. 14HHPH06 in partial fulfillment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in HINDI is a bonafide work carried out by her under my supervision and guidance which is a plagiarism free thesis.

As far as we know the thesis has not been submitted previously in part or full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of Supervisor

Head of the Department

Dean of the school of Humanities

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled “**HINDI EVAM AFRO-AMERICAN STREE KAVITAON KA TULNATMAK ADHYAYAN (DALIT EVAM ASHVET KAVITA KE VISHESH SANDARBH MEIN)**” “हिंदी एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन (दलित एवं अश्वेत कविता के विशेष संदर्भ में)” submitted by **SUNITA PRADHAN** bearing Regd. No. **14HHPH06** in partial fulfilment of the requirements for the award of DOCTOR OF PHILOSOPHY in HINDI is a bonafide work carried out by her under my supervision and guidance.

This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for award of any degree or diploma.

Further, the student has the following publication(s) before submission of the thesis for adjudication and has produced evidence for the same in the form of acceptance letter or the reprint in the relevant area of his research:

A. Published research paper in the following publications:

1. ‘Afro-American Stree Kavitaon mein Samajik Bhedbhav’. (ISSN: 2348-6163)
2. ‘Dalit Evam Afro-American Stree Kavitaon mein Stree Chetana’. (ISSN: 2394-5303)

B. Research Paper presented in the following conferences:

1. “Aarthik Majaboori se Joojhati Dalit Evam Afro-American Stree ki Asmita” Organized By-Dr. Dodda Seshu Babu, Maulana Azad National Urdu University, 22-23 february 2018 (National)
2. “Afro-American stree se Judi Dalit Stree ki Katha” Organized by- Dr. S.T.Merawade, S.B.Arts & K.C.P.Science College, Vijayapur, 16-17 February 2018 (International).

Further the student has passed the following courses towards fulfilment of coursework requirement for Ph.D.

Course Code	Name	Credit	Result
1. 801	Critical Approaches to Research	4	Pass
2. 802	Research Methodology	4	Pass
3. 803	Research Paper	4	Pass
4. 826	The Ideological Background of Hindi Literature	4	Pass
5. 827	Practical Review of the Texts	4	Pass

The student has also passed M. Phil degree of this university. He studied the following courses in this programme.

Course Code	Name	Grade	Credit	Result
1. 701	Research Methodology and Critical Approaches	B	4	Pass
2. 702	Introduction to Dr. B.R.Ambedkar's Thought	B+	4	Pass
3. 703	Historical and Sociological Study of Indian Adivasi Literature	C	4	Pass
4. 704	Translation and Computing in Hindi	B+	4	Pass
5. 751	Dissertation	A	16	Pass

Therefore, the student has been exempted from repeating Research Methodology course (as recommended by the Research Advisory Committee) in his Ph.D. programme.

Supervisor

Head of Department

Dean of the School

प्राक्कथन

बीसवीं शताब्दी में डॉ. अम्बेडकर ने दो-टुक शब्दों में मूल मंत्र दिया कि, ‘गुलाम को गुलामी का अहसास करा दो, वह क्रांति कर देगा’। यह पंक्ति दुनिया के उस दो बड़े हिस्से की ओर इशारा करती है, जो भारत और अमेरिका के नाम से जाना जाता है। कभी भाषा के नाम पर तो कभी धर्म के नाम पर कभी संप्रदाय के आधार पर तो कभी जाति और नस्ल के आधार पर दुनिया को कई हिस्सों में बाँट दिया गया है। विश्व के इतिहास में अफ्रो-अमेरिकन साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है और इस साहित्य ने ही दलित साहित्य को उभरने की प्रेरणा दी है। जोतिराव फूले ने अपनी पुस्तक ‘गुलामगिरी’ अश्वेत लोगों को समर्पित करते हुए लिखा है कि ‘यूनाइटेड स्टेट्स के उन महान लोगों के सम्मान में, जिन्होंने नीग्रो लोगों को गुलामी से मुक्त कराने के कार्य में उदारता, निष्पक्षता और आत्मत्याग का परिचय दिया। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरे देशवासी उनके इस सराहनीय कार्य का अनुकरण करके अपने शूद्र भाईयों को ब्राह्मणी जाल से मुक्त कराने में अपना सहयोग करें।’

अफ्रीका महाद्वीप के लोगों को गुलाम के रूप में पकड़कर अमेरिका लाया जाता था। इन गुलामों पर अमेरिकी यानी श्वेत लोग जिस प्रकार से जुल्म करते थे, उन जुल्मों की कहानी सुनते ही पत्थर दिल आदमी की आँखें भी नम हो जाँएगी। वे लोग उन गुलामों को जानवर समझकर उनसे हमेशा लात-जूतों से काम लेते थे। वे लोग उन्हें धूप में हल जोतकर उनसे अपनी जमीन जोत-बो लेते थे और यदि उन्होंने मना किया तो उनके बदन पर बैलों की तरह साँटे से घाव उतार देते थे। उन्हें केवल एक समय का खाना मिलता था। वह भी बहुत ही थोड़ा-सा, इस वजह से उन्हें हमेशा आधे पेट भूखे रहना पड़ता था। फिर भी उनसे दिन भर काम करवाया जाता था। फिर रात को उन्हें जानवरों के कोठे में या इस तरह की गंदी जगहों में सोने के लिये छोड़ दिया जाता था, जहाँ थककर आने के बाद वे बेचारे उस पथरीली जमीन पर मुर्दों की तरह पड़ जाते थे।

इस तरह की बातें मन में आने से यातनाओं के पहाड़ खड़े हो जाते थे और आँखें रोने लगती थीं। वे बेचारे भगवान से दुआ माँगते थे कि हे! भगवान, तू हम पर रहम करा। अब हम इन यातनाओं को बर्दाश्त करने के भी काबिल नहीं रहे हैं। उन लोगों को जिस प्रकार की पीड़ा-यातनाओं को सहना पड़ा उनको यदि एक-एक करके कहा जाए तो भाषा और साहित्य के शोक रस के शब्द भी फीके पड़ जाएँगे।

साहित्य सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण हथियार होता है। जो मानसिक रूप से विचारों को बनाने-बिगाड़ने का कार्य करता है। दलितों और अश्वेतों ने भी इसी हथियार का सहारा लेकर समाज में नए मूल्य स्थापित करने की कोशिश शुरू की है। इसकी तीव्र रचनात्मक अभिव्यक्ति दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखन की प्रथम और प्रमुख विधा कविता के रूप में देखने को मिलती है। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन कवयित्रियों ने नस्लभेद, वर्ण-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था के लिंगवाद के भेद से उत्पन्न समता और एकता विरोधी तमाम तत्वों को अपनी रचनाओं में नकारा है। वर्ण-व्यवस्था, नस्लगत और लिंगगत भेदभाव से उपजे संकटों को वे अब चुपचाप सहन करने के लिए तैयार नहीं हैं। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रीवादी कविताएँ इनके सम्मानपूर्वक जीवन जीने और युगीन दलित और अश्वेत स्त्रियों के अधिकारों का पक्ष प्रस्तुत करती हैं। इनकी कविता स्वातंत्र्य: सुखाय नहीं हैं। यह अंधेरे के विरुद्ध उजाले की ओर जाने की अधिकार चेतना का मार्ग है। इन कवयित्रियों की कविताएँ कविता के लिए नहीं, अपितु कविता उनकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती हैं। वे इसी मुक्ति के लिए कविता लिखती हैं। मुक्ति उनका साध्य और कविता साधन है। 'गुलामी की चरम स्थिति वहाँ है जहाँ गुलाम अपनी इस स्थिति के प्रति सचेत ही नहीं होता। उसे यह जानकारी भी नहीं होती कि वह सिर्फ दूसरों के फेंके हुए टुकड़ों और जूठन पर ही नहीं पल रहा, बल्कि मूल्यों, मान्यताओं और विश्वासों के धरातल पर भी ऊपर के जूठन को अपनी ही अर्जित पूँजी समझता है।'

मानव सभ्यता के इतिहास में स्त्री अस्मिता, उसके समान अधिकार और स्वतंत्रता का प्रश्न सदा से ही उलझनपूर्ण रहा है। स्त्री को लेकर जितनी भी व्यवस्थाएँ बनीं, उनमें उसे प्रायः दोयम दर्जे का स्थान ही दिया गया है। यह स्थिति भारतीय और अमेरिकी समाज में देखने को मिलती है। स्त्री चाहे दलित हो या अफ्रो-अमेरिकन दोनों की स्थिति समाज में एक सी है। दोनों क्षेत्र की कवयित्रियों ने साहित्य का सहारा लेकर समाज में नए मूल्य स्थापित करने की कोशिश शुरू की है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री-मुक्ति, स्त्री स्वतंत्रता तथा उनके अधिकारों को लेकर चाहे जितने बड़े दावे किये जायें, नारे लगाये जायें सब व्यर्थ ही है। जब तक स्त्री स्वयं इस तथ्य को नहीं समझती, तब तक उसकी प्रगति हो ही नहीं सकती है। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन साहित्य की रचना केवल पुरुषों ने ही नहीं की बल्कि, स्त्रियों ने भी कलम को हथियार बनाकर अपने तिहरे अभिशाप को अभिव्यक्त किया है। कविता और अन्य विधाओं के माध्यम से दोनों ही साहित्य में स्त्रियों ने अपने दुःख, दर्द, पीड़ा को प्रस्तुत किया है।

जीवन में जितने अभाव, कष्ट और दुःख हो सकते हैं, दलित और अश्वेत का जीवन उन सबसे परिपूर्ण रहा है। जितनी घृणा, अपमान, अन्याय और उपेक्षा उसने सही है। वह भारत और अमेरिकी समाज की असभ्यता, अमानवीयता और बर्बरता का इतिहास बयान करती है। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों का दमन, शोषण और उनको दी गई शारीरिक-मानसिक यंत्रणाएँ भारतीय और अमेरिकी समाज के माथे पर एक बड़ा कलंक हैं। कोई भी सभ्य समाज अपने इस प्रकार के व्यवहार पर कभी गर्व नहीं कर सकता, सिर्फ शर्मसार हो सकता है।

दलित 'बहिष्कृत भारत' और अफ्रो-अमेरिकन 'ब्लैक अमेरिका' के नायक हैं। दलितों और अश्वेतों की गुलामी ईश्वर निर्मित नहीं है। श्वेत और सवर्ण समाज ने अश्वेत और दलित लोगों पर गुलामी लाद कर उनसे सख्ती से सेवा करवाई है। अश्वेतों ने 'निग्रो' शब्द का उपहास किया और स्वयं को 'ब्लैक' कहने लगे। तो दलितों ने 'हरिजन' शब्द का उपहास किया और स्वयं को 'दलित' कहा। इन दोनों पर होने वाले अत्याचारों और अन्याय के

विरुद्ध दोनों की भावना में साम्य है। अन्याय करने वालों की भाषा और प्रांत अलग है, तो भी उनका सूत्र एक ही है। उसी प्रकार जिस पर अन्याय होता है, उनकी जाति और धर्म अलग-अलग हैं, तो भी उनकी वेदना एक ही है। श्वेत और सवर्ण समाज के स्वामित्व, अधिकार और वर्ण श्रेष्ठत्व की भावना, अश्वेतों और दलितों की गुलामगिरी के विरुद्ध, विद्रोह की भावना एक समान है। इस साम्य के कारण ही अफ्रो-अमेरिकन स्त्री की वेदना, दलित स्त्री को अपनी वेदना सी लगती है। अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों ने अपनी व्यथा वेदना को कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, नृत्य एवं संगीत के माध्यम से व्यक्त किया है। डॉ. अम्बेडकर का कहना था कि, “परिवार में शिक्षा अनिवार्य है। यदि स्त्री पुरुष में से एक को शिक्षा देनी हो तो महत्व स्त्री शिक्षा को देनी चाहिए क्योंकि, जब पुरुष पढ़ता है तो केवल एक पुरुष ही पढ़ेगा और जब स्त्री पढ़ेगी तो पूरा परिवार पढ़ेगा।”

भारतीय दलित स्त्रियाँ दलितों में भी दलित मानी गई हैं। यथार्थ में इसके लिए हमारी सामाजिक व्यवस्था और पुरुष प्रधान समाज की सोच पूर्णतः उत्तरदायी है। देश में लिंग आधारित श्रम बाजार की विशेषता का परिणाम यह हुआ है कि एक ओर जहाँ अदृश्य योगदान करती उपेक्षित स्त्रियाँ हैं तो दूसरी ओर सफेद पोश नौकरियों, व्यवसायों व उच्च पदों पर आसीन लोग हैं। इनके बीच दलित स्त्री आज पूरे अधिकार और समाज के साथ अपनी अस्मिता बचाए रखने के लिए संघर्षरत है। जरूरत शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार से जुड़े संपूर्ण तंत्र को इस संबंध में संवेदनशील बनाने व सार्वजनिक नीतियों को सर्वोच्च प्राथमिक दिए जाने की है। यही सब बातें अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों के साथ भी जुड़ी हुई हैं। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए इस विषय का चुनाव किया गया है। ‘हिंदी एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन (दलित एवं अश्वेत कविता के विशेष संदर्भ में)’ प्रस्तुत शोध विषय को प्रस्तावना और उपसंहार के अलावा सात अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय 'हिंदी एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन (दलित एवं अश्वेत कविता के विशेष संदर्भ में) : प्रासंगिकता' में तुलनात्मक अध्ययन का सामान्य परिचय देते हुए उसके अर्थ और परिभाषा को स्पष्ट किया गया है। तुलनात्मक अध्ययन की विशेषताओं और महत्व पर प्रकाश डालते हुए उसकी आवश्यकताओं पर भी ध्यान आकर्षित किया गया है। आज के साहित्य में तुलनात्मक अध्ययन का कार्य बहुत आवश्यक है। इससे हमें देश, दुनिया के भिन्न साहित्य की जानकारी प्राप्त होती है। विश्व साहित्य में तुलनात्मक अध्ययन का महत्व और यह अध्ययन विश्व साहित्य को कहाँ तक प्रभावित करता है। उसकी जानकारी दी जा रही है। तुलनात्मक अध्ययन की प्रासंगिकता के अंतर्गत दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं पर आज तक जितने शोध कार्य हुए हैं, उसकी जानकारी दी गई है। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन साहित्य की प्रवृत्तियों में अनेक समानताएँ व कुछ असमानताएँ भी हैं।

द्वितीय अध्याय 'दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखन : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' है। दलित स्त्री लेखन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत दलित कौन है? दलित आंदोलन का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, दलित साहित्य का विकास एवं दलित स्त्री लेखन के आरंभ को विश्लेषित किया गया है। उसी प्रकार अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत अश्वेत कौन है? अश्वेत आंदोलन का इतिहास, अश्वेत साहित्य का विकास एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखन के आरंभ का अध्ययन किया गया है। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों के तिहरे अभिशाप को व्यक्त किया गया है। इन दोनों साहित्य को जानने और समझने के लिए उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखना जरूरी है। इतिहास को बिना जाने वर्तमान को समझा नहीं जा सकता है।

तृतीय अध्याय 'दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ : सामाजिक संदर्भ' है। इसके अंतर्गत दलित स्त्री और अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में सामाजिक भेदभाव को

दिखाया गया है। भारत और अमेरिका में सदियों से चली आ रही, जातिवाद और रंगवाद के कारण दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों को सामाजिक संघर्ष करना पड़ा है। लिंग के आधार पर उन्हें तिहरे जीवन जीने के लिए विवश किया गया है। पुरुषसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के द्वारा स्त्री को मानसिक और शारीरिक यातनाओं को झेलना पड़ा है। पितृसत्तात्मक समाज के चलते स्त्री को एक बेड़ी में बंध कर रहने पर मजबूर किया गया है। इस अध्याय में जातिवाद व्यवस्था, सामाजिक क्रूरता, पारम्परिक रूढ़ियाँ, लैंगिक भेदभाव, दैहिक शोषण, पारिवारिक शोषण, पितृसत्तात्मक व्यवस्था, अशिक्षा, नस्लवादी व्यवस्था, परिवार का स्वप्न, मातृत्व की भावना की आलोचना की गई है।

चतुर्थ अध्याय ‘दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ : आर्थिक संदर्भ’ में दोनों समाज की आर्थिक स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री किसी प्रकार आर्थिक मजबूरी के चलते समाज में अपनी अस्मिता की तलाश कर रही है। रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मुख्य आवश्यकताओं को भी पूरी नहीं कर पाती है। आर्थिक मजबूरी के कारण वह अपना और अपने परिवार का पेट पालने में भी असमर्थ रह जाती है। दोनों साहित्य की कवयित्रियों की आर्थिक अस्मिता की खोज का विश्लेषण किया गया है। साथ ही दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री की आर्थिक मजबूरी का अध्ययन करते हुए भूमिहीनता, दरिद्रता, श्रम का मूल्य, आर्थिक विपन्नता, बाल मजदूरी, आर्थिक अस्मिता, भुखमरी आदि समस्याओं का विश्लेषण किया गया है।

पंचम अध्याय ‘दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ : राजनैतिक संदर्भ’ में दोनों समाज में चली आ रही राजनीतिक षड्यंत्र को दिखाया गया है। साहित्य का संबंध तत्कालीन राजनीति से जुड़ा रहता है। जिस वर्ग की सत्ता बनी रहती है उनकी सांस्कृतिक, सामाजिक और बौद्धिक योग्यता को पाता रहता है। साहित्य में राजनीति से लेकर जीवन के सभी अंगों का समावेश हुआ है। इन दोनों साहित्य में भी राजनीति का बहुत बड़ा असर देखा

गया है। डॉ. अम्बेडकर ने संविधान का निर्माण कर दलितों को आरक्षण दिलाया। वहीं दूसरी तरफ मार्टिन लूथर किंग ने कई आंदोलन कर अश्वेत लोगों की गुलामी को तोड़ने का प्रयास किया। पुरुषवादी समाज ने राजनीति के क्षेत्र से भी स्त्रियों को दूर रखने का प्रयास किया है। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविता में राजनीतिक स्थिति पर अध्ययन करते हुए समाज और दुनिया में फैली दलित राजनीति, लोकतंत्र, भ्रष्टाचार, स्त्री मुक्ति आंदोलन, साम्प्रदायिक दंगे, राष्ट्रवाद का मूल्य, नागरिक अधिकार आंदोलन, मार्टिन लूथर किंग का योगदान, मैलकॉम एक्स का योगदान, नया नीग्रो और हार्लेम क्रांति, स्त्री मुक्ति आंदोलन को विश्लेषित किया गया है।

षष्ठ अध्याय ‘दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ : धर्म एवं संस्कृति’ में कवयित्रियों ने धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं का अध्ययन किया है। सदियों से चली आ रही रूढ़िवादी परम्परा जो स्त्रियों के लिए एक पिंजरे से कम नहीं है। इन खोखली संस्कृति को अपना धरोहर समझने वाले पुरुषवादी सोच ने हमेशा से स्त्रियों को पैरों की जूती के समान दर्जा दिया है। इसी सोच को कवयित्रियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त करते हुए, धार्मिक मान्यताएँ, अंधविश्वास, खोखली संस्कृति, मिथक का प्रयोग, नई संस्कृति का उदय, फिल्मों का योगदान आदि समस्याओं का अध्ययन किया गया है।

सप्तम् एवं अंतिम अध्याय ‘दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ : अभिव्यक्ति के विविध रूप’ के अंतर्गत समाज में साहित्य के महत्त्व के साथ-साथ भाषा के महत्त्व का अध्ययन किया गया है। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में प्रयोग की गयी भाषा उनके स्त्रीत्व की छवि को उभारती है। जो दूसरे साहित्य की भाषा से भिन्न नज़र आता है। मुख्य धारा की कवयित्री और दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन कवयित्री की कविताओं में प्रयुक्त शब्द, लय, शैली, प्रतीक, मिथक आदि एक-दूसरे से काफी भिन्न प्रतीत होते हैं। अफ्रो-अमेरिकन साहित्य में संस्कृति उत्सव के रूप में भाषा का अध्ययन किया गया है।

उसकी संस्कृति कई वर्षों पुरानी होने के कारण लोक परम्परा को विशेष महत्त्व दिया गया है। इस अध्याय में भाषा, समाज और साहित्य, दलित स्त्री कविताओं में स्त्रीत्व की भाषा, अभिव्यक्ति के स्तर में भिन्नता, अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं की भाषा आदि को विश्लेषित किया गया है।

शोध प्रविधि:

किसी भी शोध कार्य के आरंभ में यह प्रकाशित कर देना अनिवार्य होता है कि प्रस्तुत शोध कार्य में किस प्रकार की शोध प्रविधि का प्रयोग किया जा रहा है। इस दृष्टि से इस शोध कार्य में तुलनात्मक शोध प्रविधि, ऐतिहासिक शोध प्रविधि और आलोचनात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है।

तुलनात्मक शोध प्रविधि के अंतर्गत एक ही भाषा तथा दो या उससे अधिक भिन्न भाषा के समान कवियों अथवा लेखकों, कृतियों और प्रवृत्तियों की आपसी तुलना करके अध्ययन किया जाता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत कार्य में दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं का एक-दूसरे से तुलना की गई है। देश और भाषा भिन्न होने के बाद भी रचना तथा रचनाकारों से तुलना विषय-वस्तु के स्थान निर्धारण में सहायक होती है। जिससे इसकी सही स्थिति का पता चलता है। इसके लिए तुलनात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया है।

ऐतिहासिक शोध प्रविधि के अंतर्गत किसी युग विशेष या कालखंड विशेष अथवा ऐतिहासिक तथ्यों का अध्ययन किया जाता है। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं का आरंभ अलग-अलग कालखंड में हुआ है। अश्वेत स्त्री की प्रथम कविता सन् 1756 ई. में तो दलित स्त्री कविताओं का प्रकाशन उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक में हुआ। इस कारण से इन दोनों साहित्य की जाँच पड़ताल करने के लिए उस समय की जाँच करना अनिवार्य है जिसके लिए ऐतिहासिक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है।

आलोचनात्मक शोध प्रविधि का मूल आधार ही यही है कि शोध के लिए निर्धारित साहित्यिक कृति के साहित्यिक मूल्यों, सैद्धांतिक मान्यताओं, वास्तविक आयामों एवं युग चेतना के संदर्भ में विवेचन विश्लेषण हुआ हो। इस दृष्टि से प्रस्तुत कार्य दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं के साहित्यिक मूल्यों और उनकी युग चेतना का विश्लेषण किया गया है।

इस विषय पर शोध का महत्त्व :

अश्वेत साहित्य इस समय विश्व साहित्य के अध्ययन के केंद्र में है और भारतीय साहित्य के संदर्भ में दलित साहित्य ने इस समय विशेष स्थान बनाया है। यद्यपि दोनों साहित्य भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में विकसित हुआ है किंतु उनकी स्थिति में कहीं भिन्नता नहीं है। आज के युग में संवेदनाएँ खत्म हो रही हैं। महत्त्वकांक्षाएँ आकाश चूम रही हैं और आदर्श पातालगामी हो रहा है। ऐसे बदलते समय और परिस्थितियों में पढ़-लिखकर स्त्री अब विचारों की दृष्टि से सामर्थ्यवान हो गयी है। कलम हाथ में आने से लेखन क्षेत्र में वह स्त्री जागृति का काम कर रही है। आज स्त्रियों ने अपनी खुदारी को पहचाना है इसलिए तो अब वह सजी-संवरी मोम की गुड़िया नहीं है और न ही पुरुष का खिलौना है। बेबस अबला तो बिल्कुल भी नहीं है। अब तो वह स्वयं अपने पाँव पर खड़ी है और अपने दृढ़ विचारों की जमीन को समझ रही है।

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं का अपने समय पर कितना प्रभाव पड़ा? और उस प्रभाव के प्रतिफलन साहित्य पर कैसा पड़ रहा है? इस पर विचार करना एक महत्त्वपूर्ण पहलू की ओर संकेत करता है। इस दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण विषय है जिससे शोध कार्य की प्रासंगिकता बढ़ती है। इस शोध के जरिये दोनों साहित्य के कई अप्रकाशित मुद्दों पर विचार किया गया है। अतः इन सभी दृष्टियों से यह शोध कार्य महत्त्वपूर्ण है।

आभार:

इस शोध कार्य को करने के दौरान मैंने कई लोगों की मदद ली है। मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करना चाहती हूँ। सर्वप्रथम मैं श्रद्धेय गुरु तथा मेरे शोध-निर्देशक प्रो. वी. कृष्ण सर की आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे इस विषय पर कार्य करने के लिए पथ प्रदर्शित किया है। उन्होंने जिस सहनशीलता और एकाग्रता से मेरा मार्गदर्शन किया, उसके प्रति मैं उनकी आभारी हूँ। साथ ही डॉ. भीम सिंह सर के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ। जिन्होंने इस विषय पर शोध कार्य करने का सर्वप्रथम सुझाव दिया। विभागाध्यक्ष और विभाग के सभी प्राध्यापकों के मुत्सुहान सुझावों के लिए मैं उनकी आभारी हूँ। इस शोध कार्य के दौरान विजय शर्मा मैम ने कई बार मेरा मार्ग-दर्शन किया, उनके प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ।

मेरे जीवन में स्नेह और आशीर्वाद के स्रोत हेतु मैं अपनी माता खुलणा प्रधान, पिता ब्रह्मानंद प्रधान और मेरे छोटे भाई सुजीत प्रधान को तहे दिल से आभार व्यक्त करती हूँ। मुझे जीवन में हमेशा आगे बढ़ने और अपने मंजिल को प्राप्त करने की प्रेरणा देने के लिए मेरे पति गफर खान को मैं तहे दिल से धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ। उनके विचार मेरे लिए सदैव प्रेरणादायक रहे हैं। मैं अपनी मित्र बनजा तालदी और गीतांजलि साहू के प्रति भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरे शोध कार्य में पूरी सहायता की है।

इसके अलावा केंद्रीय विश्वविद्यालय हैदराबाद की 'इंदिरा गांधी मेमोरियल लाइब्रेरी' को विशेष आभार व्यक्त करती हूँ, जहाँ से मैंने समय-समय पर शोध से संबंधित सामग्री का संकलन किया। साथ ही मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू युनिवर्सिटी की 'सेंट्रल लाइब्रेरी', ज्ञान सिंधु 'गूगल' के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ।

स्थान : हैदराबाद

शोधार्थी

दिनांक : 10.03.2021

सुनीता प्रधान

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन.....6-15

प्रथम अध्याय

1. हिंदी एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन (दलित एवं अश्वेत कविताओं के विशेष संदर्भ में): प्रासंगिकता.....21-49
 - 1.0. प्रस्तावना
 - 1.1. तुलनात्मक अध्ययन का सामान्य परिचय
 - 1.1.1. 'तुलना' शब्द की व्युत्पत्ति
 - 1.1.2. तुलनात्मक अध्ययन : अर्थ और परिभाषा
 - 1.2. तुलनात्मक अध्ययन : विशेषताएँ और महत्त्व
 - 1.3. साहित्य में तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता
 - 1.4. विश्व साहित्य में तुलनात्मक अध्ययन
 - 1.5. तुलनात्मक अध्ययन की प्रासंगिकता (दलित एवं अश्वेत स्त्री कविताओं के संदर्भ में)
 - 1.6. तुलनात्मक अध्ययन की दशा और दिशा (दलित एवं अश्वेत स्त्री कविताओं के संदर्भ में)
 - 1.7. निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय

2. दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखन : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि.....50-98
 - 2.0. प्रस्तावना
 - 2.1. दलित स्त्री लेखन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
 - 2.1.1. दलित कौन हैं?
 - 2.1.2. दलित आंदोलन का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
 - 2.1.3. दलित साहित्य का विकास
 - 2.1.4. दलित स्त्री लेखन का आरम्भ

2.1.5. दलित स्त्रियों का तिहरा अभिशाप

2.2. अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2.2.1. अश्वेत कौन है?

2.2.2. अश्वेत आंदोलन का इतिहास

2.2.3. अश्वेत साहित्य का विकास

2.2.4. अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखन का आरम्भ

2.2.5. अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों का तिहरा अभिशाप

2.3. दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में स्त्री चेतना

2.4. निष्कर्ष

तृतीय अध्याय

3. दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ : सामाजिक संदर्भ.....99-180

3.0. प्रस्तावना

3.1. साहित्य और समाज का परस्पर संबंध

3.2. दलित स्त्री कविताओं में सामाजिक भेदभाव

3.2.1. जातिवादी व्यवस्था

3.2.2. सामाजिक क्रूरता

3.2.3. पारम्परिक रूढ़ियाँ

3.2.4. लिंगगत भेदभाव

3.2.5. पितृसत्तात्मक व्यवस्था

3.2.6. दैहिक शोषण

3.2.7. पारिवारिक शोषण

3.2.8. अशिक्षा

3.3. अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में सामाजिक भेदभाव

3.3.1. नस्लवादी व्यवस्था

3.3.2. सामाजिक क्रूरता

3.3.3. लिंगगत भेदभाव

3.3.4. परिवार का स्वप्न

3.3.5. मातृत्व की भावना

3.3.6. दैहिक शोषण

3.3.7. बहनापा

3.4. निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय

4. दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ : आर्थिक संदर्भ.....181-228

4.0. प्रस्तावना

4.1. दलित स्त्री कविताओं में आर्थिक मजबूरी

4.1.1. भूमिहीनता

4.1.2. दरिद्रता

4.1.3. श्रम का मूल्य

4.1.4. आर्थिक विपन्नता

4.1.5. बाल श्रम

4.1.6. आर्थिक अस्मिता

4.2. अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में आर्थिक मजबूरी

4.2.1. आर्थिक विपन्नता

4.2.2. आर्थिक अस्मिता

4.2.3. दरिद्रता

4.2.4. भूखमरी

4.3. निष्कर्ष

पंचम् अध्याय

5. दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ : राजनीतिक संदर्भ.....229-290

5.0. प्रस्तावना

5.1. दलित स्त्री कविताओं में राजनीतिक षड्यंत्र

5.1.1. दलित राजनीतिक आंदोलन

5.1.2. खोखला लोकतंत्र

5.1.3. भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था

5.1.4. स्त्री मुक्ति आंदोलन

- 5.1.5. साम्प्रदायिक दंगे
- 5.1.6. राष्ट्रवाद का मूल्य
- 5.2. अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में राजनीतिक षड्यंत्र
 - 5.2.1. नागरिक अधिकार आंदोलन
 - 5.2.2. मार्टिन लूथर किंग जूनियर का योगदान
 - 5.2.3. मैल्कॉम एक्स का योगदान
 - 5.2.4. नया नीग्रो और हार्लेम क्रांति
 - 5.2.5. स्त्री मुक्ति आंदोलन
- 5.3. निष्कर्ष

षष्ठ अध्याय

6. दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ : धर्म एवं संस्कृति.....291-329

- 6.0. प्रस्तावना
- 6.1. दलित स्त्री कविताओं में धर्म एवं संस्कृति
 - 6.1.1. धार्मिक मान्यताएँ
 - 6.1.2. अंधविश्वास
 - 6.1.3. खोखली संस्कृति
 - 6.1.4. मिथक का प्रयोग
- 6.2. अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में धर्म एवं संस्कृति
 - 6.2.1. धार्मिक मान्यताएँ
 - 6.2.2. नई संस्कृति का उदय
 - 6.2.3. फिल्मों का योगदान
 - 6.2.4. मिथक का प्रयोग
- 6.3. निष्कर्ष

सप्तम् अध्याय

7. दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ : अभिव्यक्ति के विविध रूप...330-357

- 7.0. प्रस्तावना

- 7.1. भाषा, समाज और साहित्य
- 7.2. दलित स्त्री कविताओं में स्त्रीत्व की भाषा
- 7.3. अभिव्यक्ति के स्तर में भिन्नता
- 7.4. अफ्रो-अमेरिकन स्त्री का सांस्कृतिक उत्सव
- 7.5. क्या कविता राजनीति, सिद्धांत या कला हो सकती है?
- 7.6. निष्कर्ष

उपसंहार.....358-367

संदर्भ ग्रंथ सूची.....368-376

- आधार ग्रंथ सूची
- सहायक ग्रंथ सूची
- पत्र-पत्रिकाएँ
- वेब सामग्री

परिशिष्ट.....378-390

1. प्रकाशित शोध आलेख-1
2. प्रकाशित शोध आलेख-2
3. राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमाण पत्र-1
4. राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमाण पत्र-2

प्रथम अध्याय

हिंदी एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन (दलित एवं अश्वेत स्त्री कविता के विशेष संदर्भ में) : प्रासंगिकता

1.0. प्रस्तावना

इक्कीसवीं सदी में भूमंडलीकरण, बाजारवाद के कारण संपूर्ण विश्व एक 'विश्वग्राम' के रूप में बन गया है। विश्व के विभिन्न देशवासियों के बीच जाति, वर्ण और धर्म आदि के वैमनस्य के होते हुए भी उनके मस्तिष्क, मानव-हृदय में प्रायः समानता पाई जाती है। विश्व के महान साहित्यकारों ने अपनी देश-काल की कृतियों में इसी मानव मनोभूमि की एकरूपता का प्रतिपादन किया है। स्पष्ट है कि विभिन्न प्रांतों एवं देशों के साहित्यों में विविध रूपों में व्यक्त मानव-चेतना की अखंडता को तुलनात्मक अध्ययन द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। हिंदी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं एवं साहित्यों में तुलनात्मक अनुसंधान से अदान-प्रदान की भावना बढ़ेगी। इस अध्याय के अंतर्गत तुलनात्मक अध्ययन का अर्थ, परिभाषा, महत्व देते हुए विश्व के धरातल पर तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता और उसकी प्रासंगिकता को भी बताया जाएगा।

1.1. तुलनात्मक अध्ययन का सामान्य परिचय

‘तुलनात्मक अध्ययन’ आधुनिक साहित्य-चिंतन की एक नवीन संकल्पना है। पश्चिम के शैक्षिक तथा साहित्यिक क्षेत्रों में इसका प्रचार-प्रसार निरंतर बढ़ रहा है। राष्ट्रीय साहित्य केवल एक ही देश की भाषाओं अथवा एक ही भाषा के साहित्य की मर्यादाओं में सीमित रहकर उसी से संबंधित साहित्य के प्रश्नों को लेता है। तुलनात्मक अध्ययन की व्याख्या में ही भिन्न और देश के साहित्यों की तुलना अभिप्रेत है। सर्वसाधारण साहित्य अनेक देशों के और भिन्न भाषा के साहित्य के विविध घटकों के विश्लेषण पर जोर देता है। पश्चिम यूरोप का

साहित्य, दक्षिण अमेरिकन साहित्य और भारत के साहित्य का अध्ययन किया जाता है। प्रस्तुत अध्याय में तुलनात्मक अध्ययन के सभी महत्वपूर्ण पक्षों की जानकारी देते हुए तुलनात्मक साहित्य में दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं का अध्ययन को स्वतःपूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है।

1.1.1. 'तुलना' शब्द की व्युत्पत्ति

'तुलना' शब्द का प्रयोग व्यवहारिक जगत में 'तौलना', 'गिनना', 'जोड़ना' है। साम्य-भेद की पहचान आदि अर्थों तक प्रयुक्त था। अपने आरम्भिक स्वरूप में साहित्य के क्षेत्र में इसका प्रयोग नगण्य-सा था। जैसे-जैसे संस्कृतियों का विचार-विनियम बढ़ा, उस में विस्तार के साथ विकृति भी आई। फलतः साहित्यिक लेन-देन की प्रक्रिया बढ़ी। संचार-साधन में प्रचुरता आई और काल-परिवर्तन होते रहे।

अंग्रेजी के 'कॉम्पैरेटिव' शब्द का रूपांतरण 'तुलना' है। अंग्रेजी में सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग मैथ्यू अर्नाल्ड ने एम्पियर के शब्दों 'इस्तवार कोंपारातीव' का अनुवाद करते हुए सन् 1848 में किया था। फ्रांसीसी में इस शब्द का प्रयोग 'सादृश्य' के लिए किया जाता है अर्थात् भिन्न-भिन्न साहित्य में इसका प्रयोग विभिन्न रूप में हुआ है। इस संदर्भ में रेनेवेलक ने कहा है कि "तुलना एक ऐसा शब्द है, जिसका प्रयोग आलोचना और विज्ञान सभी में किया जाता है और यह साहित्यिक अध्ययन की अपनी विशिष्ट प्रक्रिया को संतोषजनक ढंग से व्यक्त नहीं कर पाता। साहित्यों के बीच या यहाँ तक की आंदोलनों, लेखकों और कृतियों के बीच तुलना को साहित्यिक इतिहास का मुख्य विषय शायद ही कभी बनाया गया हो। हाँलाकि एफ.सी.ग्रीन की माइन्सूट जैसी कोई पुस्तक जिसमें अठारहवीं शताब्दी के फ्रांसीसी और अंग्रेजी साहित्य के विविध पहलुओं की तुलना की गयी है।"¹

¹ रेनेवेलक- साहित्य सिद्धांत, पृ.61

साहित्य में पारस्परिक तुलना करने की शैली तुलनात्मक कहलाती है। विभिन्न भाषाओं के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से नये द्वार खुलते हैं। सन् 1855 में वाल्ड द्विटमैन ने अपने ग्रंथ 'लीवस ऑफ ग्रास' में लिखा है कि, "अतीत, वर्तमान और भविष्य एक दूसरे से पृथक नहीं हैं बल्कि ये एक ही धागे में गूँथे गये हैं। अतीत का जीवन ही भविष्य के मार्ग को उन्मुक्त करता है।"²

डॉ. इंद्रनाथ चौधरी ने इसी ओर संकेत करते हुए लिखा है कि, "तुलनात्मक शब्द में तुलना करने की प्रक्रिया जुड़ी हुई है और तुलना में वस्तुओं को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें उनमें साम्य या वैषम्य का पता लग सके।"³ तुलना का अर्थ केवल 'सादृश्य' का निरूपण है। 'कोम्पारिज़न' या 'तुलना' शब्द में साम्य या सादृश्य का भाव अधिक समाहित है परंतु तुलनात्मक अध्ययन में किन्हीं दो वस्तुओं, स्थानों, कवियों, समय, विचारों, घटनाओं, विचारधाराओं आदि के मध्य स्थित समानताओं और विषमताओं दोनों को उजागर करने का प्रयत्न किया जाता है। 'Towards Comparative Indian Literature' में अमिया देव कहती हैं कि "Comparison is right reason for us because one we are multilingual and two, we are third world."⁴

'तुलनात्मक साहित्य' जैसा कि उसके नाम से ही स्पष्ट है, साहित्य का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह नामपद वास्तव में एक प्रकार का न्युनपदीय प्रयोग है और साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन का वाचक है। साहित्य तथा अन्य अनुशासनों के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन साहित्य के वास्तविक मर्म को समझने के लिए चाहे कितना ही महत्वपूर्ण हो, पर उसे तुलनात्मक साहित्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन न होकर साहित्य तथा उससे संबंध अन्य विधाओं के समान-असमान

² तुलनात्मक बनाम सार्वजनिक साहित्य- चिंतामणि बेहेरा, पृ.369

³ तुलनात्मक साहित्य की भूमिका- डॉ. इंद्रनाथ चौधरी, पृ-1

⁴ Towards comparative indian literature- amiya dev, पृ-19

तत्वों का विवेचन का अंतः साहित्यिक अध्ययन है, जो अनेक भाषाओं के साहित्य को आधार मानकर चलता है और जिसका उद्देश्य होता है- अनेकता में एकता का संधान। यह अध्ययन विभिन्न साहित्यों के अनेक तुलनात्मक पक्षों और रूपों के इर्द-गिर्द केंद्रित रहता है। यह अनेक साहित्यों के पारस्परिक प्रभाव का अनुसंधान कर सकता है, अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक और सांस्कृतिक संबंधों का विवेचन कर सकता है या अंतर्राष्ट्रीय कथानक-रुढ़ियों का खोज करते हुए इस बात का पता लग सकता है कि ये कथानक-रुढ़ियाँ किस प्रकार एक दूसरे देश की यात्री करती रहती हैं।

1.1.2. तुलनात्मक अध्ययन : अर्थ और परिभाषा

भारत एक बहुभाषिक एवं बहुभाषायी साहित्य सम्पन्न देश है। इसलिए भारतीय भाषाओं और साहित्य के इतिहास की अवधारणा के निर्माण के लिए तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है। तुलनात्मक अध्ययन पूर्ण एवं समग्र ज्ञान की प्राप्ति का साधन है। एक राष्ट्र की परिधि के परे दूसरे राष्ट्रों की कला, इतिहास, समाज, विज्ञान, धर्मशास्त्र आदि की समग्र जानकारी और पारस्परिक तद्रूपता, साम्य, वैषम्य और व्यतिरेकिता के ज्ञान के लिए भी तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित है।

प्रारंभ में क्रोचे का कहना था कि 'तुलनात्मक साहित्य' एक स्वतंत्र विद्यानुशासन नहीं बन सकता क्योंकि यह आलोचना और साहित्याध्ययन का अभिन्न अंग है। परंतु यह धारणा अब गलत साबित हो चुकी है। वर्तमान में देश-विदेश के कई विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक अध्ययन एक स्वतंत्र विद्यानुशासन के रूप में स्थापित हो चुका है और शोध के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित शोध को शोध से अधिक आलोचना माना जाना चाहिए क्योंकि तुलनात्मक शोध में मूल्यांकन दृष्टि के बिना आलोचनापरक चेतना संभव नहीं है। अंग्रेजी के कवि-समीक्षक टी.एस. इलियट ने भी

स्वीकार किया है कि, आलोचना का मुख्य अस्त्र तुलना और विश्लेषण होता है। जो बातें सामान्य अध्ययन में सहज ही आलोचक या अध्ययेता के सम्मुख ले आता है। यही तुलनात्मक अध्ययन की विशेषता और सफलता है। तुलनात्मक अध्ययन से जितने अधिक समानताओं और विषमताओं के तत्त्व उभर कर सामने आयेंगे, अध्ययन को उतना ही अधिक गहन और सफल माना जायेगा।

प्रो. ऋषभ देव शर्मा का कहना है “भाषा, साहित्य और संस्कृति- ये तीनों परिवर्तनशील होते हैं और समय की धारा के साथ इनके एकाधिक रूप बनते और विकसित होते रहते हैं। अतः एक ही भाषा, एक ही भाषा के साहित्य तथा एक ही समुदाय की संस्कृति के तुलनात्मक अध्ययन की संभावना हमेशा से विश्व के सभी भाषा समुदायों में बनी रही है। जब भी परिवर्तन या विकास को देखा जाता है, तो पूर्ववर्ती ढाँचों और प्रवृत्तियों से उसकी तुलना करनी पड़ती है। यह भी कहा जा सकता है कि भाषा, साहित्य और संस्कृति चाहे वे किसी भी राष्ट्र, जाति और संप्रदाय की हो, इनके विकास-क्रम की जानकारी तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से ही हो पाती है।”⁵ पाश्चात्य विद्वान हेनरी एच.एच.रेमाक के अनुसार, तुलनात्मक साहित्य एक राष्ट्र के साहित्य की परिधि के परे दूसरे राष्ट्रों के साहित्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन है तथा यह अध्ययन कला, इतिहास, समाजविज्ञान, विज्ञान, धर्मशास्त्र आदि ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के आपसी संबंधों का भी अध्ययन है। रेमाक का कहना है कि, तुलनात्मक साहित्य सांश्लेषिक मानसिक दृष्टि है। जिसके द्वारा भौगलिक एवं जातीय स्तर पर साहित्य का अनुसंधानात्मक विश्लेषण संभव हो पाता है।

डॉ. नगेंद्र के अनुसार, “तुलनात्मक साहित्यिक अध्ययन के अंतर्गत साहित्य में सामान्य कला प्रतिमानों के अनुप्रयोग, युग विशेष के विभिन्न साहित्यिक आंदोलनों तथा प्रवृत्तियों के बोध, विभिन्न साहित्य के निहित प्रतिपाद्य विषयों तथा विचारों के अनुशीलन

⁵ तुलनात्मक साहित्य की चुनौतियाँ – सं-प्रो.कांति मुदिराज, पृ-14

और अंततः शैली, रचना विधान एवं प्रतिमानों के विश्लेषण का समावेश किया जा सकता है, वैसे इनमें संभवतः सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान साहित्यिक संबंधों को ही प्राप्त है।”⁶ तुलनात्मक साहित्य एक प्रकार का अंतः साहित्यिक अध्ययन है, जो अनेक भाषाओं को आधार मानकर चलता है और जिसका उद्देश्य होता है- अनेकता में एकता का संधान।

अमिया देव के अनुसार, “Comparative Literature as a discipline implies transcending the frontiers of single languages and national literature. For a comparatist, any literature is basically a literature which has to be studied with reference to other literatures, generally on a bi-or multilingual or national basis.”⁷

हेनरी एच.एच.रीमार्क ने कहा है कि, “Comparative Literature superimposes a viable international perspective on literature seen as a national and personal creation.”⁸

एरविन कॉपेन ने कहा, “The role of Jack of all literary trades ill becomes a scholar of Comparative Literature.”⁹

तुलनात्मक साहित्य एक से अधिक भाषाओं में रचित साहित्य का अध्ययन है और तुलना इस अध्ययन का मुख्य अंग है। मगर क्रोचे का कहना है कि ‘तुलनात्मक साहित्य’ एक स्वतंत्र विद्याशासन बन ही नहीं सकता क्योंकि किसी भी साहित्यिक अध्ययन के लिए तुलना एक आवश्यक अंग है। दूसरे विद्वान भी कहते हैं कि साहित्य का अध्ययन करते हुए तुलना करने का मतलब सीधे साहित्य का अध्ययन करना ही है क्योंकि अरस्तू के समय से ही

⁶ तुलनात्मक साहित्य- डॉ. नगेंद्र, पृ. 71

⁷ Comparative literature- theory and practice- ed, amiya dev, sisir kumar das, p- 79

⁸ A comparative history of literature in European languages: progress and problems - henry H.H.remak, p-13

⁹ Contributions to comparative literature: Germany and india- ed. Naresh guha, p-27

‘तुलनात्मक’ आलोचनात्मक व्यवहार का एक आवर्तक आयाम रहा है। चाहे एक भाषा में लिखित साहित्य का अध्ययन हो। दोनों ही स्थितियों में अध्ययन का केंद्रीय विषय साहित्य ही है और इसीलिए तुलनात्मक साहित्य को किसी एक भाषा में लिखित साहित्य के अध्ययन से अलग नहीं किया जा सकता। “अनेकता में एकता का अन्वेषण तुलनात्मक अध्ययन का मुख्य लक्ष्य होता है। विभिन्न भाषाओं तथा अनेक साहित्य के अध्ययन से पारस्परिक भाव विनिमय सहज होगा। सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवेश के साम्य-वैषम्य स्पष्ट होता है। विशाल भारत में भावगत एकता की प्रतिष्ठा हेतु तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन महत्वपूर्ण है।”¹⁰

तुलनात्मक साहित्य में विभिन्न भाषाओं में लिखित साहित्य अथवा उनके संक्षिप्त घटकों की साहित्यिक तुलना होती है और यही उसका आधार-तत्त्व है। तुलनात्मकता एक विशेष प्रकार की मानसिकता अथवा मानसिक दृष्टि है। रेमाक का कहना है कि तुलनात्मकता सांश्लेषिक मानसिक दृष्टि है। जिसके द्वारा भौगोलिक एवं जातीय स्तर पर साहित्य का अनुसंधानात्मक विश्लेषण संभव हो पाता है। एक उदाहरण के द्वारा इस वक्तव्य को स्पष्ट किया जा सकता है। यदि एक ही भाषा में लिखित साहित्य के अंतर्गत दो समान या असमान रूपों या प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए जैसे- मीराबाई के भक्तिमूलक गीतों के साथ महादेवी के रहस्यात्मक गीतों की तुलना तो इसको तुलनात्मक साहित्य कहना संभव नहीं क्योंकि इसमें सांश्लेषिक मानसिक दृष्टि के विस्तार की संभावना नहीं होगी।

1.2. तुलनात्मक अध्ययन : विशेषताएँ और महत्त्व

तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा तुलनीय पक्षों में ऐसी विशेषताओं का उद्घाटन हो जाता है। जो सामान्य अध्ययन के द्वारा प्रकाश में नहीं आ पाती है। तुलनीय कवि या कृतियाँ एक

¹⁰ तुलनात्मक साहित्य हिंदी और उड़िया के परिप्रेक्ष्य में - डॉ. अरुण होत, पृ-प्राककथन

दूसरे को नवीन संदर्भ प्रदान करते हैं। एक दूसरे के संदर्भ में इनका नवीन रूप प्रकट होता है। तुलनात्मक अध्ययन भाषा और साहित्य के परस्पर सम्पर्क को बढ़ाता है। एक भाषा के साहित्य के अध्ययन-अध्यापन के लिए दूसरी भाषा और साहित्य की सामग्री का उपयोग किया जा सकता है। उदाहरणार्थ- तेलुगु भाषी हिंदी विद्यार्थी को तेलुगु साहित्य के आधार पर हिंदी साहित्य का बोध कराया जा सकता है। डॉ. चंद्रभानु सोनवणे हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में स्पष्ट करते हुए कहते हैं- “हिंदी भाषा के राष्ट्र भाषा या संपर्क भाषा के नाते अध्ययन और अध्यापन के साथ तुलनात्मक शोध की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।”¹¹

दो भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से अनुवाद और मशीनी अनुवाद में सहायता मिल सकती है। पारस्परिक सम्पर्क और आदान-प्रदान से भाषाओं और साहित्य के क्षितिज विस्तृत होते हैं। इसके कारण समता और विभेदों का तटस्थ अध्ययन करके भ्रम और पूर्वाग्रह से मुक्त हुआ जा सकता है। इससे एक ही देश की विभिन्न इकाईयों का परस्पर निकट आने की संभावनाएँ प्रोत्साहन पाती है। तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा मानव जाति के हृदय एवं मस्तिष्क में परिलक्षित भाव-साम्य का समुद्घाटन एवं विश्वसाहित्य के द्वार विश्व मानवता की एकता का निरूपण किया जाता है। यह मानव के सीमित ज्ञान-क्षेत्र को विस्तृत करता है और उसके भाषागत, साहित्यिक एवं प्रादेशिक बंधनों को ज्ञानार्जन में बाधा नहीं डालने देता।

तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा विभिन्न सहित्यों की समानताओं एवं भिन्नताओं का विवेचन करके इनके कारणों का अन्वेषण किया जाता है। विश्व-मानव एवं विश्व-मानवतावाद को प्रतिष्ठित किया जाता है। ज्ञान-विज्ञान की नई दिशाओं का उद्घाटन, भाषा-शैली, राष्ट्रीय एवं भावनात्मक ऐक्य का विश्वसनीय प्रतिपादन, विश्वमानव चेतना का संश्लेषण, बहुमुखी प्रकट रूप, जाति, धर्म एवं रूढ़ियों द्वारा आरोपित भिन्नता में अंतर्निहित सामाजिक आदर्श एवं त्याग प्रधान भारतीय संस्कृति का संस्थापन एवं अनेक न्यूनताओं के प्रति सतर्कता

¹¹ तुलनात्मक अध्ययन स्वरूप और समस्याएँ – भ.ह. राजूकर, डॉ. राजमोल बोरा, पृ-27

तुलनात्मक अध्ययन द्वारा सम्भव है। देश की विविधता और विचित्रता में एकता का अंतर्दर्शन कराने में तुलनात्मक अध्ययन का विशिष्ट महत्त्व है। शिशिर कुमार दास ने कहा है कि “The Comparatist also wants to come out of the confines of language and geography, but not so much to identify the best in all literature as to understand the relationships between literatures in their totality. His goals too is ‘world literature’ not in the sense that Goethe or Rabindranath Tagore had used it, but in the sense of all literary traditions.”¹²

आज के समय में साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन का महत्त्व पहले से कहीं अधिक है। क्योंकि इस सभ्यता की नाना अभिव्यक्तियाँ मनुष्य और मनुष्य की एकता का ही प्रसंग रचते हैं। मनुष्य के अधिक जीवंत साझी संस्कृति के लिए साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन की प्रासंगिकता न सिर्फ महत्त्वपूर्ण है, बल्कि अपरिहार्य भी है। तुलनात्मक साहित्य के अध्येता को हंस के नीर-क्षीर विवेक के गुण से समृद्ध होना चाहिए। इतना कुशल कि वह दूध और पानी में न सिर्फ अंतर कर सके बल्कि उनमें निहित गुणों की एकता का महत्त्व भी स्थापित कर सके।

1.3. साहित्य में तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता

साहित्य कल्पबद्ध नहीं होता, वह कालजयी होता है। अतः विभिन्न भाषाओं के साहित्य, विभिन्न कालों और विभिन्न रचयिताओं के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। इससे विभिन्न देशों एवं जातियों के बीच पारस्परिक भाव विनिमय सहज होता है। सांस्कृतिक और सामाजिक परिवेश में निहित अंतर स्पष्ट होता है। दोनों साहित्य की

¹² Comparative literature- theory and practice- ed. Amiya dev, sisir kumar das, p-96

विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं। सांस्कृतिक एकता की प्रतिष्ठा का मार्ग उन्मुक्त होता है तथा अनुवाद एवं आदान-प्रदान के माध्यम से दोनों भाषाएँ एवं साहित्य समृद्ध होते हैं।

तुलनात्मक अध्ययन की उल्लेखनीय सामाजिक उपयोगिता है। इससे शोधार्थी की दृष्टि विकसित होती है। साहित्य आनंद के साथ अनुभूति भी प्रदान करता है। इसके क्षेत्र में व्यापकता लाने के लिए किसी एक भाषा के साथ दूसरी भाषा के साहित्य की तुलना अपेक्षित है। इससे आलोच्य साहित्य द्वय में होने वाले साम्य एवं वैषम्य निरूपित होते हैं। किसी अंचल विशेष के धर्म, आचार-विचार, चाल-चलन, शिक्षा-दीक्षा, आस्था-विश्वास, व्यापार-वाणिज्य तथा मूल्यबोध आदि के बारे में भी अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है। इस अध्ययन से दोनों भाषा साहित्य में सादृश्य, वैषम्य तथा विशेषताएँ भी सहज रूप से स्पष्ट हो जाते हैं। शोधार्थी अपने भाषा साहित्य की उन्नति के साथ तुलनीय साहित्य की विशेषताओं के बारे में अध्ययन कर सकता है। इन्हीं कारणों से तुलनात्मक अध्ययन की सामाजिक आवश्यकता स्वीकृत है।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का आग्रह है कि “भारतीय संस्कृति की एकता के वे तत्व प्रकाश में आने चाहिए जो विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों के माध्यम से मुखर हुए हैं। ऐसे विषयों में सांस्कृतिक एकता और प्रादेशिक विशेषताओं का युगत्म अध्ययन अपेक्षित होगा.....वस्तुतः लोक-संस्कृति और प्रादेशिक संस्कृतियों से सम्बंधित समस्त अनुशीलन जातीय जीवन की विविधता में एकता का संकेत करने का लक्ष्य ही रख सकता है।”¹³

तुलना में एक मनोवैज्ञानिक सत्य निहित है। कभी यह व्यक्ति को हीनमन्यता से ग्रसित करता है तो कभी उसके व्यक्तित्व को उदार एवं सहनशील बनाता है। तुलनात्मक अध्ययन करते समय शोधार्थी मातृभाषा के प्रति अधिक जागरूक होता है। मातृभाषा के गौरव तथा विशेषताओं के प्रति अधिक जागरूक होता है। मातृभाषा के गौरव तथा विशेषताओं के प्रति

¹³ अनुसंधान की प्रक्रिया: विषय-निर्वाचन-1 (लेख से)- आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, पृ. 75

सचेतन होता है। पूर्ववर्ती आलोचकों के मतों का उपयोग करता है तथा उपेक्षित पहलुओं की ओर ध्यान देता है।

विभिन्न भाषाओं, धर्मों तथा विचारधाराओं के पारस्परिक संबंध पर ध्यान केंद्रित होने से तुलनात्मक साहित्य की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी है। विभिन्न प्रांतों के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक साम्य-वैषम्य, लोगों की जीवन शैली तथा भाषाओं के स्वरूप उद्घाटन हेतु तुलनात्मक साहित्य की आवश्यकता पायी जाती है। किसी भाषा विशेष के रचयिताओं के साहित्य का भी तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। हेनरी रीमाक ने लिखा है कि “Extend the study of parallels to phenomena pertaining to two different civilization.”¹⁴

साहित्य में मुख्यतया तुलनात्मक मूल्यांकन होता है। अतः इसे सांस्कृतिक भी कहा जाता है। दो अथवा उससे अधिक सांस्कृतिक परंपरा के अंतर्गत साहित्यकारों का पारस्परिक संबंध संभव होता है। जैसे- वाल्मीकि के साथ होमर, कालिदास के साथ भर्जिल, सोफोक्लिस के साथ शेक्सपीयर के साहित्य की तुलना भी तुलनात्मक साहित्य के अंतर्गत है। अतः साहित्य के समग्र स्वरूप का आकलन करने के लिए पहले उसके विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों के बीच तुलनात्मक अध्ययन होना आवश्यक है।

1.4. विश्वसाहित्य में तुलनात्मक अध्ययन

विश्वसाहित्य की अवधारणा का आधार आरम्भ में यूरोप का दृष्टिकोण रहा जिसके अनुसार विश्वसाहित्य का प्रारम्भिक अर्थ यूरोपीय साहित्य तक सीमित था। 20वीं शताब्दी में विश्वसाहित्य के अर्थ में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। विश्व के बारे में जो यूरोप केंद्रित जातिगत विशिष्ट अवधारणा थी। उसके अर्थ में एक खास तरह की व्यापकता आई। इस प्रकार

¹⁴ Comparative literature and literary theory: survey and introduction - wrich weeinstein, p-3

विश्वसाहित्य का दायरा यूरोप के बाहर तक फैला और उसके अंतर्गत विश्व के दूसरे क्षेत्रों के साहित्य और तुलनात्मक अध्ययन को स्थान दिया गया। अब विश्वसाहित्य का तात्पर्य है- संसार में किसी भी साहित्य का अध्ययन अर्थात् सार्वभौमिक स्तर पर साहित्य के इतिहास को ही विश्वसाहित्य माना जाता है। विश्वसाहित्य की संकल्पना का अर्थ विस्तार से समझने के लिए एस.एस.प्रॉवर का 'कार्ल मार्क्स और विश्वसाहित्य' मौलिक तुलनात्मक ग्रंथ है। कार्ल मार्क्स के चिंतन की प्रचंड व्याप्ति और गहनता इस ग्रंथ में उपलब्ध है। तुलनात्मक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से साहित्य का अध्ययन करने की उनकी स्थूल व्यवस्था वादातीत थी। कार्ल मार्क्स और ग्योएथे की विश्वसाहित्य की संकल्पना में ज्यादा अंतर नहीं है। ग्योएथे की संकल्पना कुछ ज्यादा भाषाओं के साहित्य तक थी।

यूरोप में पुनर्जागरण काल में मानवीय ऐक्य का पुनरुद्धार शुरू हुआ। गोदे (1740-1832) ने विश्व साहित्य की संकल्पना दी थी। यूरोपीय विश्वविद्यालय में भाषा साहित्य विभाग के अलावा तुलनात्मक के भी विभाग खुले। इटली, फ्रांस के पश्चात अमेरिका के विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक साहित्य का पठन पाठन शुरू हुआ।

इंद्रनाथ चौधरी ने लिखा है कि “विश्वसाहित्य के इतिहास विषयक ग्रंथों में विभिन्न राष्ट्रीय साहित्यों को विभिन्न माध्यमों से बाँट कर या एक दूसरे के सान्निध्य में रखकर अध्ययन किया जाता है या फिर विश्वसाहित्य के विभिन्न आंदोलनों, प्रवृत्तियों या कालों का विवरण देते हुए विश्लेषण होता है।”¹⁵ मार्क्स में विश्वसाहित्य संकल्पना में पश्चिमी यूरोप की चौखट आड़े आई। उसने भारत, चीन और उत्तर अमेरिका के कुछ ग्रंथ और ग्रंथकारों के साथ ‘अरेबियन नाईट्स’ और ‘हुमान’ कथाओं ने उसे आकर्षित किया था। साहित्य कृतियों की चर्चा आर्थिक, सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भों में तुलनात्मकता के आधारों पर करने का आग्रह उन्होंने रखा था। एक भाषा के ग्रंथ अथवा लेखकों की तुलना करने के लाभों की

¹⁵ तुलनात्मक साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य- इंद्रनाथ चौधरी, पृ.30

सूचना दी थी पर मार्क्स के लेखन के इन मुद्दों का विस्तार समुचित दिशा में नहीं किया गया। स्तालीन के समय में तुलनात्मक साहित्य पर रूस में प्रतिबंध लग गया।

उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप की साहित्य परम्परा से ही विश्वसाहित्य का अर्थ में तुलनात्मक साहित्य के संदर्भ में उसी केंद्र के आसपास घूमता था। तुलनात्मक साहित्य बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक विश्वसाहित्य की सीमा में ही अटक कर रह गया था। दोनों की श्रेणी में फर्क अवकाश, काल, गुणवत्ता और उत्कृष्टता के घटकों के आधार पर किए जाने लगे। यूरोपीय साम्राज्य के विस्तार के साथ-साथ ही उपनिवेशी साहित्य और संस्कृति का सम्पर्क बढ़ा। तुलनात्मक साहित्य को महत्व मिलने लगा। फिर भी विश्वसाहित्य और तुलनात्मक साहित्य में मूलभूत तुलनात्मक साहित्य की है। अमेरिकन संकल्पना में वाङ्मय और अन्य कक्षा के सम्बंधों का विश्लेषण अभिप्रेत है वैसा आग्रह नहीं है। तुलनात्मक साहित्य की फ्रेंच कल्पना में अधिक बंदिशें हैं। वह विशिष्ट पद्धति का निर्देश करती है, विश्वसाहित्य का वैसा आग्रह नहीं है। तुलनात्मक साहित्य में साहित्य कृति, लेखक, प्रवृत्ति अथवा मध्यवर्ती कल्पना से अथवा क्षेत्रों से करना प्राथमिक आवश्यकता है। इसके विपरीत रवीन्द्रनाथ टैगोर, काउण्ट लिओ टॉलस्टॉय, गिशिमा, टॉनी मोरिसन, डेरेक वॉलकॉट जैसे लेखकों पर निबंध संग्रह 'विश्वसाहित्य के मानदंड' रूप में प्रकाशित है। उसमें एक भी तुलना समाविष्ट न हो तो भी चलेगा। प्रो. नगेंद्र ने कहा है- "सार्वभौम साहित्य की संकल्पना तुलनात्मक साहित्य की संकल्पना से उद्भवीत है।"¹⁶

आज विश्वसाहित्य का अर्थ है, पृथ्वी पर किसी भी साहित्य का अध्ययन। सामान्य रूप से वाङ्मय के इतिहास को ही विश्वसाहित्य माना जाता है। भिन्न राष्ट्रों के साहित्यों को विविध भाग में विभाजित करके अध्ययन किया जाता है। उस इतिहास के आधार पर भिन्न वाङ्मयीन आंदोलन, प्रवृत्ति, कालखंड इनका विश्लेषण किया जाता है। विश्वसाहित्य का दूसरा

¹⁶ तुलनात्मक साहित्य विश्वकोश- प्रो. जी. गोपीनाथन, पृ. 325

अर्थ केवल विशिष्ट से ही नहीं पर काल से भी जुड़ा हुआ है। काल-प्रवाह में स्थिर अभिजात्य साहित्य श्रेष्ठ होता। तभी उसका समावेश विश्वसाहित्य में होता है। रामायण, महाभारत, होमर का ओडिसी, वर्जिल रचित एनीड और मिल्टन का पैराडाइट लॉस्ट महाकाव्य, सर्वान्तेस रचित 'डॉन किहोते', 'बन हन्ड्रेड-इयर्स ऑफ सॉलीट्यूट', प्रेमचंद्र रचित 'गोदान' उपन्यास, महाकवि कालिदास रचित 'राजा ईडिपस' नाटक आदि विश्वसाहित्य के कुछ उदाहरण हैं।

केवल योग्यता ही नहीं, अपने राष्ट्र की सीमा बाहर प्रसिद्धि प्राप्त साहित्य कृतियों का अध्ययन भी आज विश्वसाहित्य समझा जाता है। अल्बेर काम्यू, विलियम फॉकनर, रवींद्रनाथ ठाकुर ऐसे हाल ही के कुछ उदाहरण इस संदर्भ में दिए जा सकते हैं। विश्वसाहित्य की तरह तुलनात्मक साहित्य में साहित्यिक कृति की उपयुक्तता और कालजयी योग्यता कसौटी अथवा आज और कल का साहित्य जैसे निष्कर्षों के आधार पर अध्ययन नहीं होता। जिसकी तुलना संभावित है वह की जाती है। भारत में 1907 में रवींद्रनाथ ठाकुर ने तुलनात्मक साहित्य के लिए 'विश्वसाहित्य' शब्द का प्रयोग अपने भाषण में किया। उनकी संकल्पना ग्योएथे की संकल्पना से बहुत ही भिन्न है। यह बात इसके कालिक और स्थानीय संदर्भ देखते ही ध्यान में आती है। सन् 1954 में तुलनात्मक साहित्य की एक अंतर्राष्ट्रीय परिषद की स्थापना हुई। सन् 1955 में इसका पहला अधिवेशन वेनीस नगरी में संपन्न हुआ। एतदपूर्व विश्वकवि रवींद्रनाथ ने अपने 'विश्व साहित्य' शीर्षक निबंध में लिखा था "यह धरती मेरा, तुम्हारा और उनका खेत नहीं है। धरती को ऐसा सोचना अत्यंत ग्राम्य भावना है। ठीक उसी प्रकार साहित्य भी मेरा, तुम्हारी या उनकी रचना नहीं होता। सामान्यतया हम साहित्य को ऐसी ग्राम्य भावना के रूप में स्वीकार करते हैं। उसी ग्राम्य संकीर्णता से अपने को मुक्त करके विश्व साहित्य में विश्व मानव को देखने का लक्ष्य हमारा उद्देश्य होना चाहिए। प्रत्येक लेखक की

रचना में किसी संपूर्णता को अपनाना एवं उसी संपूर्णता में मानव की अभिव्यक्ति के प्रयास का संबंध स्थापित करना है।”¹⁷

विश्वसाहित्य में मनुष्य अपना आत्मानंद शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है। उसका वर्णन त्यागी अथवा भोगी होता है। विश्व में मानव की अंतः प्रेरणा एक ही तरह की होती है। विश्व का अर्थ ज़मीन के टुकड़े नहीं हैं। उसी तरह साहित्य का अर्थ भिन्न लेखकों की साहित्य कृतियों का फलित नहीं है। मानव की सम्पूर्ण एकात्मकता का दर्शन विश्वसाहित्य द्वारा ही होता है। विश्व-दर्शन की तात्त्विक भूमिका में ‘तुलनात्मक’ और ‘विश्व’ साहित्य में अंतर नहीं रहता। महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर की तरह ही अरविंद घोष और कुमारस्वामी ने अपने तरीकों से पौर्वात्य और पाश्चात्य साहित्यों का समन्वय साधने का प्रयत्न किया था। ठाकुर ने राष्ट्रीय सीमाओं के उस पार विश्वमानव का आदर्श रखा था पर वे ‘राष्ट्रवादी’ और ‘प्रति उपनिवेशवादी’ थे यह बात भूलनी नहीं चाहिए।

मार्क्सवादी विचारधारा में ‘तुलनात्मक’ के स्थान पर ‘विश्व’ शब्द को ज्यादा महत्त्व दिया जाता है। दूसरी तरफ सन् 1827 में ग्योएथे ने जो प्रस्तुत किया था, उस विश्वसाहित्य की धूमिल कल्पना को आत्मसात् करने का प्रयत्न पाश्चात्य जगत में बार-बार कैसे होते हैं। रवींद्रनाथ के अनुसार “तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के लिए हमें यह मान कर चलना होगा कि विश्व की विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य एक सम्पूर्ण इकाई है क्योंकि, असंख्य ऐतिहासिक तथा आध्यात्मिक अंतःसंबंधों से रचित विश्व साहित्य में इनकी खोज और अध्ययन की तुलनात्मक साहित्य का कार्य है। यह बात सही है कि, तुलनात्मक पद्धति के आधार पर इन दोनों में अंतर स्पष्ट है मगर इस अंतर को चाहे हम कितना भी परिभाषित करें,

¹⁷ तुलनात्मक साहित्य हिंदी और उड़िया के परिप्रेक्ष्य में- डॉ. अरुण होता, पृ.3

अध्ययन के ऐसे विस्तृत क्षेत्र हैं जहाँ विश्वसाहित्य और तुलनात्मक साहित्य परस्पर अति छादित हो जाते हैं।”¹⁸

इक्कीसवीं शताब्दी में वैश्विक साहित्य परम्परा, भाषा, इतिहास और भूगोल आदि एक होकर भूत और वर्तमान काल के साहित्यों का समूह बनेगा ऐसी अपेक्षा है। वाङ्मयीन अभिव्यक्ति और समाज एक में हो रहे हैं। उसी के कारण तुलनाकारों का विश्वसाहित्य का स्वप्न फिर से पल्लवित होकर पसर रहा है।

1.5. तुलनात्मक अध्ययन की प्रासंगिकता (दलित एवं अश्वेत स्त्री कविताओं के संदर्भ में)

किसी भी कवि अथवा लेखक की रचना का स्वतंत्र मूल्यांकन संभव नहीं है क्योंकि वह अपने काल अथवा अपनी परंपरा से अलग नहीं रह सकता। इसलिए उसके पूर्ववर्ती, समकालीन एवं परवर्ती कवियों से उसकी तुलना करना आवश्यक है। विभिन्न भाषाओं के रचनाकारों की तुलना करते समय उन भाषाओं की सांस्कृतिक परंपराओं के बारे में जानकारी अपेक्षित है। प्राचीन, लोकभाषा एवं लोक साहित्य की आधुनिक साहित्य से तुलना करते समय उसके भाषा वैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर भी विचार किया जाता है।

तुलनात्मक साहित्य में आलोचना किसी समय, लेखक अथवा रचना तक सीमित नहीं रहती। विकसित राष्ट्रों में तुलनात्मक अध्ययन पर विशेष महत्व दिया जाता है। यह मनुष्य की अभीप्सा को सार्थकता प्रदान करते हुए देश के लिए लाभदायक सिद्ध होता है। इससे सामाजिक मूल्यबोध तथा मनुष्य के गौरव की पुनर्प्रतिष्ठा होती है।

¹⁸ तुलनात्मक साहित्य भारतीय परिप्रेक्ष्य- इंद्रनाथ चौधरी, पृ. 33

भारतीय संविधान में स्वीकृत सभी भाषाओं के बीच सांस्कृतिक एकता की स्थापना के उद्देश्य के लिए तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन को अधिक महत्व दिया जाता है। हिंदी के साथ दूसरी भाषाओं के साम्य-वैषम्य की तुलना की जा रही है। विभिन्न भाषाओं के साहित्य में काल एवं प्रवृत्ति के अनुसार समानताएँ होती हैं तो भौगोलिक ऐतिहासिक आदि दृष्टिकोण से विषमताएँ होती हैं। इस संदर्भ में डॉ. रामेश्वरलाल ने कहा है “हिंदी भाषा और साहित्य को केंद्र में रख कर, उसे भारतीय राजनीतिक और सांस्कृतिक एकता का माध्यम बनाते हुए, भारत की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का साहित्यिक और मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी अब अधिक वेग और गंभीरता से होने लगा है। इस अध्ययन के अंतरालों में से भारतीय आत्येक्य के बहुमूल्य उपादान प्रस्फुटित होंगे, इसमें संदेह नहीं।”¹⁹

भारत के नये सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के प्रति अभिरुचि बढ़ रही है। विभिन्न जाति, धर्म, शिक्षा, संप्रदाय, भाषा, विचारधारा, राजनीति एवं जीवन शैलियों के आधार पर भारत विभाजित है। इस विशाल भारत में भावगत एकता की प्रतिष्ठा के लिए तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन उल्लेखनीय सिद्ध होगा। राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने में ऐसे अध्ययनों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होगी। भाषा एवं साहित्य को केंद्र में रख कर भारत की सांस्कृतिक एकता की रक्षा की जाती सकती है। केवल सांस्कृतिक नहीं, भावगत तथा मनोवैज्ञानिक एकता की प्रतिष्ठा हेतु तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन भाषा साहित्य के महत्त्व को विकसित करता है। इन्हीं कारणों से तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन प्रासंगिक है।

इस शोध-विषय के आधार पर दलित एवं अश्वेत स्त्री कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन करना है। आज के दौर में दोनों ही साहित्य मुख्यधारा के महत्त्वपूर्ण हिस्से हो गए हैं

¹⁹ शोध: तत्त्व और दृष्टि- डॉ. रामेश्वरलाल खंडेलवाल, पृ. 113

और सामाजिक दस्तावेज के बजाय अब साहित्य और कलाकृति के रूप में इन्हें स्वीकृति प्राप्त है। इन्हें अवश्य ही हाशिये पर रखने का प्रयास किया जाता रहा है।

भारत में दलित और अमेरिका में अश्वेतों के जीवन यथार्थ एक समान हैं। दोनों के जीवन में गरीबी, अज्ञानता, शोषण और परायापन है और इनकी अभिव्यक्ति दोनों ही में विरोध, गुस्सा, आक्रामकता के रूप में हुई है। अश्वेत साहित्य की तीन सशक्त औपन्यासिक कृतियों- ‘नैटिव सन’, ‘गो टेल इट ऑन दि माउटेन’ और ‘इनविजिबुल मैन’ में अश्वेतों के प्रति श्वेतों के अमानवीय व्यवहार और तज्जन्य भयानक मानसिक प्रभावों का सटिक चित्रण हुआ है। दलित साहित्य ने भारत में समतुल्य संरचनाओं से अभाव का जिक्र किया है तथापि बाबूगाम बिगुल की लम्बी कहानी ‘सूद’, केशव मेश्राम के उपन्यास ‘पोखरन’ और सुधाकर गायकवाड़ के ‘शूद्र’ में दलित जीवन का उल्लेख मिलता है।

जिस तरह भारत में दलित साहित्य ने स्थापित मानदण्डों और वर्चस्वशाली संस्कृति को चुनौती देते हुए नए मानदण्ड की स्थापना की है और अपनी वर्चस्वहीनता या हाशिए की स्थिति को ‘वैकल्पिक’ एवं समस्तरीय रूप में प्रस्तुत किया है। वही काम अमेरिका में अफ्रो-अमेरिकी साहित्य ने भी किया है। दलित साहित्य में औपन्यासिक रचना प्रवृत्ति का वैसा आवेग नहीं है जैसा- अफ्रो-अमेरिकी साहित्य में है। साथ ही वे दलित साहित्य विमर्श में आगे बढ़ने की प्रवृत्ति के अभाव की भी बात करते हैं। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कवयित्रियों ने अपने कविता के माध्यम से अपने जीवन के यथार्थ को व्यक्त किया। माया एंजेलो अपनी कविता ‘Phenomenal Woman’ में लिखती हैं,

“The bend of my hair,

The palm of my hand,

The need for my care.

Cause I'm a woman

Phenomenally.

Phenomenal woman,

That's me.”²⁰

वही दूसरी तरफ सुशीला टाकभौरे अपनी कविता 'प्रशंसनीय नारी' में कहती हैं,

“लक्ष्मी दुर्गावती सरीखी

प्रशंसनीय हर नारी है,

शक्ति-सामर्थ्यवान वह

नहीं किसी से हारी है।

इसीलिए अतिशय प्रशंसक

मैं नारी हूँ, तुम नारी हो सबल-समर्थ

उसी देश की, जिसमें नारी

शोषित और बेचारी थी।”²¹

दलित और अश्वेत साहित्य की रचना केवल पुरुषों ने ही नहीं की बल्कि, स्त्रियों ने भी कलम को हथियार बनाकर अपने दोहरे अभिशाप को अभिव्यक्त किया है। कविता और अन्य विधाओं के माध्यम से दोनों ही साहित्य में स्त्रियों ने अपने दुख, दर्द, पीड़ा को प्रस्तुत किया है। जीवन में जितने अभाव, कष्ट और दुःख हो सकते हैं दलित और अश्वेत का जीवन उन सबसे परिपूर्ण रहा है। जितनी, घृणा, अपमान, अन्याय और उपेक्षा उसने सही है। वह भारतीय और अमेरिकी समाज की असभ्यता, अमानवीयता और बर्बरता का इतिहास बयान करती है।

²⁰ And still I rise- maya angelou, p-10

²¹ मेरे काव्य-संग्रह (यह तुम भी जानो, तुमने उसे कब पहचाना)- सुशीला टाकभौरे, पृ. 70

1.6. तुलनात्मक अध्ययन की दशा और दिशा (दलित एवं अश्वेत स्त्री कविताओं के संदर्भ में)

तुलनात्मक अध्ययन की दिशा में हिंदी और अफ्रो-अमेरिकन इस समय पथप्रदर्शन कर रहा है। यद्यपि इस क्षेत्र में अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक कार्य सम्पन्न न हो सका। फिर भी उसकी उपलब्धि नगण्य नहीं है। इस दिशा में कुछ विद्वानों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस विषय पर आधारित अब तक के मिले शोध-कार्य की जानकारी नीचे निम्नलिखित है-

1. दलित लिटरेचर एण्ड अफ्रीकन- अमेरिकन लिटरेचर- सं. एन.एस.एस्टॉन, प्रेस्टिज बुक्स, नई दिल्ली, 2001

इस संकलन में कुल चौदह आलेख हैं। अंग्रेजी में लिखे गए इन आलेखों में से दो आलेख तुलनात्मक पर केंद्रित हैं। इसमें दूसरे आलेख में दलित और अफ्रीका-अमेरिकन साहित्य के बीच तुलना की गई है।

2. दलित और अश्वेत साहित्य: कुछ विचार- सं. चमन लाल, सचिव, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला, 2001

भारतीय दलित साहित्य में दलित लोगों ने अपने आलेख आदि में अपने विचारों को व्यक्त किया है। इस पुस्तक में दलित साहित्य को केंद्र में रखकर उसका विश्लेषण किया गया है। इसमें कुल पंद्रह आलेखों का संकलन किया गया है। जिसमें केवल एक ही आलेख दलित साहित्य और अमेरिकन नीग्रो साहित्य पर है। जो शरण कुमार लिंगबाले के द्वारा लिखा गया है। उसका शीर्षक में दलित और अश्वेत साहित्य के नाम पर रख गया है, परंतु पुस्तक की रूपरेखा में केवल एक ही आलेख अश्वेत साहित्य के बाद में लिखा गया है।

'ब्लैक लिटरेचर' वह दलित साहित्य दोनों प्रवृत्तियों में अनेक समानताएं भी हैं व कुछ असमानताएं भी देखी जा सकती हैं। ब्लैक, दलित व प्रगतिशील इन तीनों प्रवृत्तियों के साहित्य की आधार भूमि है- सामाजिक यथार्थ या आलोचना की भाषा में यथार्थवाद।

इस आलेख में अमेरिकन नीग्रो और दलित के जीवन के आरंभिक रूप के साथ-साथ दोनों में समानताएं और विषमताओं को भी दिखाया गया है। परंतु किसी भी गद्य या पद्य विधा या किसी भी रचनाकार की रचना के विषय में नहीं लिखा गया है। इस आलेख को पढ़कर दिमाग में एक पृष्ठभूमि बन सकती है। पुस्तक के शीर्षक के अनुसार और कहीं भी अश्वेत साहित्य का उल्लेख नहीं किया गया है।

3. दलित एंड अफ्रीकन अमेरिकन्स: ए स्टडी इन कंपैरिजन- एस. डी. कपूर, कल्पज पब्लिकेशन, दिल्ली, 2004

इस पुस्तक में कुल चार अध्याय हैं। जिसमें उन्होंने दलित और अफ्रो-अमेरिकन लोगों की दासता से आजादी तक के सफर के बारे में व्यक्त किया है। साथ ही गुलामी से मुक्ति की ओर प्रगति हुई। उनमें चेतना का विकास हुआ। जिसके माध्यम से साहित्य बना फिर एक ऐसे समाज का निर्माण हुआ जो कहीं छुपा हुआ है। इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य उस इतिहास को सामने लाना है जो मनुष्य के इतिहास में अति पीड़ा झेलने वाला समुदाय है। इन दोनों समाज की तुलना जीवन और साहित्य के माध्यम से करना अनिवार्य है।

एस. डी. कपूर का कहना है कि इस पुस्तक को लिखने की प्रेरणा दो प्रसिद्ध चिंतकों को पढ़ने के बाद हुई। प्रथम अमेरिका के डब्लू. ई. बी. डुबॉएस और दूसरे हैं भारत के बाबा साहब अम्बेडकर। इन दोनों साहित्य को तुलना करने का आधार भी यह दोनों है। “The identification with the black American and south African runs so deep that the organizers of the centenary celebrations of Jyoti Rao Phule

decided to invite Nelson Mandela, who happened to be visiting india during that period, to honour him as a crusader for freedom and to present him two important documents of dalit struggle in india 'slavery' by Jyoti Rao Phule and 'Annihilation of caste' by B.R. Amedkar.”²² अर्थात् अश्वेत अमेरिकी और दक्षिण अफ्रीकी के साथ पहचान इतनी गहरी है कि, ज्योति राव फुले के शताब्दी समारोह के आयोजकों ने नेल्सन मंडेला को आमंत्रित करने का फैसला किया। जो उस अवधि के दौरान भारत का दौरा करने वाले थे, उन्हें स्वतंत्रता के लिए एक योद्धा के रूप में सम्मानित करने और पेश करने के लिए। भारत में दलित संघर्ष के दो महत्वपूर्ण दस्तावेज ज्योति राव फूले की 'गुलामी' और बी.आर.अंबेडकर की 'जाति का सफाया' है।

यह पुस्तक एक आलोचनात्मक कृति के रूप में लिखी गई है। इसमें दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन के इतिहास, जीवन, साहित्य, संघर्ष और उनके विकास के बारे में बताया गया है। परंतु कई ऐसे पहलू हैं, जो दलित स्त्री और पुरुष के संदर्भ में होना चाहिए। जिस पर विचार करना अत्यंत आवश्यक है, वह बहुत कुछ छूट गया है।

4. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र- डॉ. शरणकुमार लिम्बाले, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

डॉ. शरण कुमार लिंबाले के द्वारा लिखी गई यह पुस्तक मूल रूप में मराठी भाषा में लिखी गई है। जिसका अनुवाद रमणिका गुप्ता ने किया है। इस पुस्तक के चौथे अनुक्रमांक में 'दलित साहित्य और अमेरिकन निग्रो साहित्य' पर तुलनात्मक विचार प्रस्तुत किया है। "निग्रो साहित्य में दलित साहित्य और आंदोलन दोनों को आलोचित किया- संबल दिया और जो दलित साहित्य के सृजन पर ही प्रश्न उठाते थे उन्हें मुंह-तोड़ जवाब देने के लिए एक ढाल का काम

²² Dalit and African-Americans – S.D.Kapoor, p- 16

भी किया। हालांकि नीग्रो साहित्य की दलित साहित्य से बहुत सी समानताएं हैं, इसके बावजूद बहुत असमानताएं भी हैं।”²³

ऐसे भी नीग्रो ईसाई थे। जिनमें जन्मजात जाति नहीं होती लेकिन वर्ण (रंग) के आधार पर उनका दमन होता था। उनका दमन करने वाले भी ईसाई ही थे जो गोरे थे। यह लोग इन्हें रंग के आधार पर गुलाम तो बनाते थे पर वे इन्हें प्रशिक्षित भी करते थे। जिससे इनका व्यक्तिगत विकास होता रहता था। गुलाम मालिक को अपने दाम चुका कर आजाद भी हो सकते थे। व्यक्तिगत विकास और शिक्षा के लिए उन पर कोई धार्मिक प्रतिबंध नहीं था।

इस पूरे पुस्तक में केवल दस-बारह पन्नों में ही दलित एवं निग्रो साहित्य की तुलना की गई है। परंतु इतने कम पृष्ठों में भी लेखक ने एक पृष्ठभूमि तैयार की है जो किसी भी व्यक्ति को अश्वेत साहित्य में रुचि दिला सकता है। अश्वेत साहित्य की एक सुंदर आधार भूमि प्रस्तुत करती है।

5. अमेरिकी ब्लैक साहित्य और हिंदी दलित साहित्य: तुलनात्मक अध्ययन (सन् 1970 से अब तक)- डॉ. सर्वेश मौर्य

इस शोध कार्य के अंतर्गत कुल पाँच अध्याय हैं। इसके अंतर्गत अमेरिकी ब्लैक साहित्य और हिंदी दलित साहित्य: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, अमेरिकी ब्लैक साहित्य और हिंदी दलित साहित्य: आरंभिक संगठन, अमेरिकी ब्लैक साहित्य और हिंदी दलित साहित्य: अवधारणा, अमेरिकी ब्लैक साहित्य और हिंदी दलित साहित्य: अभिव्यक्ति के रूप, अमेरिकी ब्लैक साहित्य और हिंदी दलित साहित्य: केंद्रीय बहसों, व उद्देश्य आदि शीर्षकों के माध्यम से इस तुलनात्मक अध्ययन का शोध कार्य किया है।

²³ दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र- डॉ. शरण कुमार लिंबाले, पृ- 11

डॉ. सर्वेश मौर्य ने अपने इस शोध कार्य में अमेरिकी ब्लैक साहित्य और हिंदी दलित साहित्य की बात की है। प्रथम के तीन अध्यायों में केवल एक पृष्ठभूमि तैयार की, जिसमें अमेरिका में नस्लभेद, ब्लैक कौन?, वर्ण जाति भेद के विरुद्ध संघर्ष की परंपरा को दिखाया है और अंतिम के दो अध्यायों में कहानी, कविता, उपन्यास के साथ-साथ ब्लैक साहित्य में नस्लवाद, पितृसत्ता, धर्म, मार्क्सवाद, माओवाद के बारे में भी लिखा है।

इस कार्य में किसी भी एक विधा पर जोर नहीं दिया है। तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा इन्होंने दोनों साहित्य की आरंभिक पृष्ठभूमि का ढांचा तैयार किया है परंतु कई ऐसे अंग जो दोनों साहित्य में अपना महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं उसे छोड़ दिया है।

6. लिटरेचर एंड मार्गी नलइटी कंपैरेटिव पर्सपेक्टिंग इन अफ्रीकन, अमेरिकन, ऑस्ट्रेलियन एंड इंडिया दलित लिटरेचर - पर्मोद कुमार

इस पुस्तक में दलित एवं अश्वेत साहित्य के बारे में केवल नहीं बताया गया है साथ ही अफ्रीका अमेरिका और भारतीय साहित्य के विषय में बताया गया है। दलित और अश्वेत साहित्य के संदर्भ में जो पृष्ठभूमि साहित्य और उनकी सीमाओं के बारे में स्पष्ट रूप से लिखा है।

7. स्पीकिंग सबलटर्न्स : ए कंपैरेटिव स्टडी ऑफ अफ्रीकन अमेरिकन एंड दलित / इंडियन लिटरेचर - मंत्र रॉय (यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ फ्लोरिडा)

इस शोध कार्य के अंतर्गत अफ्रो-अमेरिकन और दलित समाज, लोग, जाति, रंग, समानता, असमानता, स्त्री आदि विषयों पर अपना शोध प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही हैरियट जाकब्स, फूलन देवी, अमिरि बाराक, नामदेव ढसाल जैसे अफ्रो-अमेरिकन और दलित समाज के प्रमुख कार्यकर्ताओं पर भी विचार प्रस्तुत किया है। दोनों समाज को नज़र में रखकर तुलनात्मक अध्ययन की परिकल्पना को सिद्ध किया है। मंत्रा रॉय ने साउथ फ्लोरिडा

के विश्वविद्यालय से अपना यह शोध कार्य किया है। दोनों समाज के शोषण चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक अपने देश के अतीत और भविष्य पर उनका पहचान छोड़ चुके हैं। अमेरिका और भारत दुनिया का वह देश है। जो मनुष्य को मनुष्य के रूप में ना देख कर केवल रंग और जाति के आधार पर देखता आया है।

अपने प्रथम अध्याय में दोनों साहित्य की आरंभिक चरण के बारे में बताते हुए तुलना किया गया है। विश्व साहित्य में दलित और अश्वेत साहित्य की परिकल्पना को स्पष्ट किया है। परंतु दलित एवं स्त्री साहित्य के विषय में अधिक जानकारी नहीं दी गई है। उन्होंने उस पहलू को छुआ ही नहीं जो अपने संघर्ष से आज एक अलग स्त्रीवादी साहित्य के रूप में उभर कर निकला है। दलित एवं अश्वेत साहित्य स्त्री लेखन के बिना अधूरा साहित्य है।

किसी भी वाङ्मय के साहित्य प्रकारों का उद्गम और विकास करने के लिए लोक साहित्य की समृद्ध परम्पराओं को ध्यान में रखना होता है। मौखिक वाङ्मय के अध्ययन की विशिष्ट समस्याएँ हैं। मौखिक और लिखित साहित्य के पारस्परिक संबंधों का सत्य कभी भी खंडित नहीं हुआ। मौखिक साहित्य का अध्ययन क्वचित ही तुलनात्मक साहित्य होता है पर तुलनात्मक साहित्य ने उसे नया परिणाम दिया है। तुलनात्मक साहित्य में एक-एक पृष्ठ पर तुलना होना जरूरी नहीं हैं। कुल मिलाकर उद्देश्य, दिशा और प्रत्यक्ष स्वरूप पहले ही तय कर लेना तुलनाकार के लिए आवश्यक है। इसके आगे नियम बनाना सम्भव नहीं लगता और उसकी जरूरत भी नहीं है। “एक साहित्य के अन्य साहित्यों पर प्रभाव का अध्ययन करते हुए तुलनात्मक साहित्य वास्तव में उस साहित्य की समग्र संस्कृति का प्रभाव अन्य साहित्यों पर स्पष्ट करता है। सत्यतः यह प्रक्रिया एक साहित्य के विद्वान की अपनी संस्कृति के अतिरिक्त अन्य संस्कृतियों की प्रशंसा करने को बाध्य करता है। इस प्रकार वह इस विभक्त संसार में जन

समुदाय को एक-दूसरे के निकट लाने और मानव-जाति की भिन्नताओं की अपेक्षा एकता पर बल देने की चेष्टा करता है।”²⁴

विश्व में जो कुछ भी जीवित व प्रवाहमान है। वही जीवन को गति, शक्ति व सुंदरता प्रदान करता है। यह सामान्य सच्चाई साहित्य के क्षेत्र में भी लागू होती है। साहित्य को वही प्रवृत्तियाँ नयी जीवन शक्ति देती हैं, जो स्वयं जीवन से अनुप्राणित होती हैं। विश्व में उपनिवेशवाद के क्रमशः अस्त होने के साथ-साथ एशिया, अफ्रीका, लातिनी अमेरिका आदि के देशों में साहित्य संस्कृति के क्षेत्र में जो नवजागरण की लहरें उठी हैं। उसी से विश्व में इस समय अश्वेत साहित्य या ब्लैक लिटरेचर की प्राणवंत धारा बही है और इस समय विश्व की उन्नत समझी जाती भाषाओं में सबसे शक्तिशाली प्रवृत्ति ब्लैक या लैटिन अमेरिकी साहित्य की ही है। जो इन देशों के संघर्षशील लोगों के जीवन को उकेरने वाला साहित्य है।

आधुनिक साहित्य की प्रत्यक्ष, विधा, कथ्य या प्रवृत्ति में कुछ तुलनीय अंश अवश्य विद्यमान रहता है। मगर तुलनात्मक पद्धति के लिए यह आवश्यक है कि तुलनात्मक विश्लेषण एवं तुलनात्मक विवरण के अंतर को प्रकट करते हुए अध्ययन का प्रयास करें। प्रत्येक विवरण में कहीं न कहीं अप्रत्यक्ष रूप से तुलनात्मक होता है, मगर किसी एक पद्धति, ढांचा या प्रतिमान के आश्रय से किया गया। प्रत्येक विश्लेषण ऐसा नहीं होता। इसीलिए तुलनात्मक साहित्य की समस्याओं को समझते हुए पद्धति के रूप में तुलना के प्रयोग में बहुत ही सावधानी बरतनी पड़ती है।

भारत में भी साहित्य में प्रगतिशील जनवादी साहित्य धारा के बाद व साथ-साथ मराठी में सातवें दशक में उभरी दलित साहित्य की धारा अब अन्य भाषाओं में भी पनप कर विकसित हो रही है। कोई आश्चर्य न होगा कि तीसरी सहस्राब्दि व इक्कीसवीं सदी के आगाज

²⁴ कॉम्परेटिव लिटरेचर भोलियम- आई, पॉसिटिंग ऑफ द सेकेंड कॉंग्रेस ऑफ द आई.सी.एल.ए. - विलियम सी. फ्राईडे

तक यह सिर्फ मराठी की ही नहीं पूरे भारतीय साहित्य की केंद्रीय धारा बन कर उभरे। अफ्रीका, अमेरिका व लातिनी अमेरिका के अश्वेत साहित्य की तरह ही भारतीय दलित साहित्य भी भारतीय समाज के उत्पीड़ितों का साहित्य है। इसलिए महाराष्ट्र में सातवें दशक में उभरा 'दलित पैंथर' संगठन अमेरिका के 'ब्लैक पैंथर' आंदोलन से प्रभावित व अनुप्राणित दोनों ही है।

दलित एवं अश्वेत साहित्य दोनों प्रवृत्तियों में अनेक समानताएँ भी हैं व कुछ असमानताएँ भी देखी जा सकती हैं। इसी प्रकार दलित एवं अश्वेत दोनों ही साहित्य प्रवृत्तियों के विश्व के प्रगतिशील व जनवादी साहित्य से भी अनेक समानताएँ हैं। दलित और अश्वेत इन दोनों प्रवृत्तियों के साहित्य की आधारभूमि है- सामाजिक यथार्थ या आलोचना की भाषा में यथार्थवादी। अश्वेत और दलित साहित्य प्रवृत्तियाँ सभी परिवर्तनकामी मानवतावादी साहित्य धारा का अंग है। जिन्हें पाल फेरो की भाषा में 'उत्पीड़ितों का साहित्य' रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इन्हीं के शब्दों में इस साहित्य को 'मुक्ति के लिए सांस्कृतिक कर्म' के रूप में समझा भी जा सकता है।

1.7. निष्कर्ष

बहुभाषिक देश होने के नाते हम एक जटिल चेतना में जीते हैं। बहुभाषिक स्थिति बहुभाषिया अवस्थिति से भिन्न एक विशिष्ट चेतना है और इस स्थिति में पनपने वाले साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए उन मूल ऐतिहासिक तथा साहित्यिक स्रोतों से परिचित होना पड़ता है। जिसकी प्रेरणा से इन साहित्यों ने लगभग एक ही प्रकार के आवेगात्मक तथा बौद्धिक अनुभूतियों का प्रसार हुआ है। तुलनात्मक अध्ययन में पाश्चात्य साहित्य के साथ भारतीय साहित्य के संबंधों तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं में रचित साहित्यों के पारस्परिक संबंधों की जानकारी जरूरी है। “भारतीय वाङ्मय अनेक भाषाओं में अभिव्यक्त एक ही विचार है।”²⁵

तुलनात्मक शोध अधिक उत्तरदायित्व का कार्य होता है। साहित्यिक अध्ययन के आधार पर अनेक भाषाओं के पारस्परिक संबंधों को रेखांकित किया जाता है। अनेकता में एकता का अन्वेषण तुलनात्मक अध्ययन का मुख्य लक्ष्य होता है। विभिन्न भाषाओं के साहित्य के अध्ययन से पारस्परिक भाव-विनिमय सहज होता है। सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवेश के साम्य-वैषम्य स्पष्ट होते हैं। विश्व में भावगत एकता की प्रतिष्ठा हेतु तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन महत्वपूर्ण है। हिंदी भाषा और साहित्य को केंद्र में रखकर प्रादेशिक भाषाओं के साहित्यिक अध्ययन से राष्ट्रीय एकता अखंड बनी रह सकती है।

विश्व के इतिहास में अश्वेत साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है और इस साहित्य ने ही दलित साहित्य को उभारने के लिए प्रेरणा दी। अश्वेत और दलित साहित्य का ऐतिहासिक अवलोकन करने पर विभिन्न कालों, विभिन्न रूपों और विभिन्न धाराओं में इन दोनों साहित्य को देखा जाता है।

²⁵ डॉ. नगेंद्र के सर्वश्रेष्ठ निबंध (भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता)- डॉ. नगेंद्र, पृ. 70

अंत में कहना उचित होगा कि तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में समानता और विषमता देखे जा सकते हैं। मनुष्य की पीड़ा में कोई अंतर नहीं होता है परंतु यहाँ सवाल स्त्री और पुरुष का है। दलित और अफ्रो-अमेरिकन स्त्री न केवल परिवार से लड़ रही है अपितु समाज के कुरीतियों का भी अकेले सामना करना पड़ रहा है। दोनों वर्गों की स्त्रियों ने जो यथार्थ जिया उसे साहित्य में व्यक्त किया। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं के विभिन्न पक्षों पर चर्चा आगे के अध्यायों में की जाएगी।

द्वितीय अध्याय

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखन : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2.0. प्रस्तावना

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन साहित्य आरम्भ होने के पीछे ऐतिहासिक मान्यता निश्चित रूप से जुड़ी हुई है। किसी भी साहित्य के उदय होने का कारण अवश्य होता ही है। भारत में जाति और अमेरिकन में नस्ल के चलते गुलामी की बेड़ियों को साहित्य का सहारा मिला। दलित और अफ्रो-अमेरिकन लेखन के ऐतिहासिक संदर्भ वर्ण-व्यवस्था और रंग भेद को जड़ से मिटाने के लिए उत्पन्न हुआ है। दलित समाज में सावित्रीबाई फुले के कारण स्त्रियों को भी लिखने-पढ़ने की प्रेरणा मिली। डॉ. अम्बेडकर ने भी शिक्षित बनो का नारा लगाया। सन् 1914 को 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हीरा डोम की 'अछूत की शिकायत' को दलित की सर्वप्रथम कविता का दर्जा दिया जाता है। यह कविता भोजपुरी भाषा में लिखा गया है। वहीं अफ्रो-अमेरिकन साहित्य में सर्वप्रथम जो रचना सामने आती है। वह लूसी टेरी की 'बार्स फाइट' कविता है।

इस अध्याय के अंतर्गत दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन साहित्य के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, विकास और आरम्भ की चर्चा की जाएगी। साथ ही दोनों साहित्य के स्त्री लेखन में स्त्री चेतना के पक्ष पर विचार किया जाएगा।

2.1. दलित स्त्री लेखन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मनुस्मृति और हिंदू धर्म ग्रंथों ने ब्राह्मणवादी वर्णव्यवस्था के चतुर्थ वर्ण शूद्रों के खिलाफ जो विष वमन किया उससे सारा समाज तो विषाक्त हुआ ही साथ ही देश को भी हजारों वर्षों तक गुलामी का बोझा ढोना पड़ा। ब्राह्मणवाद ने व्यक्ति की श्रेष्ठता का मापदंड

कर्म के आधार को छोड़कर, स्वार्थवश जन्म को बनाया तभी से 'इंसान' की परिभाषा बदल गई। 'इंसान' के साथ धर्म, संस्कृति और समाज भी बंट गया। पुरोहितवादी-ब्राह्मणवादी समाज में सामाजिक और सांस्कृतिक न्याय और अमानवीय अवधारणाओं ने एक वर्जित समाज की संरचना की और मनुवादी विधान ने जिस वर्णवादी व्यवस्था को जन्म दिया उसकी परिणति जातिगत विभाजन में होनी ही थी।

मानवीय अन्याय का वह वर्णवादी विभेद दुनिया की किसी सभ्यता और समाज-व्यवस्था के इतिहास में मौजूद नहीं है। इसी से यह भी साबित हुआ है कि, मनुष्य धर्म और रोटी के बिना रह सकता है परंतु वह किसी भी मनुष्य, जाति, वर्ण अथवा सम्प्रदाय के वर्चस्व या वैचारिक दासता में नहीं जी सकता।

2.1.1. दलित कौन है?

वर्तमान में दलित अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए चिंतित एवं जागरूक हैं उनमें आत्मसम्मान की भावना पल्लवित हो रही है वे समानाधिकारों की लड़ाई-लड़ने के लिए संकल्पबद्ध हैं। हमारे यहाँ दलित शब्द आधुनिक है लेकिन दलितपन प्राचीन है। दलित शब्द की उत्पत्ति संस्कृत धातु के 'दल' से मानी गयी है जिसका अर्थ 'तोड़ना', 'हिस्से करना', 'कुचलना' है। संस्कृत के समान ही हिंदी-अंग्रेजी में भी 'दलित' शब्द का अर्थ 'विनष्ट किया हुआ' है। धार्मिक शब्दावली में जिन्हें 'अतिशूद्र', 'चण्डाल' और 'अंत्यज' कहा गया। सामाजिक शब्दावली में उन्हें 'अछूत' और कानूनी शब्दावली में 'अनुसूचित जाति' कहा गया। सन् 1932 के पूना-पैक्ट में अछूतों के लिए जहाँ गांधी 'हरिजन' शब्द का इस्तेमाल करते हैं वहीं डॉ. अम्बेडकर ने 'दलित' शब्द का प्रयोग किया।

दार्शनिकता और लाक्षणिकता से मुक्त 'दलित' शब्द अन्याय के प्रतिकार का सूचक है जो सदियों के संताप को अभिव्यक्त करता है जिसका भाव यह है कि वह दमन और शोषण

से मुक्ति की लड़ाई स्वयं लड़ेगा। किसी के दया का मोहताज नहीं है। भारत में दलित शब्द का अत्यधिक प्रयोग 19वीं शताब्दी से ही हुआ है। यद्यपि दलित शब्द आधुनिक है लेकिन उस शब्द से जुड़ी भावना प्राचीन काल में ही उत्पन्न हो गयी थी। प्राचीन काल में दलितों के लिए दास, शूद्र, अतिशूद्र, चण्डाल, अंत्यज, अस्पृश्य आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। बाद में 'आदि हिंदू', 'हरिजन' शब्दों का भी प्रयोग किया गया। भारतीय 'वर्ण व्यवस्था' का 'जाति व्यवस्था' में परिवर्तन होने से शूद्र की दयनीय अवस्था हो गयी थी।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार 'दलित' शब्द का अर्थ है कि "जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनिष्ट, मर्दित, पस्त-हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि।"²⁶ दलितों को विभिन्न नामों से हमारे देश में पुकारा जाता है जैसे- दास, दस्यु, राक्षस, असुर, निषाद, अवर्ण, परिहार आदि द्रविण, पञ्चम, मनिच्छ, स्वपच, चण्डाल, अछूत, बाहरी जातियाँ, डिप्रेस्ड क्लास, अनुसूचित जातियाँ, हरिजन, दलित। प्रदेश के आधार पर भी इन्हें विभिन्न नामों से हमारे देश में पुकारा जाता है जैसे, पंजाबी में 'चूहरा', उत्तर-पश्चिम भारत में 'भंगी', उत्तर भारत में 'लाल बेगी', मराठी में 'महार', तेलगु में 'माल', तमिल में 'पेरियार', मलयालम में 'पुलायन', दक्षिण भारत में 'चण्डाल', बंगाल में 'शूद्र', मद्रास में 'पंचम' और उड़ीसा में 'हरिजन'। इन नामों को हमारी भाषा में से निकालने का प्रयत्न दलित आंदोलनों द्वारा किया गया है।

डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन 'दलित' शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि, "दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।"²⁷ इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि, दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग होता है जो समाज-व्यवस्था के तहत सबसे

²⁶ दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 13

²⁷ युद्धरत आम आदमी (अंक 41-42) - डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, पृ. 14

निचली पायदान पर है। वर्ण-व्यवस्था ने जिसे अछूत या अंत्यज की श्रेणी में रखा। उसका दलन हुआ। शोषण हुआ, इस समूह को ही संविधान में अनुसूचित जातियाँ कहा गया है जो जन्मना अछूत है।

डॉ.सी.बी.भारती की मान्यता है कि, “नवयुग का एक व्यापक वैज्ञानिक व यथार्थपरक संवेदनशील साहित्यिक हस्तक्षेप है। जो कुछ भी तर्कसंगत, वैज्ञानिक, परम्पराओं का पूर्वाग्रहों से मुक्त साहित्य सृजन है हम उसे दलित साहित्य के नाम से संज्ञायित करते हैं।”²⁸ आज साहित्य, समाज और राजनीति दोनों ही स्तरों पर गैर-दलितों द्वारा भी दलित उत्पीड़न के खिलाफ एक समानांतर आंदोलन खड़ा करने की जरूरत है। यह समय की मांग है कि वे दलित आक्रोश के कारणों को समझें और उस पर गम्भीरता से विचार करें।

2.1.2. दलित आंदोलन का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

दलित आंदोलन का वर्तमान वास्तविक स्वरूप ज्ञात करने के लिए भारत की प्राचीन वर्ण-व्यवस्था के इतिहास पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। इसकी जड़ें अतीत के अंधकार में कहीं छिपी हैं ऋग्वेद से बौद्ध काल, बौद्ध धर्म के पतन से लेकर नवजागरण काल के भारतीय समाज के लगभग 5000 वर्षों के सामाजिक इतिहास में वर्ण-व्यवस्था, जातिभेद, अस्पृश्यता और पतनशील दासता और इनके द्वारा क्रियान्वित आंदोलन के अनेक लिखित प्रमाण प्राप्त होते हैं। भारत में दलितों का इतिहास अतुलनीय है।

सर्वप्रथम गौतम बुद्ध ने अपने संघ में अछूत जातियों को भी शामिल कर समतामूलक समाज के दिशा में कदम बढ़ाया जो कि सहअस्तित्व पर आधारित था। जातिप्रथा को चोट पहुँचाने का यह पहला प्रयास था। मध्यकाल में भक्ति आंदोलन के द्वारा जातिप्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठाई जाने लगी। संतों की विभिन्न रचनाओं में विद्रोही स्वर देखने को मिलते हैं।

²⁸ दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, हंस-11 - डॉ. सी.बी.भारती, पृ. 70

इनमें प्रभु, भक्त, संतों, रविदास, कबीरदास, दादू की वाणी ने आंतरिक सत्य की आग में तपकर वर्ण भेद, अस्पृश्यता, बह्याड़म्बर, जातिप्रथा, शास्त्र की जड़ताजन्य 'अगति' भौतिक अभावों की आग में झुलसते हुए अभिशप्त समाज के सम्मुख नए विश्वास का स्वर जागृत किया है। कबीरदास ने जातिप्रथा पर घोर प्रहार किया वह कोरा भक्ति आंदोलन नहीं था बल्कि उसमें जातिवाद के विरुद्ध विद्रोह के तेवर देखने को मिलते हैं।

भारत के सांस्कृतिक इतिहास में पहली बार शूद्रों, अंत्यजों और सताए हुए वर्गों ने अपने मत दिए और इन संतों ने पहली बार जाति, धर्म, वर्ण तथा एक मानव संस्कृति का नारा बुलंद किया। निम्नवर्गीय साधारणजन की भक्ति आंदोलन का जनसाधारण पर व्यापक प्रभाव हुआ तथा कबीर, रैदास, नाभा, सेना आदि महापुरुषों ने ईश्वर के नाम पर जातिवाद के विरुद्ध आवाज़ बुलंद की।

इस भक्ति आंदोलन ने गौतम बुद्ध द्वारा दी गई वर्ण-विहीन समाज की रचना और दलित आंदोलन के उदय होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा आधुनिक काल के दलित आंदोलन को दिशा प्रदान की जो डॉ. अम्बेडकर और उनके पूर्ववर्ती दलित आंदोलन में देखने को मिलती है। इसके अतिरिक्त 18वीं शताब्दी में अनेक संस्थाओं ने भी दलितों में चेतना लाने का प्रयास किया जिसमें प्रमुख थे रामदेव पंथ, सतनामी पंथ, नवल धर्म, आर्य समाज आदि इन सबने अपनी शिक्षा के माध्यम से धर्म सुधार आंदोलनों के द्वारा आध्यात्मिक चेतना लाने का काम किया। डॉ. विमल थोरात के शब्दों में कहें तो, “डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर द्वारा चलाये गये दलित मुक्ति आंदोलन मूलभूत आंदोलन का लक्ष्य सदियों से चली आ रही अस्पृश्यता की परम्परा, दासता, मूलभूत अधिकारों से वंचित रखने की धार्मिक-धार्मिक रूढ़ियों का विरोध करके, दलितों को एक मानव के नाते उसके मूलभूत अधिकारों को दिलाना तथा उसमें उसके अस्तित्व, अस्मिता के प्रति चेतना की साहित्यिक अभिव्यक्ति ही, जो प्रतिबद्धता

के साथ सड़ी-गली सनातनी परम्पराओं का विरोध करती है। दलित मुक्ति आंदोलन से प्रसूत विचारधारा और बुद्ध तथा डॉ.अम्बेडकर इस साहित्य के प्रेरणास्त्रोत है।”²⁹

समकालीन दलित आंदोलन ने सर्वप्रथम अम्बेडकर का पूर्ववर्ती आंदोलन आता है। इसके अंतर्गत महात्मा ज्योतिबा फुले का नाम महत्वपूर्ण है। वह एक क्रियाशील समाज-विमर्शक थे, सामाजिक परिवर्तन की दिशा में उनका चिंतन-मनन प्रत्यक्ष कृति में उतरता है। ज्योतिबा फुले के आंदोलन की दो विशेषताएँ थीं मेहनत और निर्माण। इस आंदोलन का दूसरा चरण डॉ.अम्बेडकर व उनका समकालीन दलित आंदोलन है। डॉ.अम्बेडकर ने दलितों के लिए कई महत्वपूर्ण आंदोलन किये और सफल भी हुए। तीसरे चरण में डॉ.अम्बेडकरोत्तर दलित आंदोलन आता है। इस समय दो महत्वपूर्ण आंदोलन हुए- ‘भारतीय रिपब्लिकन पार्टी’ और ‘दलित पैथर’।

भारतीय रिपब्लिकन पार्टी ने भूमिहीनों, गरीबों और दलितों को भूमि दिलाने के लिए आरक्षण लागू किया। दलितों और गरीबों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए महिलाओं की स्थिति में सुधार, बदलाव तथा कांग्रेस की गरीब विरोधी नीतियों के लिए संघर्ष किया। आर.पी.आई में टूट-फूट के बाद सन् 1971 में दलित पैथर का उदय हुआ। राजा ढाले और नामदेव ढसाल इसके नेता थे। इन लोगों ने दलित साहित्य आंदोलन की भी नींव डाली। बाबू राव बागुल, पी.ई. सोनकांबले आदि ने कविता, कथा साहित्य, आत्मकथा के माध्यम से दलित राजनीति को एक दिशा दी और इन पैथरों ने जातिवाद व ब्राह्मणवाद के खिलाफ जुझारु संघर्ष का एलान किया। इसने दलित अधिकारों के लिए खुलकर लिखे जाने वाले दलित साहित्य को भी प्रेरणा दी।

²⁹ चिंतन की परम्परा और दलित साहित्य- डॉ.विमल थोरात, पृ.205

दलितों के आंदोलन का उद्देश्य जातिवाद को समाप्त कर सभी को बराबरी का हक दिलाना ही है। जब तक देश में जातिवाद का दंश दलित भोगते रहेंगे और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्र में बराबरी का हक नहीं मिलेगा, दलित आंदोलन चलता रहेगा। डॉ. अम्बेडकर का लक्ष्य था कि, “सामाजिक असमानता दूर करके दलितों के मानवाधिकार की प्रतिष्ठा करना। डॉ. अम्बेडकर ने गहन-गंभीर आवाज में सावधान किया था, 26 जनवरी 1950 को हम परस्पर विरोधी जीवन में प्रवेश कर रहे हैं। हमारे राजनीतिक क्षेत्र में समानता रहेगी किंतु सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में असमानता रहेगी। जल्द से जल्द हमें इस परस्पर विरोधता को दूर करना होगा। वरना जो असमानता के शिकार होंगे, वे इस राजनीतिक गणतंत्र के ढाँचे को उड़ा देंगे।”³⁰

दलित चेतना और दलित आंदोलन के विकास के साथ-साथ दलित साहित्य भी विकसित हुआ जिसने जनवाद-प्रगतिवाद के सांस्कृतिक मुद्दों को अपने अनुभव और यथार्थ की खराद पर घिस कर अपने अनुरूप तराश कर विद्या को प्रखरतम किया।

2.1.3. दलित साहित्य का विकास

लेखन की शक्ति कभी-कभी तलवार से भी अधिक असरदार होती है। भारत में अंग्रेजी सत्ता स्थापित होने पर जब यहाँ सभी लोगों को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला तो शिक्षा से वंचित लोगों की भी आँखें खुल गईं। देश के स्वतंत्र होने और भारत में संविधान लागू होने पर भी जब दलितों की बहुत सी समस्याएँ बनी ही रहीं, तब दलित समाज के बहुत से भुक्त भोगियों ने ही कलम को तलवार बना लिया। वे उसी से दलित मुक्ति या दलित जागरण के युद्ध को लड़ रहे हैं। वास्तव में यही दलित साहित्य की सार्थकता है।

³⁰ डॉ. बी. आर. अम्बेडकर – सं. हरशरण सिंह, पृ-28

दलित आंदोलन का लक्ष्य दलित मुक्ति और उनमें जागरण पैदा करना है। यही लक्ष्य दलित साहित्य लेखन का भी है। इसलिए दलित आंदोलन और दलित साहित्य लेखन दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। डॉ. शरणकुमार लिंबाले के अनुसार दलित साहित्य का अर्थ है कि, “दलितों के दुख, परेशानी, गुलामी, अधःपतन और उपहास के साथ ही दरिद्रता का कलात्मक शैली से चित्रण करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। आह का उदात्त स्वरूप अर्थात् दलित साहित्य।”³¹

‘दलित साहित्य’ एक ऐसा साहित्य है, जो सभी तरह की वर्ण-व्यवस्था, जात-पाँत, ऊँच-नीच, भेदभाव के दायरे से ऊपर है, और जिस धर्म, भाषा और प्रदेश की सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता है। यह समाज के सर्वहारा वर्ग के समान निश्चल और सरल है। छंद, अलंकार और सौन्दर्य शास्त्र की सीमाओं से यह ऊपर है।

जहाँ दलित आंदोलन, सभा, सोसायटी, प्रदर्शन मांगपत्र से आंदोलन करता है लाठी खाता है, जेल जाता है और अपनी समस्याओं की ओर सरकार तथा समाज का ध्यान आकृष्ट करता है। वहीं दलित साहित्यकार अपनी लेखनी से साहित्य की विभिन्न विधाओं से पथ प्रदर्शन कर समाज में जाति-पाति, भेद-भाव, रंग, वर्ण, लिंग, भेद का विरोध करता है। धर्म, जाति की श्रेष्ठता को नकारता है दलित साहित्य मानव मात्र में स्वतंत्रता, समता, लोकतंत्र, न्याय, बंधुता को मानता है। इसलिए दलित साहित्य को भी दलित मुक्ति के एक उपाय के रूप में समझा जाता है। मोहनदास नैमिशराय के अनुसार, “शोषण वर्ग के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए समाज में समता, बंधुता तथा मैत्री की स्थापना करना ही दलित साहित्य का उद्देश्य है।”³²

³¹ दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - डॉ. शरणकुमार लिंबाले, पृ. 42

³² साहित्य और संस्कृति में दलित अस्मिता और पहचान का सवाल, नया पथ, अंक 24-25, जुलाई-सितम्बर, 1997 - मोहनदास नैमिशराय, पृ. 22

महाराष्ट्र दलित साहित्य की जन्मभूमि है। मराठी दलित साहित्य का उद्भव जहाँ इस सदी की छठे दशक को माना जाता है वहीं उत्तरी भारत में दलित साहित्य का प्रादुर्भाव आठवें दशक को माना जा सकता है। महाराष्ट्र में दलित साहित्य की जो भूमि संत चोखमेला, महात्मा ज्योतिराव फुले ने ब्राह्मणवाद के खिलाफ अपने सामाजिक कार्यों और जन जागरण से तैयार की। बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर ने महाड़ तालाब और कालाराम मंदिर सत्याग्रह आंदोलनों से इसमें संघर्ष की बीज बोया और उसे उर्जा दी। उनके 'मूकनायक' व 'बहिष्कृत भारत' समाचार पत्रों ने इस संदर्भ में काफी अहम जिम्मेदारी निभाई। रमणिका गुप्ता की मान्यता है कि, "दुनिया के नब्बे प्रतिशत साहित्य आज़ादी की चाह के लिए ही लिखा जाता रहा है। दलित साहित्य आज़ादी के साथ-साथ समता, बंधुत्व की चाह को भी समान स्तर पर रखकर साहित्य सचता है।"³³

वास्तव में दलित साहित्य के कारण मराठी साहित्य का पूरे भारत में प्रचार हुआ। दलित साहित्य के वैभव के दिनों से पहले मराठी साहित्य में दलित साहित्य का बिल्कुल उल्लेख नहीं है। 2 मार्च, 1958 से दलित साहित्य के सम्मेलन का प्रारम्भ हुआ। बौद्ध साहित्य सम्मेलन, दलित साहित्य सम्मेलन, दलित नाट्य सम्मेलन, अस्मितादर्श मेले, इनके साथ ही जिला और विभागीय स्तर पर हुए, दलित साहित्य सम्मेलन, संगोष्ठी, पुस्तक प्रकाशन समारोह, दलित लेखकों के व्याख्यान, मुलाकात और परिचर्चा इन सब में दलित साहित्य का विकास हुआ है। मराठी के विख्यात दलित लेखक बाबूराव बागूल की यह मान्यता बल देती है कि, "दलित साहित्य का केंद्र बिंदु मानव है और वह मानव के ही इर्द-गिर्द घूमता है।"³⁴

³³ खरी-खरी बात, युद्धरत आम आदमी, अंक 41-42, 1998- सं. रमणिका गुप्ता, पृ. 8

³⁴ दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 22

सन् 1967 के बाद डॉ.वानखेड़े, मा.भि.चिटणीस, बाबूराव बागुल, प्रा.रा.ग.जाधव, प्रा.ल. बा.रायमाने आदि महानुभावों ने मार्गदर्शन दिया था। इसके बाद दलित साहित्य की रचनाएँ होने लगीं। मराठी के दलित साहित्यकारों में से अधिकांश ने अपनी आत्मकथाएँ लिखी है। मराठी के नामदेव ढसाल, दया पंवार, मल्लिका अमरशेख प्रभावशाली कवि हैं। महाराष्ट्र में दलित नेता और साहित्यकार अपने बल पर और अपने संगठन के आधार पर डॉ.अम्बेडकर के नेतृत्व में उनके विचारों से लैस होकर सामाजिक के साथ-साथ राजनीतिक प्रतिबद्धता और संक्षिप्त दृष्टिकोण के साथ उभरे। डॉ. जयप्रकाश कर्दम लिखते हैं कि, “डॉ.अम्बेडकर के ये विचार और मान्यताएँ ही दलित साहित्य का आधार और प्राण हैं। कविता, कहानी, नाटक, निबंध, आत्मकथा और उपन्यास सभी विधाओं में लिखा जा रहा दलित साहित्य डॉ.अम्बेडकर के इन्हीं विचारों से प्रेरित और अनुप्राणित है।”³⁵ दलित साहित्य के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखें तो मराठी दलित साहित्य के पुरुषों में अर्जुन डांगले, नामदेव ढसाल, अरुण काम्बले, राजा ढाले, लक्ष्मण गायकवाड़, लक्ष्मण माने, शरण कुमार लिम्बाले ने अपनी पहचान बनायी है।

डॉ.भीमराव अम्बेडकर आधुनिक भारत के कुछ नेताओं में से एक हैं, जिन्होंने चिंतन और संघर्ष के द्वारा हमारे देश को हर क्षेत्र में प्रभावित किया। वे अपने जीवनकाल में और उसके बाद भी बौद्धिक बहस व राजनैतिक वाद-विवाद के विषय बने रहे। उनकी जीवनी लिखने के बहाने कतिपय लेखकों ने संगठित प्रयास से यह बात सिद्ध करना चाहा कि डॉ.अम्बेडकर एक सामान्य व्यक्ति थे। उन्होंने भारतीय जीवन को सही दिशा नहीं दी। किन्हीं भ्रान्त धारणाओं के वशीभूत इस समाज के वर्ग के लोग एक फर्जी भगवान की पूजा करते हैं। कतिपय लेखकों ने उनके कर्म और विचार से उन्हें देवदूत की कोटि में रखने की कोशिश की।

³⁵ दलित साहित्य दशा और दिशा- माता प्रसाद, पृ.30

स्त्री दलित लेखिकाओं में प्रो. कुमुद पावड़े, ज्योति लांजेवाल, उर्मिला पवार, बेबी ताई काम्बले, हीरा बंसोड़ ख्याति प्राप्त साहित्यकारों में हैं। मराठी की तरह हिंदी पट्टी के पुरुषों में मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, कंवल भारती, जयप्रकाश कर्दम, श्यौराज सिंह बेचैन जाने पहचाने नाम हैं। स्त्रियों में डॉ. सुशीला टाकभौर, रजत रानी 'मीनू', तारा परमार, डॉ.कुसुम मेहावाल, रजनी तिलक पहचानी जाती हैं। दक्षिण भारत में वी.कृष्ण, अच्युतन, कट्टीमनी, पी.शिवकामी, बामा आदि दलित साहित्य आंदोलन की धारा में पहचान बनकर उभरे हैं।

इसी कारण वहाँ दलित साहित्य एक क्रांतिकारी और स्पष्ट समझ के साथ विकसित हुआ और आज वह महाराष्ट्र में मुख्य धारा का साहित्य बन गया है। जबकि हिंदी पट्टी में अभी उसे भारतेन्दु काल की शैशवावस्था के दायरे में ही माना जाता है। हिंदी में भी दलित लेखक, कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, आलोचक, विचारक भारी संख्या में अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुके हैं और करवा रहे हैं, पर सवर्ण पूर्वाग्रह अभी भी बरकरार है। बाबूराव बागूल का कहना है कि, “मनुष्य की मुक्ति को स्वीकार करने वाला, मनुष्य को महान माननेवाला, वंश, वर्ण और जाति श्रेष्ठत्व का प्रबल विरोध करनेवाला साहित्य ही दलित साहित्य है।”³⁶

डॉ.अम्बेडकर ने मानवतावाद को सर्वोच्च स्थान दिया है। अंबेडकर प्रेरित दलित साहित्य ने मनुष्य को केंद्र माना है। मनुष्य की स्वतंत्रता की घोषणा की है। मानव की मुक्ति को प्रोत्साहित करने वाला, मनुष्य को महार मानने वाला, वंश, वर्ण और जाति श्रेष्ठता का कठोर विरोध करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। मनुष्यता दलित साहित्य का धर्म है। इसलिए इस संसार में मनुष्य की अपेक्षा और कोई भी काल्पनिक या सांसारिक वस्तु महान नहीं है। जो संस्कृति, समाज या साहित्य मनुष्य को लघु बनाए, उसके विरुद्ध दलित साहित्य

³⁶ दलित साहित्य आज का क्रांति विज्ञान- बाबूराव बागूल, पृ. 259

विद्रोह करता है। यह विद्रोह अम्बेडकरी विचार प्रणाली का अविभाज्य अंग है। डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में महाराष्ट्र का महार समुदाय दलित जागृति और राजनीतिक सक्रियता में अनेक दलित समुदायों के लिए हरावल दस्ते के रूप में कार्य कर रहा था। परंतु महार राजनीतिक आंदोलन के परिणामस्वरूप भी दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ जन्म ले चुकी थीं। एक तो दलितों का एक भाग विभिन्न प्रकार की सरकारी 'सहूलियतों' का लाभ उठाकर बुर्जुआ वर्ग में शामिल हो चुका था। उसका गांवों और गरीबों से विशेष संपर्क नहीं रह गया है। दूसरे गुणवत्ता और सुरक्षा की दृष्टि से अधिकतर दलितों की जीवन-परिस्थितियों में गिरावट आ रही है।³⁷

2.1.4. दलित स्त्री लेखन का आरम्भ

प्राचीनकाल, पूर्व वैदिक काल, मध्यकाल और वर्तमान में दलित स्त्री की समाज में कम उपस्थिति रही है उसे कम अधिकार प्राप्त थे। जिसके कारण ज्योतिबा फुले दंपति को स्त्री की दासता से मुक्ति दिलाने हेतु आंदोलन चलाना पड़ा। ईसा पूर्व 1200 के आस-पास मातृ सत्तात्मक और स्त्री सत्ता प्रमुख होने के बावजूद आर्यों से हारे अनार्यों को दास व उनकी पत्नियों को दासी बनाना शुरू हुआ। उन कारणों का खुलासा व आज समाज में दलित नारी की जो स्थिति है, उसमें ज्योतिबा फुले का योगदान कम नहीं है। आजादी के बाद पांच दशकों से वर्तमान में दलित महिलाओं के शोषण और मुक्ति की दिशा में मनुवादी पुरुष की मानसिकता बदलने और उसमें नैतिकता जमाने हेतु दलित स्त्रियों ने काफी संघर्ष किया।

ज्योतिबा फुले को दलित महिला समाज ने अगणित आशीषों से नवाजा है। उनके इस सत्कर्म के कारण 19वीं सदी की स्त्रियों ने अपनी बालिकाओं को एक गीत सिखाया था कि

³⁷ डॉ. बी. आर. अम्बेडकर- सं. हरशरण सिंह, पृ-28

“आओ मिलकर प्रणाम करो पहले ज्योतिराव को।

जन्म दिया जिसने नारी मुक्ति आंदोलन को॥”³⁸

भारतीय समाज में दलित पुरुषों की स्थिति जितनी दयनीय थी, उनसे भी अधिक खराब स्थिति दलित स्त्रियों की थी। आज दलित साहित्य की अवधारणा बहुत ही विस्तारित रूप धारण कर चुकी है। पहले दलित साहित्य में स्त्रियों का लेखन नहीं मिलता था। जबकि दलितों की इस अवधारणा में ‘स्त्री’ का लिखना भी तो जरूरी था। क्योंकि दलित सिर्फ पुरुष ही नहीं बल्कि स्त्रियाँ भी थीं। उस पर भी अन्याय हो रहा था। उनको भी जाति के आधार पर प्रताड़ित किया जाता था और अपने अधिकारों से वंचित रखा जाता था। ज्योतिबा फुले ने कहा है कि “स्त्री निःसंदेह पुरुष से श्रेष्ठ है क्योंकि वह बिना किसी शिकायत के लगातार नौ मास का बोझ संभालती है। वही सबकी जन्मदात्री है, वही मलमूत्र साफ करके सबका लालन-पालन करती है। सभी ऋणों से मानव उद्धारण हो सकता है, किंतु जन्मदात्री माता के ऋण से वह कभी भी मुक्त नहीं हो सकता है।”³⁹

वैसे तो दलित साहित्य विश्व की अनेक भाषाओं में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो रहा है या सामने आ रहा है। भारत में बंगला, मराठी, तेलुगु, हिंदी, मलयालम, तमिल आदि में और साथ ही पुरुष लेखन के साथ स्त्री लेखन सामने आ रहा है। प्रज्ञा, दया पवार, ज्योति लांजेवार, मल्लिका अमरशेख, प्रतिमा अहिरे, हिरा बनसोडे आदि मराठी में। कल्याणी ठाकुर, दीप-शिखा, पोद्दार, संचयिता कुण्डु, चिन्मयी विश्वास, मानसी सरकार, दुर्गा मजुनदार आदि बंगाली में। रजनी तिलक, रजत रानी ‘मीनू’, सुशीला टाकभौरै, सुमित्रा बहरोल, रमणिका गुप्ता, कावेरी, डॉ. कुसुम मेहावाल, रजनी अनुरागी, हेमलता महेश्वरी आदि हिंदी में। बामा आदि तमिल में प्रमुख दलित स्त्री लेखिकाएँ हैं।

³⁸ दलित महिलाएँ- डॉ. मंजू सुमन, पृ. 79

³⁹ दलित महिलाएँ- डॉ. मंजू सुमन, पृ. 78

अनेक लेखिकाओं ने कहानी, कविता, उपन्यास, आत्मकथा आदि पर अपनी लेखनी चलायी। उन्होंने खासतौर से अपने उपन्यासों और कविताओं के माध्यम से यह बताया कि किस प्रकार एक दलित स्त्री सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से पीड़ित है। किस प्रकार वह अपने ही जाति के पुरुषों से भी प्रताड़ित होती है। “भारतीय स्त्रियों की क्षमता और महत्ता की कद्र करते हुए डॉ.अम्बेडकर ने स्त्रियों की अलग परिषद बनाई। सभा-सम्मेलन, सत्याग्रह, आंदोलन किए और इनमें स्त्री वर्ग का जो आह्वान उन्होंने किया, उसने स्त्रियों के मन-मस्तिष्क में अपने हकों के लिए लड़ाई-लड़ने की भावना पैदा करने में मदद की।”⁴⁰

लेखिका रमणिका गुप्ता एक गैर-दलित स्त्री होने के बाद भी अपनी लेखनी से दलित स्त्रियों को बहुत प्रभावित किया है। रजत रानी ‘मीनू’ ने ‘नवें दशक के हिंदी दलित’ कविता पर एम.फिल डिग्री के लिए शोध किया था। संभवतः यह पहला शोध कार्य था, जो हिंदी की दलित कविता पर हुआ था। लेकिन इसमें एक भी स्त्री का जिक्र नहीं था। बस उसके तीसरे अध्याय के तीसरे अंक में ‘दलित कविता में अभिव्यक्त नारी संबंधी जीवन मूल्य’ पर विचार किया गया था। उस समय भी स्त्री-लेखन हो रहे थे (1980-1990), लेकिन कम मात्रा में। दलित कवयित्रियाँ नवें दशक में भी कविता कर्म में रत थीं। बस उनकी कविताएँ कुछ कारणों से उस समय की पत्रिकाओं में छपती नहीं थीं। कुछ एक-दो कवयित्रियाँ उस समय लिखने में रत थीं यथा- सुशीला टाकभौरै और शांति यादव। सुशीला टाकभौरै का पहला कविता संग्रह ‘स्वाति बूंद और खारे मोती’(1993) और शांति यादव का पहला कविता संग्रह ‘तोड़ूंगी मौन’ (1996) में प्रकाशित हुआ। सन् 1990 से पहले भी स्त्री लेखिकाएँ थीं। लेकिन किताबें प्रकाशित नहीं हुई थीं। इसकी शुरुआत सन् 1990 के बाद ही हुई।

केवल भारती के अनुसार, डॉ.सुशीला टाकभौरै का ‘स्वाति बूंद और खारे मोती’ ही इस दशक और दलित स्त्री लेखन का पहला काव्य संग्रह है, जिसमें 61 कविताएँ

⁴⁰ दलित नारी: एक विमर्श- डॉ.मंजूसुमन, पृ.147

संकलित है। लेकिन यह भी कहा जाता है कि स्त्री चेतना की दृष्टि से इस संग्रह में कुछ भी ऐसा नहीं है जो प्रभावित कर सके। इस दौर की कवयित्री शांति यादव की कविताओं के प्रखर चेतना के दर्शन होते हैं। जाति के आधार पर उन्हें दलित नहीं माना जाता पर उनकी स्त्री चेतना दलित चेतना से भिन्न नहीं है। ‘पहचान’ कविता में सुशीला टाकभौर लिखती हैं कि,

“ऐसे हो काम,
जिससे सम्मान
खुद पर हो स्वाभिमान
दुनिया को अभिमान
कुछ ऐसी को पहचान।”⁴¹

उनकी दृष्टि में स्त्री आधार की जिंदगी जीती है क्योंकि, वह अपने लिए नहीं दूसरों के लिए जीती है। अपनी कविता में वे मुक्त स्त्री की सोच रखती है।

समकालीन भारतीय दलित स्त्री लेखन अब जोरो-शोरों से सामने आने लगा है। दलित साहित्य आज ऐसे मुकाम पर पहुँच चुका है, जहाँ मुख्य धारा का साहित्य उसे नकारने की हिम्मत नहीं कर सकता। दलित साहित्य का सृजनात्मक लेखन अब साहित्यिक आंदोलन का रूप ले चुका है। दलित साहित्य आंदोलन में दलित स्त्रियाँ भी बराबर की भागीदार रही हैं।

दलित साहित्यकारों का लेखन समांतर अपनी गति से लिखा जा रहा है। पहचान की इस होड़ में दलित लेखिकाएँ बहुत पीछे हैं। छपने-छपाने के सीमित अवसरों के कारण उनका लेखन उभर कर नहीं आ सका। उनकी लेखकीय प्रतिभा को हाशिये पर धकेल दिया गया। हालांकि मुख्यधारा एवं दलित साहित्य के साहित्यिक क्षेत्र में दलित स्त्रियों द्वारा कम लिखे

⁴¹ मेरे काव्य-संग्रह (स्वाति बूंद और खारे मोती, हमारे हिस्से का सूरज)- सुशीला टाकभौर, पृ. 57

जाने की चर्चा हमेशा गर्म रहती है। डॉ.अम्बेडकर कहा करते थे कि, “मैं दलित समाज की प्रगति का मापन इस बात से करता हूँ कि, दलित नारी ने कितनी प्रगति की है।”⁴²

दलित स्त्री लेखन दलित चिंतन का वाहक है, यह चिंतन दलित आंदोलन के संघर्ष के साथ-साथ विकसित हुआ है। दलित स्त्री का चिंतन बुद्ध, ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले, पेरियार और डॉ.अम्बेडकर के दर्शन से प्रेरित होकर अस्तित्व में आया है। “आधुनिक भारत के निर्माता डॉ.भीमराव अम्बेडकर ने मानवता के इतिहास में राष्ट्रीयता को एक बहुत बड़ी शक्ति माना है। अम्बेडकर का राष्ट्रवाद कुछ भिन्न उद्देश्यों के साथ शुरू हुआ अर्थात् दलितों और निर्धनों का उद्धार उनका प्रमुख लक्ष्य बना। उन्होंने उन लोगों के लिए समानता तथा नागरिक अधिकार दिलाने का संघर्ष किया, जो सदियों से इनसे वंचित थे। अम्बेडकर ने महात्मा फूले के सिद्धांतों को आत्मसात कर लिया था। वे एक ऐसे समाज के स्वप्नद्रष्टा थे जिसमें समानता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व का साम्राज्य हो।”⁴³

दलित स्त्री लेखन समाज की कड़वी सच्चाईयों और विसंगतियों को रौंद कर आगे आ रहा है। दलित लेखिकाएँ सामाजिक समस्याओं के विरुद्ध लड़ने के पक्ष पर उतनी ही प्रतिबद्ध और सजग हैं जितनी अपनी सृजनात्मक लेखन के पक्ष पर गंभीर हैं। हर समय काल की सीमा से पार जाकर उन्होंने अपनी भूमिका को समझा है। बुद्धकालीन थेरियों ने ‘थेरी गाथाओं’ में स्त्री स्वातंत्र्य के स्वर का उद्घोष किया तो 19वीं शताब्दी में रमाबाई, ताराबाई शिंदे, सावित्री बाई फुले और मुक्ताबाई ने उस स्वर को मजबूती दी। जातीय उत्पीड़न, स्त्री-दमन, धार्मिक पाखंड, अंधविश्वास की जड़ों को खत्म करने के लिए उन्होंने, धार्मिक ग्रंथों और पुरोहितों के साजिश का पर्दाफाश किया। सावित्री फुले, ताराबाई शिंदे, मुक्ताबाई ने तत्कालीन समाज के दुःख-दर्द विशेषतः स्त्रियों के दर्द तथा भेदभावों को इंगित किया था।

⁴² नवें दशक की हिंदी दलित कविता- रजत रानी ‘मीनू’, पृ.67

⁴³ डॉ. बी.आर.अम्बेडकर- सं. हरशरण सिंह, पृ.30

बदलते समय के साथ इस लेखकीय परंपरा की डोर वर्तमान में दलित लेखिकाओं ने थाम ली है। समाज के दुख, उत्पीड़न-दमन, भेदभाव और धार्मिक पाखंड अपना रूप बदलते रहे। उनसे लड़ने के औजार भी बदलते रहे। 20वीं सदी में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने समता, समानता, मैत्री और भाईचारा को संवैधानिक दर्जा देकर दलित व स्त्रियों को सामाजिक बेड़ियों से मुक्त करा दिया। डॉ. अम्बेडकर ने सन् 1920 में सामाजिक आज़ादी की लड़ाई का बिगुल बजाया जिसमें दलित पुरुषों के साथ दलित स्त्रियाँ भी भारी संख्या में सड़क पर उतर आई थीं। शांताबाई दाणी, शांता काम्बले, बेबी ताई काम्बले, जाईबाई चौधरी, सुलोचना डोंगरे, कौशल्या बैसंत्री इस संघर्ष पथ से लेखिका बनकर उभरी। शांताबाई दाणी अम्बेडकरवादी आंदोलन की एकमात्र महिला नेता थी, जिन्होंने अविवाहित रहकर रिपब्लिकन पार्टी का काम किया अनेक विद्यालय खोले अपनी आत्मकथा ‘धूप छाँव’ लिखी जो अब डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व के दलित आंदोलन का दस्तावेज बन गया है।

दलित लेखिकाओं द्वारा लिखी गई शुरुआती दौर की आत्मकथाओं में अंत स्फोट-‘कुमुद पावड़े’, बेबी काम्बले- ‘जीवन हमारा’, शांता काम्बले- ‘नाजा’, कौशल्या बैसंत्री- ‘दोहरा अभिशाप’, सुशीला टाकभौर- ‘शिकंजे का दर्द’। इन आत्मकथाओं में दलित स्त्रियों को जीवन, समाज, संस्कृति और पितृसत्ता के विभिन्न रूपों को स्पष्ट किया गया है। इन आत्मकथाओं में दलित स्त्री चिंतन ने पितृसत्ता पर अपनी समझ का विस्तार किया है। उन्होंने समाजशास्त्रीय विश्लेषण के साथ-साथ अपने सांस्कृतिक जुड़ाव को पहचाना है।

कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा ‘दोहरा अभिशाप’ में शब्दों की आग के साथ एक दलित महिला के भीतर से उभरते आक्रोश और अस्मिता को भी महसूस किया जा सकता है। अपनी इस आत्मकथा की भूमिका में वे लिखती हैं कि, “मेरे उच्च शिक्षित पति, लेखक और भारत सरकार में उच्च पद पर सेवारत रहे। उन्हें ताम्रपत्र भी मिला है और स्वतंत्रता सेनानी की

पेंशन भी। पति ने कभी मेरी कदर ही नहीं की, बल्कि रोज-रोज के झगड़े, गालियों से मुझे मजबूरन घर छोड़ना पड़ा और कोर्ट केस करना पड़ा।”⁴⁴

स्त्री मुक्ति आंदोलन दहेज, स्त्री-पुरुष में गैर बराबरी, घरेलू अत्याचार, स्त्री-उपेक्षा, स्त्री-श्रम उपेक्षा, स्वास्थ्य, बलात्कार इत्यादि के इर्द-गिर्द उभरने लगा था। सामंती शोषण के विरुद्ध आवाज उठी, तो आंदोलनकारी अपने-अपने आक्रोश और असंतोष को लेकर सड़क पर उतर आए थे। एक आंदोलन जातीय भेदभाव के खिलाफ था, तो दूसरा लैंगिक शोषण के विरुद्ध। दोनों ही आंदोलनों में दलित स्त्रियाँ कदम से कदम मिलाकर चल रही थीं। एक आंदोलन में वे अपने कौम के भाइयों के साथ जातीय-उत्पीड़न, भेदभाव के खिलाफ मोर्चे में डटी थीं। तो दूसरे में अपनी बहनों के साथ वे बहनापे की श्रृंखला में लैंगिक शोषण के विरुद्ध पितृसत्ता के खिलाफ श्रृंखलाबद्ध हो गयी थीं। इन आंदोलनों की छत्रछाया में वे कुछ कड़वे अनुभवों से गुजर रही थीं।

2.1.5. दलित स्त्रियों का तिहरा अभिशाप

‘तिहरा अभिशाप’ शब्द अपने-आप में दलित स्त्रियों के अनुभव की पहचान को उजागर करता है। जो उसे समाज और परिवार दोनों के शोषण से शोषित जीवन जीने पर मजबूर कर रहा है। लिंग, जाति और वर्ग यह एक बहुत बड़ा कारण था। जिसके चलते दलित स्त्रियों ने लिखना शुरू किया। दुःख दर्द और पीड़ा की हद अब सहने की क्षमता को पार कर चुका था। लिखना इसलिए भी जरूरी था क्योंकि उसकी अस्मिता पर अब कई प्रश्न चिन्ह लग रहे थे। “कौशल्या बैसंत्री संभवतः हिंदी की पहली दलित आत्मवृत्त लेखिका हैं। अपने आत्मकथा ‘दोहरा अभिशाप’ में उन्होंने दलित स्त्री की दुर्गति का उजागर किया है।”⁴⁵

⁴⁴ दोहरा अभिशाप, हंस, नई दिल्ली, 1999, पृ. 84

⁴⁵ स्त्री नैतिकता का तालिबानीकरण- सं. रमणिका गुप्ता, पृ - 115

डॉ. अंबेडकर दलित समाज में स्त्रियों की स्थिति को लेकर बेहद चिंतित थे। वैसे तो पूरे भारतीय समाज की स्त्रियाँ पितृसत्ता के बोझ के नीचे कराह रही थी। लेकिन दलित स्त्रियों को न केवल अपने समाज के पितृसत्ता को झेलना पड़ता था। बल्कि सवर्ण समाज की पितृसत्ता भी उनका शोषण और दमन करती थी। इतिहास पर एक नज़र डालने से यह तथ्य सहज ही प्रमाणित हो जाता है। कवयित्री सुशीला टाकभौरे डॉ. अम्बेडकर को आभार व्यक्त करते हुए अपनी कविता 'जयभीम' में लिखती हैं कि,

“संघर्ष की राह पर चलते रहे
जीवन आपका श्रेष्ठ
शोषित पीड़ितों के लिए
आपका स्नेह विशेष।
अर्पित कर अपना जीवन
सबके लिए जिया अपने
निर्बल को बल, गूंगों को हुंकार
दलितों में चेतना संचार किया आपने।”⁴⁶

दलित स्त्री कवयित्रियों ने कविताओं के सहारे अपने तिहरे अभिशाप की गाथा प्रस्तुत की है। दलित कवयित्री सुशीला टाकभौरे का काव्य संग्रह 'स्वाति बूंद और खारे मोती' (1993), 'यह तुम भी जानो' (1994), 'तुमने उसे कब पहचाना' (1995) और 'हमारे हिस्से का सूरज' कवयित्री रजनी तिलक का काव्य संग्रह 'पदचाप' (2006), 'हवा-सी बेचैन युवतियां' (2014), कवयित्री रजत रानी मीनू का काव्य संग्रह 'पिता भी होते हैं मां' (2015), कवयित्री अनिता भारती का काव्य संग्रह 'रुखसाना का घर' (2015), एक कदम मेरा भी सावित्रीबाई की कविताएं (2015), कवयित्री हेमलता महेश्वर का काव्य संग्रह 'नील नीले रंग की'

⁴⁶ स्वाति बूंद और खारे मोती- सुशीला टाकभौरे, पृ. 203

(2015), पूनम तूषामड़ का काव्य संग्रह 'मां मुझे मत दो' (2010), रजनी अनुरागी का काव्य संग्रह 'बिना किसी भूमिका के' (2011) आदि महत्वपूर्ण कविताओं की रचना दलित स्त्रियों ने किया है।

आज दलित स्त्रियाँ तिहरी दलित हैं। इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता। सबसे बड़ी बात यह है कि आज सर्वत्र यहां आवश्यकता अनुभव की जा रही है वह यह कि, दलित समाज की स्त्रियाँ और दलित समाज को अलग-अलग करके देखा जाए। उनका मूल्यांकन किया जाए ताकि मनुवादियों की घृणित सोच और उनके द्वारा प्रतिपादित मान्यताओं परंपराओं के चलते हर क्षेत्र में पिछड़ी दलित स्त्रियों की स्थिति में व्यापक सुधार लाया जा सके। डॉ.श्याम बाबू शर्मा कहते हैं कि “स्त्री को अपमानित करने वाला समाज असभ्यता की अमानवीय अंधेरी कानों में खो जाता है। परंतु समाज इस स्याहपन भी भयावहता से आंखें मूंदे हैं। इनके स्वाभिमान को कुचलने के लिए तमाम रास्ते हैं। बाबा साहब ने भी स्त्री प्रश्न को अत्यंत महत्व का दर्जा दिया था। इनके दोहरे शोषण का मर्मस्पर्श डॉक्टर अंबेडकर को था।”⁴⁷

दलित स्त्रियों का तिहरा अभिशाप एक सांप की तरह उनके जीवन से जुड़ा हुआ है। तिहरी ज़िंदगी के चलते दलित स्त्रियों ने बहुत दुख दर्द झेला है। दलित पुरुषों की मानसिकता और समाज में स्त्री होने के दंश से खुद को सुरक्षित रखना मुमकिन ना था। फिर भी बरसों की जद्दोजहद के बाद आज वह उठ खड़ी हुई हैं। कवयित्री पूनम तुषामड़ अपनी कविता ‘वो औरत में कहती हैं कि,

“बंद कमरे में छटपटाती औरत को

काश उन्मुक्त आकाश मिले

जहाँ पंछी बनकर उड़े उसका मन

⁴⁷ दलित हिंदी कविता का वैचारिक पक्ष -श्याम बाबू शर्मा, पृ- 127

अज्ञानता का ग्रहण लगी
सुंदर संसार से अनभिज्ञ औरत को
काश ज्ञान की निर्मल गंगा मिले
जिसमें विदुशी बनकर बहे उसका मन।”⁴⁸

कविता में कवयित्री ने समाज में स्त्री का स्थान और उसके शोषण-उत्पीड़न की समस्याओं को इंगित करती हैं। दलित स्त्रियों को दलित पुरुषों के अधीन रखने की बात करने वालों को जरा पीछे मुड़कर सावित्रीबाई फुले और डॉ. अंबेडकर की ओर देख लेना चाहिए। भारत की पहली शिक्षिका सावित्रीबाई फुले ने स्त्री शिक्षा की शुरुआत करके वास्तव में स्त्री मुक्ति का विगुल फूँका। रमणिका गुप्ता लिखती है कि “दलित स्त्री खेतों में काम करती है, सड़कों पर पत्थर तोड़ती है, मिट्टी- ईंट ढोती है। यह सही है कि हर जगह उसके साथ तमाम तरह के खतरे मंडराते रहते हैं लेकिन वह संघर्ष करती है, लड़ती -जूझती है और कई बार ऐसे गंदे इरादे रखने वालों का गला भी रेत डालती है।”⁴⁹

तिहरे अभिशाप की व्याख्या दलित स्त्रियों ने अपनी कई रचनाओं में प्रस्तुत किया है। लेखिका कौशल्या बैसंत्री ने अपनी आत्मकथा का नामकरण ही 'दोहरा अभिशाप' के शीर्षक से किया है। लेखिका ने दलित समाज में स्त्री जीवन के तमाम संघर्षों का चिट्ठा खोला है। दलित स्त्री आत्मकथा में अभिव्यक्ति संदर्भ, परिवेश, समस्या और संघर्ष का स्वरूप मुख्य रूप से उजागर हुआ है।

दलित स्त्री स्वयं अपने जीवन में एक स्त्री होने के कारण सारी पीड़ाओं को सहा है। जो सदियों से चली आ रही है। दलित पुरुष चाहे कितनी भी प्रगतिशील होने की बात क्यों न करें

⁴⁸ समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन (खंड-2), सं. रजनी तिलक, पृ. 233

⁴⁹ स्त्री नैतिकता का तालिबानी करण-सं. रमणिका गुप्ता 168 - 169

परंतु घर पर उसी स्त्री को केवल एक भूखे की वस्तु मात्र ही समझता है और कभी उसे पुरुषवादी सोच से मुक्ति नहीं दिला पाता है।

2.2. अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

‘अफ्रो-अमेरिकन’ शब्द में वह इतिहास छुपा हुआ है। जो हमारी दुनिया के यथार्थ को सामने लाता है। एक भयानक सच्चाई जिसे पढ़कर मेरे रोंगटे खड़े हो गये। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को जानवरों से भी अधिक पीड़ा देना। अमेरिकी निवासियों की क्रूरता को व्यक्त करता है। अफ्रो-अमेरिकन स्त्रीवाद का केंद्रीय तर्क वर्गीय, नस्लीय तथा लैंगिक शोषण का अंतरसंबंध है। लिंग, वर्ग तथा नस्ल आधारित शोषण को सम्यक रूप से समझे बिना, उनके विरुद्ध एकजुट हुए बिना, स्त्री मुक्ति सम्भव नहीं है। अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखन में उनके भोगे हुए जीवन की गाथा है। उनके अनुभव, विचार और सिद्धांत दूसरे साहित्य से खुद-व-खुद अलग दिखाई पड़ती है।

2.2.1. अश्वेत कौन है?

‘अश्वेत’ कहने से यूरोपियन के अलावा अन्य सारी रंगीन प्रजातियाँ आ जाती हैं। इसमें अफ्रीकी और एशियाई मूल के लोग भी आ जाते हैं। यह उचित नहीं है पर गोरों (यूरोपियन) के अलावा सबके लिए एक शब्द, ‘कलर्ड’ का प्रयोग होता है। इसमें काले, भूरे, पीले, सब नस्लों के लोग समाहित कर लिए जाते हैं। अफ्रो-अमेरिकन लोगों के लिए पहले कई शब्दों का प्रयोग किया जाता था। इनमें से अधिकांश शब्द हीनता बोध कराने वाले शब्द थे। उन्हें मनुष्य से कम दर्जे का साबित करने वाले बहुत सारे लोग मानते थे कि काले लोगों में आत्मा नहीं होती है। अतः वे मनुष्य नहीं होते हैं। काफी समय तक उन्हें ‘काले’, ‘हब्सी’, ‘नीग्रो’, ‘दास’, ‘गुलाम’, ‘ढोर’ की संज्ञा दी जाती रही। बाद में कभी अश्वेत, कभी नीग्रो, कभी अफ्रो-अमेरिकन कहा जाता रहा। आज अमेरिका की अश्वेत प्रजाति के लिए अफ्रीकन-

अमेरिकन अथवा अफ्रो-अमेरिकन शब्द का प्रयोग प्रचलन में है। ग्वेंडोलिन ब्रुक्स कहती हैं, “In the centre of violent changes are the centre seeds of creation.”⁵⁰ अर्थात् हिंसक परिवर्तनों के केंद्र में सृष्टि के केंद्र का बीज है।

जब अमेरिका की अश्वेत प्रजाति की बात आती है, तो यह सर्वविदित है कि, वे अमेरिका के मूल निवासी नहीं हैं। वहाँ के मूल निवासी तो आज वहाँ बहुसंख्या में रहने वाले गोरे भी नहीं हैं। वहाँ के मूल निवासी आज की भाषा में रेड इंडियन अथवा अमेरिकन इंडियन कहलाते हैं।

अमेरिका में अफ्रीका से गुलाम कैसे लाए जाते थे? आज भी यह देखना, जानना, समझना आवश्यक है। इन्हें पहले पश्चिमी और मध्य अफ्रीका से, फिर बाद में दक्षिण अफ्रीका से पकड़कर लाया गया। ठीक जानवरों की तरह हाँक कर इन्हें पकड़ा जाता था। अफ्रीका के ये प्राचीन कबीले बहुत शांत स्वभाव के होते थे। गोरो ने अपनी ‘फूट डालो राज करो’ की नीति यहाँ भी अपनाई। कबीले के सरदारों को शराब और हथियार देकर उनमें आपस में फूट डलवा कर लड़ाई करवाई। एक बार षड्यंत्र का हिस्सा बनने पर ये सरदार बिचौलियों का, दलालों का काम करने लगे और रकम तथा अन्य सुविधाओं के लिए अपने ही कबीलों के लोगों को पकड़कर श्वेत लोगों को देने लगे। ये कबीले आपस में लड़ा करते थे और हारे हुए समुदाय के लोग विजेताओं की गुलाम कहलाते थे। इन कबीलों की संस्कृति के रिवाज के अनुसार यदि ये किसी को लड़ाई के दौरान पकड़कर लाते तो जल्द ही, यह व्यक्ति विजेता कबीले के सदस्य मान लिया जाता। उसके साथ कबीले के सदस्य जैसा व्यवहार किया जाता।

गुलाम को शादी, संपत्ति और कबीले के तमाम अधिकारों स्वतः प्राप्त हो जाते। इसलिए ये सोचते थे कि श्वेत लोग जब अश्वेतों को ले जाते हैं तो ठीक ऐसा ही व्यवहार करते

⁵⁰ Gwendolyn brooks/Introduction: Black words that say, don't cry scream, by donllee

होंगे। अश्वेत गुलाम श्वेत समाज का हिस्सा बन जाते होंगे। वे काफी समय तक इसी गलतफहमी में रहे कि गुलामों के साथ श्वेत लोग मनुष्यों जैसा व्यवहार करते होंगे। उन्हें बहुत समय तक नहीं मालूम था कि अमेरिका में ले जाए गए अश्वेत किन अमानवीय स्थितियों में रहते हैं। उन दिनों आज की तरह संचार और आवागमन के साधन उपलब्ध नहीं थे। शायद ही कोई स्वतंत्र अश्वेत अमेरिका जाता था। गुलामों के लौट कर आने और निष्कृष्ट जीवन की बात अपने लोगों से साझा करने की बात का प्रश्न नहीं उठता था। ‘ब्लैक पॉवर’ ग्रंथ में अश्वेतों की भूमिका रखते हुए लिखते हैं कि, “Our basic need is to reclaim our history and our identity from what must be called cultural terrorism, from the degradation of self-justifying white guilt. We shall have to struggle for the right to create our own terms through which define ourselves and relationship to the society and to have these be recognised. This is the first necessity of a free people and the first right that any oppressor must suspend.”⁵¹ अर्थात् हमारी मूल आवश्यकता है कि हमारे इतिहास और हमारी पहचान को सांस्कृतिक आतंकवाद कहा जाए, जिसे स्व-औचित्यपूर्ण श्वेत रजाई के क्षरण से प्राप्त किया जाए। हमें अपनी शर्तों को बनाने के अधिकार के लिए संघर्ष करना होगा। जिसके माध्यम से अपने आप को और समाज के संबंध को परिभाषित किया जा सके और इनको पुनः प्राप्त किया जा सके। यह लोगों की पहली आवश्यकता है और पहला अधिकार को किसी भी उत्पीड़क को निलम्बित करना चाहिए।

गुलाम श्वेत मालिकों की संपत्ति होते थे, जितने अधिक गुलाम उतनी अधिक संपत्ति, उतना अमीर श्वेत मालिक। अपनी इस संपत्ति को वे जानवरों की तरह रखते थे। एक अमेरिकन के पास दो-चार से लेकर सैंकड़ों गुलाम होते थे। सारे गुलामों को एक साथ जंजीर में डाल

⁵¹ caribbean and black American literature- Car Michael and Hamilton, p-38

दिया जाता था। बात-बात पर कोड़े की मार से उनकी चमड़ी उधेड़ दी जाती। कान में कील ठोकना, मुँह में लोहे की चाबी लगाना, गले में लोहे का घेरा डालना ये सब आम बातें थीं। जबान काटकर गूँगा बना देना, उल्टा लटका कर चमड़ी उतार लेना, हत्या और फाँसी भी असामान्य बात न थी।

यह तो बात हुई गुलाम बनकर अमेरिका में रहते समय की मगर, इनके साथ इसके पहले और बहुत कुछ होता था। अफ्रीका छोड़ने के पहले से ही इनको तोड़ने का काम शुरू हो जाता था। इनकी अस्मिता समाप्त करने, इनकी पहचान मिटाने, इनकी चेतना को खत्म कर के, केवल एक गुलाम बना दिया जाता था। इन्हें पकड़ कर अमेरिका जाने वाले जहाजों के पास लाकर एक झुंड में रख दिया जाता, जानवरों की तरह। उनकी पहचान मिटाने के लिए उनके सर के बालों को काट दिया जाता था।

सारे कपड़े उतार कर नंगा करना, इसके बाद का चरण होता। पकड़े गए हर अश्वेत के ऊपर उसके खरीददार का ठप्पा लगता था। अब उनका न कोई नाम होता, न इन्सान रहते, बस वे अपने खरीददारों के माल होते थे। अमेरिकी गुलामी के इस काले काल में न्याय, धर्म, समाज, विज्ञान सब अश्वेतों के विरोध में थे। अपने प्रति हीन भावना इन अश्वेत गुलामों में कूट-कूट कर भर दी जाती थी, इनका इतना अपमान किया जाता कि वे स्वयं भी यह भूल जाते कि वह एक मनुष्य है। कठोर अनुशासन के साथ इन्हें श्वेत मूल्य रटा दिए जाते। श्वेत नियम-कानून इनके जेहन में जबरदस्ती बैठा दिए जाते थे। इस कारण से वे स्वयं को श्वेत की नज़र से देखने-परखने लगते हैं। पैमाने पर खरे न उतरने पर अपराध-बोध, हीनता की भावना से भर जाते थे। अमेरिका के 90 प्रतिशत अश्वेत गुलाम थे। जहाँ अमेरिका कुछ लोगों के लिए सुनहरे अवसरों की भूमि थी। वहीं दूसरी तरफ अन्य लोगों के लिए पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुलामी का पट्टा था।

2.2.2. अश्वेत आंदोलन का इतिहास

प्रथम महायुद्ध सन् 1914 के बाद अश्वेत लोगों के विचारों में बहुत परिवर्तन देखने को मिला। लगभग सभी अश्वेत लोग अमेरिका के दक्षिण के भागों को छोड़कर उत्तर और पश्चिम की ओर जाने लगे। हार्लेम न्यूयार्क शहर का ही एक हिस्सा है। हार्लेम शहर अश्वेत लोगों की शक्ति का केंद्र बना। सभी अश्वेत आंदोलन का केंद्र बन गया। सभी अश्वेत लोग हार्लेम में जमा हो गए, जिस कारण हार्लेम शहर अश्वेत आंदोलन का केंद्र बन गया। सन् 1920 में 'हार्लेम जागृति आंदोलन' का आरम्भ हुआ। बीसवीं सदी के आते-आते हार्लेम में लगभग दो लाख अश्वेत आ बसे। अपनी अस्मिता की ऐसी पहचान उजागर हुई कि इस तीन वर्ग मील की संस्कृति, कला, संगीत आदि अमेरिका में ही नहीं, बल्कि दुनिया के बाकी हिस्सों में भी गूँजने लगी। क्लॉउडे मॅके ने 'A Long Way from Home' पुस्तक में लिखा है कि, "The journalist was a bitter critic of home to harlem, declaring it was obscene. I have often wondered if it is possible to establish a really intelligent standard to determine obscenity- a standard by which one could actually measure the obscence act and define the obscence thought."⁵² अर्थात् 'हॉम टू हार्लेम' पुस्तक की कड़वी आलोचना करते हुए पत्रकार का कहना है कि, क्या अश्लीलता को निर्धारित करने के लिए वास्तव में बुद्धिमान मानक स्थापित करना संभव है, जिसके द्वारा वास्तव में अश्लील अधिनियम को मापा जा सकता है और अश्लील विचार को परिभाषित कर सकता है।

इस समय के दौरान हार्लेम अश्वेत लोगों के लिए मक्का(मुसलमानों का तीर्थ स्थल) की तरह बन गया। जहाँ पर अश्वेत लेखक, कलाकार, संगीतकार, चित्रकार, कवि आदि अपनी प्रतिभा दिखा सके। इन सभी कलाकारों के बावजूद इस आंदोलन में जिन्होंने अपनी

⁵² A long way from home- claud mckay, afro-american rights, volume 2, p. 242

पहचान बनाई उनमें लेंगस्टॉन हग्लेस, क्लॉउड मॅके, कॉउंट कुल्लेन, एर्ना बोंटेम्प्स, जोरा नील हर्टन, जींस टोमर, वाल्टर वाइट, जेम्स वेल्डोन, डब्ल्यू.ई.बी.ड्यू बाईस आदि हैं। इन्होंने कलाकारों की प्रतिभा को बढ़ावा दिया और उन्हें उत्तरी भाग को छोड़ कर दक्षिण आने की सलाह दी। बाद में ड्यू बाईस ने 'द क्रइस्स' पत्रिका के सम्पादक बनने के साथ ही एन.ए.ए.सी.पी के प्रमुख भी बने। इस संगठन ने अश्वेत समाज का उत्साह बढ़ाया और काफी ऊँचाईयों को हासिल किया। 'द क्रइस्स' पत्रिका ने इस समय बहुत से कलाकारों की कविताओं, कहानियों और आँखों देखे कार्यक्रमों को प्रकाशित कराया।

इस आंदोलन के दौरान महत्वपूर्ण रूप से जो पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई, 'द क्राइस्स' (नेशनल एसोसिएशन फॉर द एडवेंसमेंट ऑफ कॉलर्ड पीपल), 'ऑपर्चुनिटी' (नेशनल अर्वन लिगुइ) और 'द मैसज', आखिरकार 'ब्रदरहुड ऑफ स्लिपिंग कार पॉटर्स', 'काला मजदूर संघ', 'नीग्रो वल्ड' पत्रिका हैं। मार्क्युस ग्रेवी का 'यूनिवर्सियल नीग्रो इम्प्रूवमेंट एसोसिएशन' ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लेकिन इनमें से कुछ प्रमुख लेखक और कलाकारों की पहचान मार्क्युस ग्रेवी का 'ब्लैक टू अफ्रीका' आंदोलन बना।

अफ्रो-अमेरिकन नागरिक अधिकार आंदोलन(1955-1968) को संयुक्त राज्य के उस आंदोलन के लिए संदर्भित किया जाता है। जिसका उद्देश्य अफ्रो-अमेरिकन लोगों के खिलाफ नस्लीय भेदभाव को गैर-कानूनी घोषित करना और दक्षिणी देशों में मतदान अधिकार को पुनः स्थापित करना था। 1954 और 1968 के बीच एक आंदोलन के कई चरण हैं। विशेष रूप से दक्षिण की 1966 तक, अश्वेत शक्ति आंदोलन का उद्भव हुआ, जो कि मोटे तौर पर 1966 से 1975 तक चला। इसमें नागरिक अधिकार आंदोलन के उद्देश्यों को बृहत् बनाया गया और नस्लीय गौरव, आर्थिक और राजनीतिक आत्मनिर्भरता और गोरे अमेरिकियों द्वारा उत्पीड़न से मुक्ति को शामिल किया गया।

‘एनएएसपी’, ‘एसएनसीसी’, ‘सीऑआरइ’ और ‘एससीएलसी’ जैसे संगठनों के साथ कई लोग जो नागरिक अधिकार आंदोलन में सक्रिय थे, उन्होंने ‘दक्षिणी स्वतंत्रता आंदोलन’ को तवज्जो दी। क्योंकि यह केवल कानून के तहत नागरिक अधिकार के लिए संघर्ष नहीं था। बल्कि यह स्वतंत्रता, सम्मान, गरिमा, आर्थिक और सामाजिक समानता जैसे बुनियादी मुद्दों का संघर्ष भी था।

यह आंदोलन प्रमुख नागरिक प्रतिरोध के अभियानों द्वारा चिन्हित हुआ। सन् 1955-1968 की अवधि के दौरान, अहिंसात्मक विरोध और नागरिक अवज्ञा के अधिनियम ने कार्यकर्ताओं और सरकारी अधिकारियों के बीच संकट की स्थिति उत्पन्न की संघ, राज्य और स्थानीय सरकार, व्यापार और समुदायों को संकट की स्थितियों में अक्सर त्वरित प्रतिक्रिया करनी पड़ती थी। जिसने अफ्रो-अमेरिकन लोगों के द्वारा सही जा रही विषमताओं को उजागर किया। इस दौरान श्वेत प्रभुत्व ‘डेमोक्रेटिक पार्टी’ ने दक्षिण पर पुनः राजनीतिक नियंत्रण प्राप्त कर लिया। ‘रिपब्लिकन पार्टी’, ‘लिन्कन पार्टी’ जिसमें ज्यादातर अश्वेत थे, निरर्थकता में सिकुड़ गए। क्योंकि अश्वेत मतदाता पंजीकरण को दबा दिया गया था।

2.2.3. अश्वेत साहित्य का विकास

अश्वेत साहित्य को समझने के लिए अश्वेत लोगों और उनके समाज की पृष्ठभूमि को जानना अत्यंत आवश्यक है। जिसकी जानकारी ऊपर दी जा चुकी है। इसका आरम्भ सन् 1619 में हुआ। जब पहली बार अश्वेत लोगों को अपनी मातृभूमि अफ्रीका महाद्वीप से ले जाकर अमेरिका में गुलाम बनाया गया और यहीं से गुलामी की प्रथा की शुरूआत होती है। गुलामों की संख्या अधिक होने पर वे विद्रोह कर सकते थे। इसलिए श्वेतों ने माँ से बच्चे को, पत्नी से पति को अलग कर बेच देते थे। इन्हीं सब यातनाओं और जुल्मों का वर्णन लेखक अलेक्स हेली ने अपनी आत्मकथा ‘द रूट्स’ और टोनी मॉरीसन के उपन्यास ‘बिलवड’ में

लिखा है। सन् 1706 में ऐसा कानून बनाया गया कि जिससे क्रिश्चियन बनने पर भी अश्वेत लोगों की गुलामी समाप्त नहीं होगी। अश्वेत साहित्य के संदर्भ में एडीसन गायले जूनियर का मत जान लेना महत्वपूर्ण होगा। वे कहते हैं, “It would be fatuous, simplistic and untrue. Those who have wages warfare against black people through the medium of words have often been black artists and writers themselves the ‘black exploitation’ films and the black television shows people by brainless, untalented blacks have presented images of black life as those presented by the American propagandists from Thomas Jefferson to norman mailer nor is the black writer immune to such critics.”⁵³ अर्थात् जिन लोगों ने काले कलाकारों और लेखकों के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया है, वे ‘काले शोषण’ की फिल्में करते हैं और ब्लैक टेलिविज़न लोगों को बिना दिमाग के दिखाते हैं, अशिक्षित अश्वेतों ने अश्वेत जीवन की छवियों को प्रस्तुत किया है, जो कि थॉमस जेफरसन से लेकर नोर्मन मेलर तक के अमेरिकी प्रचारकों द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं और न ही है।

अश्वेत साहित्य (ब्लैक लिटरेचर) अमेरिकन साहित्य का एक विशिष्ट और स्तरीय अंग है। इसके बिना अमेरिकी साहित्य का इतिहास अपूर्ण है। इस संदर्भ में अश्वेत साहित्य खास मायने रखता है। साहित्य सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण हथियार होता है, जो मानसिक रूप से विचारों को बनाने और बिगाड़ने का कार्य करता है। अश्वेत लोगों ने भी इसी हथियार का सहारा लेकर समाज में नए मूल्य स्थापित करने की कोशिश की। पहली बार एक श्वेत लेखिका हैरियट बीचर स्टोव ने सन् 1852 में ‘अंकल टॉम्स केबिन’ नाम का उपन्यास लिखा। जो अश्वेत लोगों के जीवन पर आधारित था। इस उपन्यास के विरोध में कुछ वर्ष बाद ‘आंटी अंकल टॉम्स’ लिखा गया। अश्वेत लेखक और श्वेत लेखक के संदर्भ में क्लॉउडे मॅके

⁵³ Addison gayle jr./the function of black criticism of African, caribbean and black American literature, p-38

का मत यह है कि, “A Black writer and white writer were not equal, even if both were of the same calibre.”⁵⁴ अर्थात् एक अश्वेत लेखक और श्वेत लेखन समान नहीं हो सकता है, भले ही दोनों में एक सी क्षमता हो।

सन् 1865 में राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने अश्वेत लोगों को गुलामी से आज़ाद कराया। संविधान के तेरहवें संशोधन के अंतर्गत सारे अमेरिका में गुलामी प्रथा को कानूनन समाप्त कर दिया गया था। यह स्वतंत्रता केवल संविधानिक और कानूनी तौर पर था। जबकि अमेरिका के मूल निवासी अश्वेत लोगों को गुलाम ही मानते थे। अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय में ‘सेपरेट बट इक्वल’ यानि ‘अलग लेकिन समान’ की बात रखी। यह केवल सार्वजनिक बातें थी, निजी रूप से किसी ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। अश्वेत साहित्य के संबंध में जे. सॉउडर्स रेडिंग कहते हैं, “Negro were primary because something they had created was accepted as an expression of the nation was accepted as American.”⁵⁵ अर्थात् नीग्रो प्राथमिक है क्योंकि उन्होंने जो कुछ बनाया था उसे राष्ट्र की अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया गया था जिसे अमेरिकी के रूप में स्वीकार किया गया था।

अश्वेत लोगों की पीड़ा का दैनिक स्वरूप साहित्य के माध्यम से ही उजागर होता था। उनका जीना-मरना, रोज़-रोज़ का अपमान, अपनी हीनता की अनुभूति और कुछ भी न कर पाने की असमर्थता उनके विचारों में चल रही थी। उनकी पीड़ा का पूरा गीत कभी गाया जा ही नहीं सकता था। उन्होंने अपनी व्यथा-वेदना को कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, नृत्य और संगीत के माध्यम से व्यक्त किया है। सन् 1901 में बुकर टी वाशिंगटन की ‘अप फ्रॉम स्लेवरी’ पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के कारण बुकर टी वाशिंगटन को अश्वेत समाज का

⁵⁴ A long way from home- claud mckay, afro-american rights, volume 2, p-288

⁵⁵ J.sundexs redding/ reading black: essays in the criticism of African caribbean and black American literature, p -44

प्रवर्तक के रूप में माना जाने लगा। इनके बाद डब्ल्यू.ई.बी.डयुबार्स की 'द सोल ऑफ ब्लैक फोक' नामक पुस्तक आयी। इस पुस्तक ने श्वेत समाज के प्रति विद्रोही भूमिका नज़र आई। इनके नेतृत्व में 'नेशनल आरगेनाइजेशन ऑफ कलर्ड पीपल' की स्थापना हुई, जो अश्वेत अधिकारों की प्रमुख संस्था है। 'क्राइसिस' पत्रिका भी इन्होंने शुरू की। इन्होंने समझौतावादी सोच को नकार कर अश्वेत पहचान का नारा दिया।

सन् 1920 से 1930 के काल में क्लाउडे मैके, जीन टूमर, अनी बोटेम्प्स, काँऊटी कुलेन, लॉगस्टन ह्यूजेस और इनमें से एक झोरा नील हर्स्टन हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से अश्वेत साहित्य में सर्वाधिक प्रेरणा के लिए इन्हीं का नाम लिया जाता है। सन् 1930 के बाद रिचर्ड राईट, मागरिट वाकर और रॉल्फ एलिसन ने अश्वेत लेखकों को लिखने के लिए प्रेरित किया। इस समय अश्वेत लेखक के लेखनी में कम्युनिष्ट विचारधारा का प्रभाव पड़ा और रिचर्ड राईट के 'नेटिव सन' उपन्यास में यह देखने को मिला।

सन् 1966 में अश्वेत युवकों ने अपना एक संगठन बनाया। जिसका नाम 'ब्लैक पेंथर' था। इस संस्था ने कई युवकों को प्रेरणा दी कि वह अपने ऊपर चल रहे इस गुलामी की प्रथा को बंद करेंगे। अन्याय-अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाएंगे। इस संस्था ने साहित्य, समाज और आंदोलन नरम पथ से गरम पथ की ओर जाने लगा। अश्वेत साहित्य की समीक्षा समाजशास्त्रीय दृष्टि से होना आवश्यक है। इस संदर्भ में हस्टन ए.बेक कहते हैं, "A critic's function, attention must also be paid to the sociological condition of critics and criticism as a mean of providing safeguard against an alien orientation of judgement or evaluation a factor of which the critic may remain blissfully unaware."⁵⁶ अर्थात् एक आलोचक के कार्य, समाजशास्त्र के समसामयिक आलोचकों और आलोचना पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। क्योंकि निर्णय के

⁵⁶ Huston a bake. Jr./reading black: essays in the criticism of African, caribbean and black American literature, p-2

एक विदेशी अभिविन्यास के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करने का एक कारक या मूल्यांकन एक कारक है जिसमें आलोचक आनंदित अनजान रह सकता है।

एक ही देश अमेरिका के भीतर दो भिन्न-भिन्न अमेरिका थे। एक श्वेत लोगों का अमेरिका और दूसरा अश्वेत लोगों का अमेरिका। श्वेत और अफ्रो-अमेरिकन दोनों की दो अलग-अलग दुनिया थी। एक के लिए यह शान से जीने का देश, तो दूसरी तरफ सिर्फ अपने रंग के कारण अपमान, गुलामी, मार-पीट, हत्या और अत्याचार का शिकार होते अश्वेत लोगों का देश बनकर रह गया था।

पुरुष लेखक के साथ-साथ अश्वेत साहित्य में स्त्रियों का भी योगदान बहुत ही महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपने तीहरे जीवन की कथा को साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया। सन् 1987 में लेखिका टोनी मॉरीसन का उपन्यास 'बिलवड' प्रकाशित हुआ। सन् 1856 की एक सच्ची घटना के आधार पर यह उपन्यास लिखा गया है। कथा में अपनी बच्ची की हत्या करने के बाद उसे जल्दी से दफ़न करने का एक प्रसंग है। इस उपन्यास के लिए इन्हें नोबल पुरस्कार सहित सम्मानित किया गया है। इसमें अश्वेत गुलाम स्त्री के मातृत्व, शिशु हत्या, बलात्कार, क्रूरता, अत्याचार, आशा-निराशा, संस्कृतियों, मिथकों और आध्यात्म की कथा कही गयी है। अश्वेत आत्मकथाएँ प्रारम्भ में 'स्लेब्ज नैरेटिव्ज' या 'दास-आख्यानो' के रूप में ही सामने आईं। जिनका उद्देश्य पाठकों को यह बताना था कि गुलाम भी मनुष्य है। उनमें भी वहीं विशेषताएँ, गुण या अवगुण विद्यमान हैं, जो श्वेतों में होते हैं।

गुलाम समाज का मनुष्य स्वतंत्रता, समता, न्याय और स्वाभिमान समाज के मनुष्य को कभी जँचता नहीं है। इसीलिए अश्वेत साहित्य श्वेत पाठकों को जँच नहीं सकता। इस संदर्भ में क्लॉउड मैके कहते हैं, "white public can not read good negro books

because of race prejudice.”⁵⁷ अर्थात् श्वेत जनता रंग या नस्ल के पूर्वाग्रह के कारण अच्छी नीग्रो की पुस्तकों को नहीं पढ़ते थे।

अमेरिकी साहित्य में बीसवीं सदी में अश्वेत स्वर मजबूती के साथ उभरा। टोनी मॉरीसन, माया एंजेलो, एलिस वॉकर, रिचर्ड राइट्स, जेम्स बॉल्डविन को आज साहित्य जगत में किसी परिचय की आवश्यकता नहीं है। एलिस वॉकर की ‘कलर पर्पल’ जो आज के अश्वेत पक्ष के एक मार्मिक सत्य को उजागर करती है। आज के अश्वेत समाज की दुखती रंगों पर हाथ रखता हुआ यह उपन्यास आज के समाज को काफी बैचेन कर गया। नस्लभेद-रंगभेद और पितृसत्ता के बहुआयामी समीकरण को समझने के लिए अश्वेत स्त्री और पुरुष दोनों की आत्मकथाओं का महत्वपूर्ण योगदान है।

पहला अश्वेत लेखक जिसने अमेरिका में अपना उपन्यास प्रकाशित करवाया, उसका नाम विलियम वेल्स ब्राउन था। उन्होंने अपने उपन्यास ‘क्लोटेल्’ में इतिहास, ऐतिहासिक कल्पना, राष्ट्रीय गाथाएँ, नस्ल के विषय में बढ़ती खाई को मिला-जुला कर प्रस्तुत किया। लेखक ने स्वतंत्रता के अमेरिकी आदर्श और वास्तविकता में अमेरिकी दास के जीवन की स्थितियों को दिखाया है।

2.2.4. अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखन का आरम्भ

किसी भी देश के इतिहास में जब हम स्त्री लेखन की गाथा को देखते हैं, तो पाते हैं कि लिखना उनके लिए आसान न था। उनके सामने बहुत सारी चुनौतियाँ थीं विशेष रूप से लिंग भेदभाव की। अफ्रो-अमेरिकन स्त्री रचनाकारों के पास इसके साथ और भी चुनौतियाँ जुड़ी हुई थीं। उन्हें न केवल लिंगगत भेदभाव का सामना करना था वरन् उनके सामने दासत्व और नस्ल का मुद्दा भी खड़ा था। इन सारी चुनौतियों के बावजूद इन्होंने लिखना शुरू किया। आज की

⁵⁷ A long way from home- claud mckay, afro-american rights, volume 2, p -288

ज्यादातर अश्वेत अमेरिकी स्त्री साहित्यकार एक समय में गुलामों की संतानें थीं। एक समय था जब गुलामों के लिए पढ़ने-लिखने का कोई अवसर न था। उन्हें जबरन शिक्षा से वंचित रखा जाता था। तानाशाह और सत्ताधारी कभी नहीं चाहते हैं कि सामान्यजन शिक्षित हों। अपने बचाव के लिए, अपनी सत्ता बचाए रखने के लिए, दूसरों को अशिक्षित बनाए रखने में ही इनकी सुरक्षा है। दास की शिक्षा का सवाल नहीं उठता है। वे लोग मालिकों की नज़र में मनुष्य नहीं बल्कि जानवरों से भी बदतर थे। उनके साथ पशुओं से बुरा व्यवहार किया जाता था। ऐसी हालत में शिक्षा देने का सवाल ही नहीं उठता है। वाशिंगटन ने लिखा है, “that they be permitted to discover and interpret the entire range and spectrum of the experience of black woman and not be stymied by preconceived conclusions. Because of these writers, there are more models of how it is possible for us to live, there are more choices for black women to make and there is a larger space in the universe for us.”⁵⁸ अर्थात् ब्लैक स्त्री के अनुभव की पूरी सीमा और वर्णक्रम की खोज करने और व्याख्या करने की अनुमति दी जानी चाहिए और पूर्वनिर्धारित निष्कर्षों के आधार पर नहीं। इन लेखकों के कारण, हमारे जीने के लिए क्या संभव है। अश्वेत स्त्रियों के लिए अधिक विकल्प हैं और हमारी लिए ब्रह्मांड में एक बड़ा स्थान है।

अश्वेत लोगों की इस गुलामी की प्रथा पर कई रचनाकारों ने अपनी कलम चलाई। कुछ लोग कहते थे गुलाम स्वतंत्र नहीं होना चाहते थे। उन्हें इसकी आदत हो गई है। वे इसी दशा में सहज अनुभव करते हैं। ऐसे लोगों को सन् 1831 में एक गुलाम मेरी प्रिंस नामक स्त्री ने कहा था कि मुझे मालूम है। गुलाम कैसा अनुभव करते हैं, जो अन्य गुलामों ने मुझे बताया है। जो लोग कहते हैं कि गुलाम गुलामी में खुश है, वे स्वतंत्र नहीं होना चाहते हैं। ये लोग या तो

⁵⁸ Mary Helen Washington, introduction, black-eyed susans: classic stories by and about black women, ed. Mary helem Washington ,p- xxxii)

अज्ञानी हैं अथवा झूठ बोलने वाले लोग हैं। इन शब्दों के साथ मेरी प्रिंस न केवल अपने लिए बोलती हैं वरन् अपने साथी गुलामों के लिए आवाज़ उठाती हैं। इस तरह जब एक अश्वेत स्त्री बोलती है तो वह बिना लिंग का भेदभाव किए हुए सारे अश्वेतों के लिए बोलती है। वह गुलामी की प्रथा पर प्रश्न उठाती है। यह एक प्रारंभिक आवाज़ है गुलामों की। अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखिका डेक्सटर फीशर लिखती हैं, कि “authenticating the experience of black women, establishing a context for understanding the traditions of the past, and creating a sense of place and community, giving the community back to itself by elevating the common place to the artistic.”⁵⁹ अर्थात् अश्वेत स्त्रियों के अनुभव को प्रमाणित करना, अतीत की परम्पराओं को समझने के लिए एक संदर्भ स्थापित करना चाहिए। स्थान एवं समुदाय की भावना पैदा करना साथ ही कला को सामान्य स्थान को ऊंचा करके समुदाय को एक पहचान देना।

कुछ लोगों ने इन विषम स्थितियों में भी पढ़ना-लिखना सीखा। इनमें कुछ लोगों को अपनी लेखनी को प्रकाशित करने का अवसर भी मिला। इसका मतलब यह नहीं कि बाकी अश्वेत लोग साहित्य से वंचित थे। दुनिया के अन्य तमाम समुदायों की भांति यहाँ भी वाचिक परंपरा थी। लोकगीत, लोककथाएँ इनके बीच सदैव से थी। दमित-शोषित भी मिथकों, लोकगीत-लोककथाओं से प्राणवायु पाते हैं। अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखिका एलिस वॉकर ने अपने उपन्यास ‘द कलर पर्पल’ में प्रश्न करती हैं कि थके हुए लोग क्यों गाते हैं? दुनिया के सारे मेहनतकश लोग गाते हैं। ये गुलाम मेहनती लोग थे और ये लोग गाते थे। अपना दुःख-दर्द गीतों में पिरोते थे। अमानवीय जीवन स्थितियाँ कथा-कहानियों द्वारा थोड़ी रहने योग्य बन जाती थीं। एलिस वॉकर ने अपनी कविता ‘टोर्चर’ में गुलामी की प्रथा को ‘वृक्ष’ का प्रतीक प्रयोग कर लड़ने की प्रेरणा देती है। एलिस वॉकर से करीब दो शताब्दी पहले फ़िलिप्स

⁵⁹ the third women: minority women writers in the united states - Dexter fisher (ed.), p-140

वीटले(1753-1784) हुई थीं। जिन्होंने अपने समय की सामाजिक स्थितियों का चित्रण करने के लिए अपनी कविताओं में मिथकों का प्रयोग किया। अफ्रीका में इस महिला को प्रारम्भिक अश्वेत कवयित्री होने की संज्ञा दी जाती है। इनकी कविताएँ ‘ए फैरवेल टू मिसेस एस. डबल्यू’, ‘ए रीबस’, ‘ऑन ईमेजिनेसन’ आदि प्रमुख हैं। इन कविताओं में सामाजिक यथार्थ, स्त्री दमन और गुलामी को यूनानी मिथक ने पहनकर प्रस्तुत किया गया है। जो इस कविता के माध्यम से देख सकते हैं,

“A bird delicious to the taste
On which an army once did feast,
Sent by a hand unseen,
A creature of the horned race,
Which Britain’s royal standards grace,
A gem of vivid green.”⁶⁰

प्रसिद्ध कवयित्री माया एंजेलो ने अपनी आत्मकथा छः भागों में प्रकाशित की है। जिसके प्रथम भाग ‘आई नो हवाई द केज्ड बर्ड सिंग्स’ में अश्वेत होने की दहशत, अपमान और दर्द को बड़ी मार्मिकता से चित्रित किया है। यह अमेरिकी समय की मान्यताओं, विचारों, मूल्यों, रीति-रिवाजों, मिथकों, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक स्थितियों का दस्तावेज है। माया एंजेलो अपनी आत्मकथा ‘आई नो हवाई दकेज्ड बर्ड सिंग्स’ के तेइसवें अध्याय में ऐसे ही एक गीत का उल्लेख किया है। इस एक गीत से उन लोगों की मुरझाई हुई आत्मा फिर से हरी-भरी हो जाती है। वे फिर गर्व से सिर उठा पाती हैं। आज जब इनका लेखन उपलब्ध है तो देखा जा सकता है कि यह साहित्य कितना अनोखा है। यह अश्वेत अनुभवों को चित्रित करता है और दिखाता है, दूसरों को अनुभव कराता है। इनका साहित्य किसी दृष्टि से

⁶⁰ The poems of Phillis Wheatley, with letters and a memories, p-59

कमतर नहीं है। इनकी रचित कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथाएँ सराहनीय उपलब्धियाँ हैं। यह साहित्य मानव संस्कृति की थाती है। मनुष्य के संघर्ष, अस्मिता, गौरव, उनकी जिजीविषा की निशानी है। अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखिकाओं के नाम लूसी टेरी, फिलिप्स द्विटली, अड्रे लॉर्डे, मेरी चर्च टेरल, ग्वेंडोलिन ब्रूक्स, निक्की गिओवान्नी, टोज़ेक शेंज़, हेलेन जॉनसन, मार्ग्रेट डेनर, सोनिआ सनचेज़, लुसिलाइ क्लिफ्टोन, एलाइस वाकर, रीटा डोव, नताशा ट्रेथवे, शरन स्ट्रेंज़, वीरा व्यूटी, सारिलीन नेल्सन, माया एंजेलो आदि प्रमुख हैं। “There are those nineteenth and twentieth century African-American women short story writers like Harper, Pauline Hopkins, Zora Neale Hurston, Alice Walker and Toni Morrison, who are perhaps better known for their accomplishments as novelists, poets and essayists. Because of its accessibility, the short story invites innovation an opportunity to experiment with style and form, voice and language.”⁶¹ अर्थात् उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के अफ्रीकी-अमेरिकी महिला लघु कथाकार हार्पर, पॉलीन होप्किंस, ज़ोरा नील हॉर्सन, एलिस वॉकर और टोनी मॉरिसन जैसे लेखिका हैं, जिन्हें शायद उपन्यासकार, कवि और निबंधकार के रूप में उनकी उपलब्धियों के लिए जाना जाता है।

जिस अफ्रो-अमेरिकन स्त्री रचनाकार को प्रथम साहित्यकार होने का सौभाग्य मिला। जिसकी साहित्य की जानकारी आज उपलब्ध है। वह एक गुलाम के रूप में ही पैदा हुई थी। लूसी टेरी (1730-1821) रोड आइलैंड में पैदा हुई थी। सन् 1756 में अमेरिकन और अश्वेतों के बीच हुई लड़ाई को उनकी कविता ‘बार्स फाइट’ शब्दों में पिरोती है।

“ऑगस्त, ट्वास द ट्वेंटी-फिफ्थ,

सेवेंटीन हंड्रेड फोर्टी-सिक्स,

⁶¹ African-American women's literature- Angelyn Mitchell, p-245

द ईडियांस डिड आम्बस ले,
सोम वेरी वेलिआंट में टू स्टे....”⁶²

यह कविता करीब सौ साल तक मौखिक ही रही। सन् 1855 में जाकर इसका प्रकाशन हुआ। इन्होंने अपने जीवन में दोहरा संघर्ष किया है। श्वेतों की गुलामी से तथा स्त्री होने के नाते अश्वेत पुरुषों की गुलामी से भी लड़ना पड़ा। “Black womens short stories are a part of a long and rich tradition of African-American womens published work that begin the poetry of Lucy Terry and Phillis Wheatly.”⁶³ इनके जन्म के कुछ वर्षों बाद सोजोर्नर ट्रूथ (1707-1883) का जन्म हुआ। इन्होंने अश्वेतों की गुलामी को समाप्त करने के लिए कई आंदोलन किया। वह एक क्रांतिकारी के रूप में उभर कर आईं। वह कहती थीं, “I want to ride, I want to ride!”⁶⁴ अर्थात् मैं बड़ना चाहती हूँ, मैं अपना मार्ग बनाना चाहती हूँ।

ऐतिहासिक दृष्टि से अफ्रो-अमेरिकन साहित्य में सर्वाधिक नाम और प्रेरणा के लिए जिस महिला सामाजिक रूप से सक्रिय, रचनाकार-साहित्यकार का नाम लिया जाता है, वह ‘जोरा नील हर्सटन’ है। जोरा ने हार्लेम आंदोलन में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया। जोरा ने चार उपन्यास और पचास से अधिक कहानियाँ, लेख, जीवनी और नाटक लिखे हैं। बाद में कई महिला और पुरुष साहित्यकारों के लिए उनकी जीवन तथा कृतित्व प्रेरणा बनी। अफ्रो-अमेरिकन रचनाकार टोनी मॉरीसन और एलिस वॉकर ने अपने जीवन में रचना करने की प्रेरणा जोरा नील हर्सटन से ही मिली।

अश्वेत दास आत्मकथाओं के संदर्भ में स्त्री और पुरुष रचना दृष्टि का भेद स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। यह अंतर स्त्री-पुरुष का अनुभूति का अंतर है, जैसा कि हैरियट जैकोब्स ने

⁶² The Health Anthology of American Literature, volume-A- ed. Paul Lauter, p-768

⁶³ African-American women’s literature- Angelyn Mitchell, p-245

⁶⁴ The health anthology of American literature, volume- A(colonial period to 1800) fifth edition, p- 2092

‘Incidents in the life of a slave girl’ पुस्तक में लिखा है कि, ‘पुरुष के लिए दासता त्रासद है, लेकिन स्त्री के लिए उससे भी कहीं ज्यादा त्रासद और यातनाप्रद है।’ गुलामी का जीवन, जीवन के मूलभूत अधिकारों से वंचित जीवन है। बीसवीं शताब्दी में नागरिक अधिकार आंदोलन और स्त्री आंदोलन के दौर में अश्वेत स्त्रियों ने बड़े पैमाने पर स्वानुभवों की अभिव्यक्ति के लिए साहित्य की विभिन्न विधाओं को माध्यम बनाया। बारबारा स्मिथ अपने निबंध ‘towards a black feminist criticism’ में लिखती हैं, “A black feminist approach to literature that the politics of sex as well as the politics of race and class are crucially interlocking factors in the works of black women writers is an absolute necessity. Until a black feminist criticism exists we will not even know what these writers mean.”⁶⁵ अर्थात् साहित्य के लिए एक अश्वेत नारीवादी दृष्टिकोण में सेक्स की राजनीति के साथ-साथ रंग और वर्ग में भी अश्वेत स्त्रियों के लेखन कार्य में महत्वपूर्ण रूप से गुंथा गया है। जब तक एक अश्वेत नारीवादी आलोचना मौजूद है तब तक हमें पता भी नहीं चलेगा कि इन लेखिकाओं के लेखन का क्या मतलब है।

सन् 1963 में मार्टिन लूथर के नेतृत्व में राजधानी वाशिंगटन में दो लाख अश्वेतों का जुलूस निकला। जो अश्वेत मानस की इच्छाओं और समानता के अधिकार की आकांक्षा से प्रेरित था। आगे आने वाले बीस वर्ष अश्वेत आंदोलन के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण साबित हुए, जिन्होंने अश्वेत संस्कृति, संगीत, कला, साहित्य, भाषा से समूचे विश्व में अपनी विशिष्ट पहचान बना ली।

इस दौरान अश्वेत स्त्री रचनाकारों की ऐसी पीढ़ी पाठक से रु-ब-रु हुई, जो अपने ‘टेम्पस्ट’ और ‘बहुआयामिता’ बहुरंगभेदी, बहुनस्लवादी की पाठकों की चेतना का हिस्सा

⁶⁵ Patricia bell scott and Barbara smith- ed. Gloria t. hull, p-159

बनने लगी। अब रंगभेद का मुद्दा बहुआयामी हो गया। कभी तो पूरी तरह राजनीतिक, कभी अराजनीतिक, कभी निजी। स्त्रियों ने आत्माख्यान लिख कर दोहरा जोखिम उठाया। 'द ब्लैक विमेन: एन आंथोलोजी(1970)' में टोनी केड (Bambara) में लिखती हैं कि, "This then is a beginning- a collection of poems, stories, essays, formal, informal, reminiscent, that seem best to reflect the preoccupations of the contemporary Black Woman in this country."⁶⁶ अर्थात् इसके बाद यह एक कविता, कहानी, निबंध, औपचारिक, अनौपचारिक, याद दिलाने वाला संग्रह है, जो इस देश में समकालीन अश्वेत महिला की परिकल्पना को प्रतिबिंबित करने के लिए सबसे अच्छा लगता है।

2.2.5. अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों का तिहरा अभिशाप

हम हर साल 8 मार्च को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाते आ रहे हैं। इस दिन हम बार-बार यह विचार करते हैं कि क्या समाज में स्त्री को पुरुषों के बराबर अधिकार और सम्मान प्राप्त हैं? लेखिका एलिस वॉकर का प्रसिद्ध उपन्यास 'कलर पर्पल' है। यह उपन्यास हमें एक तरह से अमेरिका में अश्वेत स्त्रियों के जीवन से रू-ब-रू कराता है। अफ्रो-अमेरिकन का अपने जीवन के दोहरे शोषण को जो एक अभिशाप के रूप में उन्हें भोगना पड़ता है। एक तरह गुलामी की बेड़ियां थीं, तो दूसरी तरफ स्त्री होने का शाप था। लेखन ही एकमात्र उपाय था और वही हुआ, उन्होंने अपनी अनुभूति लिखी और तिहरे अभिशाप को पन्नों पर उतारा। वर्ग, लिंग और नस्ल इन तीनों को मिला कर तिहरा अभिशाप अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों के जीवन संघर्ष के रास्ते को और भी कठिन बना देता है।

⁶⁶ The black women: an anthology, new york: new American library, 1970, p- 6

अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कवयित्रियों की सूची, इनकी कविताओं के साथ इस प्रकार है, माया एंजेलो का काव्य संग्रह 'द कॉम्पिलिट कलेक्टेड पोयम ऑफ माया'(1986), 'एंड स्टिल आई राइज'(1978), 'फिनोमेनल वूमेन'(1995), 'ऑन द पल्स ऑफ मॉर्निंग'(1993), कवयित्री एलिस वॉकर का काव्य संग्रह 'कलेक्टर फोटो मस्त हर ब्लू बॉडी एवरीथिंग वी नॉ'(1991), कवयित्री ग्वेंडोलिन बुक्स का काव्य संग्रह 'द वर्ल्ड ऑफ वंडर इन ब्रुक्स'(1972), कवयित्री फिलिप्सविटली का काव्य संग्रह 'द पोएम्स ऑफ फिलिस विटली', कवयित्री रीटा डव का काव्य संग्रह 'सिलेक्टेड पॉएम्स' (1993), 'द यलो हाउस ऑन द कॉर्नर' (1980), कवयित्री सोनिया संचेज़ का काव्य संग्रह लाइट 'द सिंगिंग कमिंग ऑफ द ड्रम्स' (1995), 'क्लोज माय स्किन' (1999) आदि प्रमुख रूप से अशक्त स्त्री कविताएं लिखने में सक्रिय हैं।

सीमोन द बोउवार ने 'द सेकंड सेक्स' में कहा है कि, “स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि बना दी जाती है।”⁶⁷ अमेरिका में अश्वेत स्त्री का इतिहास ऐसा इतिहास है। जिसे सिर्फ अश्वेत स्त्रियाँ ही बयाँ कर सकती थीं। अश्वेत स्त्री लेखन कार्य में सक्रिय होने के बाद भी अपनी जड़ों तक गईं। जहाँ इतिहास से आती हुई हल्की रोशनी में उन्होंने अपने वर्तमान को बाँचकर भविष्य की तैयारी की। कवयित्री एलिस वॉकर अपनी कविता 'A woman is not a potted plant' में लिखती हैं कि,

“a woman
is wilderness
unbounded
holding the future
between each breath

⁶⁷ www.google.com

walking the earth

only because

she is free

and not creepervine

or tree.”⁶⁸

अफ्रो-अमेरिकन स्त्री ‘टू विमनहुड’ से ‘रियल विमनहुड’ के सफर में संघर्षरत थी। वहीं अश्वेत स्त्री उन्नीसवीं सदी की दास प्रथा के अनुभवों को बीसवीं सदी के स्त्रीवादी आंदोलन में शामिल कर रही थी। यहां दोनों आंदोलन में शामिल स्त्रियों के सफर के रास्ते भी एक दूसरे से कहीं अलग थे। अश्वेत स्त्री को अपनी दास्तां के दारुण इतिहास को समझते हुए, अपने स्त्री होने की लड़ाई के नजदीक जाना था। उनके पास अफ्रो-अमेरिकन होने के अनुभव भी थे। दास्तां के इतिहास और नस्ल के फलस्वरूप उपजे भेद-भाव और वर्ग और लिंग के अंतरसंबंधों से उपजे भेदभाव के आलोक में उन्हें अपने अपने आगामी संघर्षों के लिए कमर कसनी थी।

विजय शर्मा लिखते हैं कि “पिछले सदी के सत्तर के दशकों में जब अश्वेत चेतना जाग रही थी, अश्वेत अपनी अस्मिता पहचान कर सिर उठा रहे थे, बहुत सारे अश्वेतों के साथ कुछ श्वेत भी उनके विचारों से सहमत थे, उस समय एक विचार, एक वाक्य प्रचलित हुआ ‘ब्लैक इज ब्यूटीफुल’, काला सुंदर है।”⁶⁹ अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियाँ अपने ऊपर होने वाले दमन के बारे में क्या सोचती हैं? उसे बदलाव के प्रतिमान कैसे होने चाहिए? यह सब सिर्फ वे ही तय कर सकती थीं। जब एक फेमिनिस्ट ‘मैं एक अश्वेत स्त्रीवादी हूँ’ कहती है तो उसका अश्वेत होना अलग मायने रखता है। अश्वेत फेमिनिस्ट रचनाकारों ने सबसे पहले स्त्री के बौद्धिक अस्तित्व की बात को सामने रखा। उन सबने यह माना कि पढ़ना लिखना उनके अंतर्मन में खुशी, शक्ति

⁶⁸ Her blue body everything we know- alice walker, p- 455

⁶⁹ अफ्रो-अमेरिकन साहित्य स्त्री स्वर - विजय शर्मा, पृ- 180

और ज्ञान उत्पन्न करता है। ज्ञान उनकी प्रेरक शक्ति है। उन्हें ऐसी प्रेरक शक्ति की तलाश थी, जिसके बूते वे अपने आस-पास की स्त्रियों के लिए नैतिक और राजनीतिक समझ और प्रेरणा भरने का काम बेहतर तरीके से सामने रख सकती है।

2.3. दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में स्त्री चेतना

विश्व के इतिहास में दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में स्त्री अस्तित्व की पहचान है। इन दोनों साहित्य का समन्वय उनका यथार्थ की गाथा सुनना है। जहाँ दुःख और दर्द के अलावा कुछ मिला ही नहीं। अपने अस्तित्व की लड़ाई में साहित्य को अपना हथियार बनाया और इस हथियार ने आज इन दोनों साहित्य को एक अलग पहचान दी है। देश और दुनिया के सभी कोनों में अपनी बात पहुँचाई है। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों ने अपनी बुनियाद को साबित किया है कि मनुष्य में स्त्री-पुरुष, रंगभेद, जातिप्रथा के भेदभाव को समाप्त कर एकता स्थापित करना है। इन्होंने अपनी सच्चाई को साहित्य के हर पन्ने पर उजागर किया है। कविता वह आधार है जिसने चार पंक्तियों में ही दुनिया को समा लिया है। ‘छोटा मुँह बड़ी बात’ की इस प्रक्रिया ने स्त्री चेतना जागृत करने में सफलता पाई है। ग्वेंडोलिन ब्रूक्स अपने अफ्रो-अमेरिकन कवयित्री होने की बात को इस तरह व्यक्त करती हैं, “sometimes there is a quarrel can poetry be ‘black’? The fact that a poet is a black means that his life, his poetry and the histories of his ancestors have been different from the histories of chineses, japanes poets. Eskimo poets, indian poets, irish poets.....the poetry from black poets inside it are different nuisances and out rightness.”⁷⁰ अर्थात् इस बात पर विवाद है कि क्या कविता ‘काला’ हो सकती है? यह तथ्य कि एक कवि जो अश्वेत है उसका जीवन, उसकी कविता और उसके पूर्वजों के इतिहास चीनी, जापानी कवियों के इतिहास से भिन्न हैं।

⁷⁰ Gwendolyn brooks/ introduction: black words that say, don't cry scream, by donllee

एस्कमो कवि, भारतीय कवि, आयरिश कवि.....इसके अंदर अश्वेत कवियों की कविताएँ
अलग-अलग उपद्रव और उदासी हैं।

यह वस्तु स्थिति है कि, दलित साहित्य और अश्वेत साहित्य हमारी दुनिया का दर्पण हैं। जो देखा, अनुभव किया, मांगा जाना, समझा, उसका अंकन उत्कृष्टतापूर्वक हुआ है। आज के वैज्ञानिक युग में नारी और पुरुष के चरित्र के मापदंड अलग-अलग हैं। विडम्बना यह है कि, नारी के लिए सदियों पूर्व गढ़ी गई पुरुष-प्रधान समाज-व्यवस्था द्वारा घटिया व दकियानूसी मान्यताएँ आज भी जस की तस मौजूद हैं। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों ने जब स्वयं को पहचाना। तब अपने अस्तित्व के वजूद को बनाने के लिए काफी संघर्ष किया। लेकिन एक स्त्री अपने ही वजूद की पहचान से डरती भी है कि वह एक स्त्री है। कवयित्री सुशीला टाकभौरे अपनी कविता 'स्त्री' में लिखती हैं कि,

“वह सोचती है
लिखते समय कलम को झुका ले
बोलते समय बात को संभाल ले
और समझने के लिए
सबके दृष्टिकोण से देखे
क्योंकि वह एक स्त्री है।”⁷¹

गुलामी का जीवन तो पुरुषों ने भी सहा था। किंतु स्त्रियों के लिए तो दोहरा अभिशाप है। परिवार और समाज दोनों के द्वारा यातनाओं का शिकार बनीं। समय के साथ-साथ उन्होंने भी स्वयं के लिए लड़ना सीख लिया। समाज में स्त्री जाति पर होने वाले शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार, अन्याय और पैशाचिक कार्यों को रोकने के लिए समानता, स्वतंत्रता और शोषण के विरुद्ध मौलिक अधिकारों का प्रावधान भारतीय संविधान में किया गया है। इतना ही नहीं,

⁷¹ मेरे काव्य-संग्रह – यह तुम भी जानो : तुमने उसे कब पहचान- सुशीला टाकभौरे, पृ-31

स्त्री जाति को मानवीय अधिकार दिलाने के लिए राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर महिला आयोगों की स्थापना भी की गई है, लेकिन समाज में स्त्रियों की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं आया है। यदि कारण- कार्य के नियमानुसार स्त्रियों की इस स्थिति का कारण खोजा जाए तो ज्ञात होता है कि इसका मुख्य कारण भारत में मनु की व्यवस्था है। जिसने स्त्री समाज की समानता और स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा दिया है। इस संदर्भ में मनु का कथन विशेष तौर पर उल्लेखनीय है। वह कहता है कि, “पुरुषों को चाहिए कि वे अपने अधीनस्थ स्त्रियों को कभी स्वतंत्र न रहने दें। वे विदित विषयों में लगी हुई भी अपने वंश में रहें, ऐसा यत्न करें। कुमारी अवस्था में पिता उसकी रखवाली करता है, युवावस्था में पति और बुढ़ापे में पुत्र उसकी रक्षा करते हैं। स्त्री का सर्वथा स्वतंत्र रहना योग्य नहीं।”⁷²

भारतीय समाज की पुरानी एवं रुढ़िवादी परम्परा के चलते स्त्रियों की स्थिति आज इस प्रकार हो गयी है। परंतु अमेरिका में कोई परम्परा या अंधविश्वास के विचार नहीं थे। वरन् वहाँ तो केवल रंग के आधार पर इतना बड़ा इतिहास रचा गया। किसी भी व्यक्ति का रंग उसकी पहचान बन नहीं सकता। परंतु अमेरिकी लोगों ने इसे अपना हथियार बनाकर अश्वेत स्त्री और पुरुषों को अपना गुलाम बनाया। रंग चाहे गोरा हो या काला मनुष्य की पहचान अपने कर्म से होनी चाहिये। अश्वेत स्त्रियों को जानवर और स्त्री दोनों समझा गया। श्वेत पुरुषों ने उन्हें अपनी वासना का शिकार बनाया। तब उन्हें रंगों में कोई अंतर नज़र क्यों नहीं आया? कवयित्री एलिस वॉकर ने अपनी कविता ‘He said come’ में कहती हैं कि,

“He said come

Let me exploit you

Somebody do it

And wouldn't you

⁷² मनुस्मृति, 9/2,3

Prefer a brother?
Come, show me your
Face,
All scarred with tears,
Unburden your heart-
Before the opportunity
Passes away.”⁷³

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों ने अपनी कविता में केवल वही लिखा जो समाज और परिवार ने उन्हें दिया। ग्वेंडोलिन ब्रक्स ने व्यक्त किया है, “I wrote about and about circumstances that have been influenced by horrible happenings in our society.”⁷⁴ अर्थात् मैंने उन परिस्थितियों के बारे में लिखा है, जो हमारे समाज के भयानक रूप से प्रभावित हुई हैं।

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों को धीरे-धीरे पूर्व संस्कारों के कीचड़ से निकलना पड़ेगा। यह क्रांतिकारी परिवर्तनवादी दलित एवं अश्वेत साहित्य का सिलसिला है। अब परिवर्तन आना जरूरी है। अपमान, तिरस्कार के जीवन को छोड़कर अब नई पहचान की ओर आगे बढ़ना है। स्वयं के साथ-साथ पूरी दुनिया की स्त्रियों के लिए संघर्ष करना है। क्रांति लाने के लिए यह आवश्यक है कि अमेरिकी स्त्रियों के अंदर वह ज्योति लौह जागृत की जाए। जिसके प्रकाश से पूरी दुनिया जगमगा उठी है।

“पढ़ो मनुस्मृति
उलट महाभारत, पलट रामायण।
पढ़ कानून

⁷³ Collected poems, her blue body everything we know- alice walker, p-213

⁷⁴ Gwendolyn brooks/ introduction: black words that say, don't cry scream, by donllee

मिटा तिमिर, लगा हलकार।

पढ़ समाजशास्त्र, बन सावित्री

शिक्षा का परचम।”⁷⁵

‘शिक्षा का परचम’ कविता में कवयित्री ने कुछ शब्दों में ही अपनी बात बड़े पैमाने से सामने रखा है। इस कविता में शिक्षा के महत्व को समझाने के लिए वैदिक काल से उदाहरण देते हुए समकालीन समय तक पहुँच गयी है। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में अब मुक्ति की आशा दिखाई देती है। सदियों से झेल रही इस गुलामी की प्रथा को समाप्त कर, समता की भावना फैलाना चाहती हैं। अब अपने अधिकारों के लिए लड़ने से पीछे नहीं हटेंगी। गिरेगी, उठेगी और अपने लिए लड़ेगी जरूर। कवयित्री माया एंजेलो अपनी कविता ‘And Still I Rise’ में कहती हैं,

“You may shoot me with yours words

You may cut me with your eyes

You may kill me with your hatefulness

But still, like air

I will rise.”⁷⁶

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में जीवन जीने का हौसला देती है। दमन-शोषण के खिलाफ सिर उठाकर खड़े होने की सीख देती है। यह कविताएँ प्रेरणादायक शक्ति का काम करती है। इन्हें पढ़कर हम स्वयं को पहचानते हैं।

⁷⁵ पदचाप - रजनी तिलक, पृ-16

⁷⁶ And still I rise- maya angelou, p-42

2.4. निष्कर्ष

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन साहित्य शाब्दिक चमत्कार उत्पन्न करने मात्र के लिए कविता नहीं है, बल्कि उसका सीधा संबंध मानव के लोकतांत्रिक अधिकारों से है और यही व्यक्ति के जीवन को बेहतर बनाने की मांग भी है। शब्दों के गहन अर्थ या शब्दजाल के सौंदर्य की पक्षधर वह नहीं है, बल्कि सीधे-सीधे उसके केंद्र में व्यक्ति होता है। इस प्रकार समाज और देश में समता की पक्षधर दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं राष्ट्रीय एकता का आधारभूत स्वर है।

अपने साथ हुए अन्याय, अस्पृश्यता और घृणा भरे जीवन को अभिव्यक्त करती हुई दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ नज़र आती हैं। कवयित्रियों ने एक नयी इतिहास-दृष्टि विकसित की है। यह कोई शून्य में विकसित नहीं हुई है। इसके पीछे उनका लम्बे समय का इतिहास-बोध है, अनुभव से प्राप्त अंतहीन यातना, समय का ताप तथा इतिहास के दबाव झेलने पड़े हैं। इन्हीं इतिहास-दृष्टि का अंजन प्राप्त हुआ है। दोनों साहित्य के ऐतिहासिक संदर्भ में देखा जाए तो, साहित्य के उदय होने का कारण, जाति, शोषण, वर्ग, गुलामी, नस्ल, रंग, भेदभाव, अमानवीयता, अत्याचार, वर्षों की पीड़ा, अपने देश में गुलाम की तरह जीना, अपने देश से दूर ले जा कर दूसरे देश में गुलाम बनाना, मनुष्य के साथ पशुओं जैसा व्यवहार करना, ये सब इस साहित्य की नींव है जो इसे आज इतना मजबूत बनाती है।

इस अध्याय के अंत में यह कहना उचित होगा कि दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखन आज प्रौढ़ता को प्राप्त कर चुकी है। वह अपनी नस्ल, अपनी संस्कृति को लेकर गर्वित है। शान से सिर उठाकर, बिना किसी झिझक या शर्म के ये रचनाकार अपनी बात कहती है। इन्होंने समीक्षकों को बाध्य किया है कि इनमें काम का मूल्यांकन इनके कार्य की शर्तों पर हो। किसी अन्य मूल्यों के द्वारा इनके कार्य को न जाँचा जाए। इनके अनोखे अनुभवों को दूसरों के तराजू पर न तौला जाए। आज इनकी रचनाओं को दुनिया की किसी भी भाषा के उच्चतम

साहित्य के समक्ष रखा जा सकता है। इनके पाठक सारी दुनिया में फैले हुए हैं। आलोचक उनको अनदेखा करने की हिम्मत नहीं कर सकते हैं। साहित्य ने इन्हें इतना सम्मान दिलाया है कि आज इन्हें भाषण देने और अनुभव साझा करने के लिए बुलाया जाता है। आज दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री के लिए लिखने-पढ़ने के अवसर पूरी तरह से उपलब्ध हैं। संचार और सूचना के तमाम साधन इनको हासिल हैं। समाज में जब तक असमानता, अत्याचार, दमन है तब तक इनकी कलम रुकने वाली नहीं है।

तृतीय अध्याय

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ : सामाजिक संदर्भ

3.0. प्रस्तावना

हर बड़ा रचनाकार पूर्ण रूप से समाज-विशेष की ही देन होता है और उसी समाज-विशेष की भाषा, संस्कृति, परम्पराओं और इतिहास के दायरे में उसकी रचनात्मकता अभिव्यक्ति पाती है। इसलिए जिस साहित्य का अपने समाज से जितना आदान-प्रदान होगा। वह साहित्य उतना ही जीवंत, संवेदशील एवं प्रभावशाली होगा। साहित्यकार कभी भी समय की विचारधारा से अछूता नहीं रह सकता है। जीवन की तरह साहित्य में भी संघर्ष और निरंतरता चलती रहती है। इस प्रकार सामाजिक गतिविधियों तथा समाज में चल रही परम्पराओं से समाज का साहित्य अवश्य ही प्रभावित होता है।

इस अध्याय के अंतर्गत दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में सामाजिक संदर्भ में आने वाली कई समस्याओं पर चर्चा करेंगे। साथ ही साहित्य और समाज के संबंध के कारण समाज में चल रही गतिविधियों का आकलन भी किया जाएगा। समाज की परम्पराओं ने आज दलित और अफ्रो-अमेरिकन साहित्य को जन्म दिया।

3.1. साहित्य और समाज का परस्पर संबंध

मनुष्य का जीवन समाज के साथ जुड़ा हुआ है और समाज, साहित्य के साथ। साहित्य का एक अभिन्न अंग समाज है। लेखक और कवि साहित्य को समाज के साथ जोड़ने का काम करते हैं। समाज के हर हिस्से को शब्दों के माया जाल में एक हार की तरह पिरोते हैं। साहित्य ही वह माध्यम है जो हमें समाज की तरफ हमारे दृष्टिकोण को उजागर करता है।

समाज में चल रही हर समस्या चाहे वह धर्म से हो, जाति से हो या लिंग से, साहित्य ने हर पहलू को सामने रखा है।

साहित्य हमेशा समाज के हित की कामना करता है। यदि समाज शरीर है तो साहित्य उसकी आत्मा। अगर देखा जाए तो साहित्य मनुष्य के मस्तिष्क से उत्पन्न होता है क्योंकि मनुष्य समाज का अभिन्न अंग है। मनुष्य समाज में रहकर अनेक प्रकार का अनुभव ग्रहण करता है एवं जब वह प्राप्त अनुभव को शब्द द्वारा अभिव्यक्त करता है, तो वह साहित्य बन जाता है। साहित्य एवं समाज का संबंध युगों-युगों से देखा गया है। दूसरे अर्थ में कहें तो साहित्य एवं समाज एक ही सिक्के के दो पहलू एवं एक दूसरे के पूरक भी हैं। साहित्य का सृजन समाज के लिए एवं समाज द्वारा ही होता है। इसीलिए तो कहते हैं साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य का सृजन मानव पटल में होता है क्योंकि यह एक कला है।

बालकृष्ण भट्ट ने अपने निबंधों में भारतीय जीवन की विभिन्न समस्याओं और चुनौतियों पर अपनी राय व्यक्त की है। वह साहित्य और समाज के संबंध में बहुत ही सटीक चर्चा करते हैं। उनका मानना है कि साहित्य अपने देश की जाति की व्याख्या भी करता है। किसी भी देश का साहित्य पढ़कर समझा जा सकता है कि वह किस जाति का साहित्य है। यहाँ जाति का अर्थ समाज से है। वह किसी जाति विशेष की बात नहीं करते बल्कि उस पूरे समाज की बात करते हैं, जिसका वह साहित्य है। वह लिखते हैं, “प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्श रूप है, जो जाति जिस समय जिस भाव से परिपूर्ण या परिलुप्त रहती है, वे सब भाव उस समय के साहित्य की समालोचना से अच्छी तरह प्रगट हो सकते हैं।”⁷⁷

⁷⁷ साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका – मैनेजर पाण्डेय, पृ-57

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य के परिवर्तन और विकास को सामाजिक परिवर्तन और विकास से जोड़ते हुए लिखा है कि, “जिस जाति की सामाजिक अवस्था जैसी होती है उसका साहित्य भी वैसा ही होता है। जातियों की क्षमता और सजीवता यदि कहीं प्रत्यक्ष देखने को मिल सकती है तो उसके साहित्य रूपी आईने में ही मिल सकती है। इस आईने के सामने जाते ही हमें तत्काल मालूम हो जाता है कि अमुक जाति की जीवनी शक्ति इस समय कितनी या कैसी है और भूतकाल में कितनी और कैसी थी।”⁷⁸

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने साहित्य और समाज के संबंध को इन शब्दों में व्यक्त किया है कि, “साहित्य और जीवन का क्या संबंध है, यह प्रश्न आज एक विशेष प्रयोजन से पूछा जाता है। वर्तमान भारतीय समाज एक ऐसी अवस्था में पहुँच गया है जिसके आगे अज्ञात संभावनाएँ छिपी हुई हैं। विशेषतः हमारे शिक्षित नवयुवकों के लिए यह क्रांति की घड़ी है।”⁷⁹

3.2. दलित स्त्री कविताओं में सामाजिक भेदभाव

‘स्त्री’ शब्द अपने आप में एक संसार को समेटे हुए है। स्त्री चाहे किसी भी जाति, धर्म या देश से जुड़ी हो, परंतु हर स्थान पर स्त्री होना ही उसकी पहचान मात्र बन कर रह गया है। सभी पुरुषों के लिए स्त्री की परिभाषा एक ही अर्थ में होती है। हमारे देश में मुख्यधारा की स्त्रियों की समस्याओं में सबसे अधिक दलित स्त्री इस समाज में झेलना पड़ता है। दलित स्त्री की समस्या केवल परिवार नहीं अपितु समाज में भी उसे मानवीय अधिकार प्राप्त नहीं है। परिवार और समाज के नियम-उपनियमों की चक्की में पिसती चली जा रही है। डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि “व्यक्ति समूह से समाज बनता है यह एक बहुत ही स्थूल और मामूली वक्तव्य है। समाज कभी-भी व्यक्ति से नहीं बनता, वह वर्ग से ही बनता है। प्रत्येक समाज में वर्ग अस्तित्व में होते हैं। वर्ग-रचना के मूल में निहित कारण अलग-अलग होते हैं, कभी आर्थिक, कभी

⁷⁸ साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका – मैनेजर पाण्डेय, पृ-58

⁷⁹ हिंदी साहित्य रचना और विचार, नंद दुलारे वाजपेयी, पृ-20

बौद्धिक, कभी राजनीतिक कारणों से वर्ग बनते हैं। हिंदू समाज भी इसके लिए अपवाद नहीं है। इस नियमानुसार वर्ग जाति में रूपांतरित होते गये। वास्तव में 'जाति और वर्ग' यह आमने-सामने रहने वाले पड़ोसी की तरह होते हैं। बहुत मामूली भेदों के कारण उनका अस्तित्व भिन्न-भिन्न लगता है। वस्तुतः जाति एक स्वयं मर्यादित वर्ग है।⁸⁰ समाज में जाति-व्यवस्था को ठीक से जानने और समझने के लिए डॉ. अम्बेडकर के दो ग्रंथों का अध्ययन करना अत्यंत आवश्यक है पहला 'शूद्र कौन थे?' और दूसरा 'अस्पृश्य कौन थे? वे अस्पृश्य कैसे बने?'।

पिछले कई वर्षों से साहित्य में दलित स्त्री की समस्याएँ सामाजिक प्रश्न बन कर उभरी हैं। पर दुःख की बात यह है कि उसके स्वयं के शामिल रहते हुए जिस गंभीरता से उसके मुद्दों और समस्या पर बात की जानी चाहिए थी। वह आज तक नहीं हो पाई है। समाज में सबसे निरंतर स्थिति में खड़ी दलित स्त्री की लड़ाई आज चारों तरफ से है, क्योंकि उस पर आक्रमण भी चारों ओर से हुआ है। आज भी दलित स्त्री अपनी इंसानी गरिमा और अधिकारों से वंचित हैं। जहाँ एक ओर उसकी लड़ाई अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और मानवीय अधिकारों को प्राप्त करने की है। वहीं दूसरी ओर उसकी लड़ाई अपनी अस्मिता बचाए रखने की भी है। डॉ. अम्बेडकर लिखते हैं कि, "भारतीय समाज का तानाबाना अभी भी जाति व्यवस्था पर आधारित है। और भारतीय समाज के विभिन्न स्तरों में परिवर्तन का निर्धारण भी जाति के आधार पर होता है। प्रत्येक हिंदू जिस जाति में जन्म लेता है उसकी वह जाति ही उसके धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक जीवन का निर्धारण करती है। यह स्थिति माँ की गोद से लेकर मृत्यु की गोद तक रहती है।"⁸¹

वक्त की कठिन धाराओं में बहकर दलित स्त्रियों ने अपने अधिकार को पाने और अपने अत्याचार को व्यक्त करने के लिए जो माध्यम चुना, वह साहित्य है। रजनी तिलक

⁸⁰ हिंदुवी जातिप्रथा व ती मोडण्याचा मार्ग : डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर, पृ-14

⁸¹ डॉ. अम्बेडकर वांगमय खंड -9 पृ-21,22

लिखती हैं कि, “दलित स्त्री कविता जाति-भेद, लिंग-भेद, अमीरी-गरीबी, मजदूरी, भूख, उपजातिवाद, जाति-हिंसा, घरेलू हिंसा, पीड़ा, उत्पीड़न, दमन, भ्रष्टाचार, राजनीतिक बदकारी, कलह-अंतर्कलह, द्वन्द्व, उपनिवेशवाद, अंधविश्वास, रुढ़िवाद, धार्मिक पाखंड व ब्राह्मणवाद की श्रेष्ठता तथा पुरुष की सर्वोच्चता को जहाँ चुनौती देती है, वहीं एक सम्यक दृष्टि देकर प्रबुद्ध समाज की रचना में अपना योगदान देती है।”⁸² दलित स्त्री कविताओं में कई समस्याओं को रेखांकित किया गया है। जो आगे बिंदुओं के माध्यम से व्याख्या की गई है।

3.2.1. जातिवादी व्यवस्था

भारतीय समाज में दलित स्त्री की स्थिति का मुख्य कारण भारतीय जाति व्यवस्था है। जिसने समाज को कई हिस्सों में बाँट दिया। सामाजिक परिवेश में अनेक वर्ण शब्द हैं और विभिन्न जातियों का अस्तित्व जन्म पर आधारित तथा परंपरागत व्यवसायों में संलग्नता के आधार पर माना जाता है। गैर-दलित जातियों को जन्म पर आधारित श्रेष्ठता मनु के सामाजिक विधान पर टिकी वर्ण-व्यवस्था से प्राप्त हुई। हीन माने गए कार्य करने वालों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी निम्न जातियों के साँचे में ढाल दिया गया। निम्न दर्जे का शारीरिक श्रम करने वाला यह वर्ग ही दबा, पिसा व मर्दित वर्ग रहा है। इसे ही शास्त्रसिद्ध सिद्धांतों के आधार पर मानवीय अधिकारों से वंचित, सामाजिक रूप से बहिष्कृत और अस्पृश्य भी कहा गया।

डॉ.अम्बेडकर के अनुसार, “दलित वर्ग स्वयं में ऐसे लोगों का समूह है, जो मुसलमानों से भिन्न एवं अलग है। यद्यपि उन्हें अछूत कहा जाता है किंतु वे हिंदू जाति के किसी भी अर्थ में अविभाज्य अंग नहीं है। वे न केवल उनसे अलग रहते हैं, अपितु उन्हें जो दर्जा प्राप्त है। वह भी भारत में अनेक, अन्य जातियाँ अत्यंत दयनीय एवं गुलामी की स्थिति में रह रही हैं, किंतु

⁸² समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन – प्र. सं. रजनी तिलक, पृ-16

दलित वर्गों की स्थिति बिलकुल भिन्न है। उन्हें मानवीय जीवन के लिए आवश्यक नागरिक अधिकारों से भी वंचित रखा जाता है।”⁸³

सावित्रीबाई फुले ने मराठी में दलित कविता की रचना की है। उनकी कविताओं का सम्पादन अनिता भारती ने किया है। वह अपनी कविता ‘शूद्र’ शब्द का अर्थ में लिखती हैं कि,

“ ‘शूद्र’ शब्द का
सही अर्थ है- नेटिव
आक्रामक शासकों ने
शूद्र का ठप्पा लगाया।
पराजित शूद्र हुए गुलाम
इराणी ब्राह्मणों के
और ब्राह्मण अंग्रेजी के,
तब बने उग्र शूद्र।”⁸⁴

सर्वप्रथम सावित्रीबाई फुले ने ही स्त्रियों के हक के लिए संघर्ष किया था। उन्होंने समाज में चली वर्णव्यवस्था के तहत जो नियम बनाया गया था, उसे तोड़ने की कोशिश की। उनकी इस कविता में भारतीय समाज में हुए वर्ण व्यवस्था के चतुर्थ वर्ण ‘शूद्र’ के अर्थ को समझाया गया है। किस प्रकार ‘शूद्र’ जो भारत के मूल निवासी थे, उन्हें विदेश से आये लोगों ने उन्हें गुलाम बना दिया। वे अपने ही देश में गुलामों का जीवन जीने के लिए मजबूर किया गया। ‘शूद्र’ को मनुस्मृति के आधार पर निम्न जाति में तोला गया। इस वर्ण व्यवस्था ने दलित पुरुषों के साथ तो अत्याचार और शोषण किया, पर दलित स्त्रियों की स्थिति के अत्याचार की

⁸³ बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर - संपूर्ण वांगमय, खंड 5, प्रकाशक डॉ. अम्बेडकर, प्रतिष्ठान - कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ-15

⁸⁴ सावित्रीबाई फुले की कविताएँ - सं. अनिता भारती, पृ-60

कोई सीमा ही नहीं थी। डॉ.अम्बेडकर का कहना है कि, “सरकार को लगता है कि, अछूत लोग गरीब, अल्पसंख्यक और और दरिद्र हैं इसलिए उनको अपने हक लेने की अक्ल नहीं है। इसलिए इन बातों से हमें कुछ सीखना चाहिए। अपने न्यायोचित हक हासिल करने के लिए हमें लड़ने के लिए तैयार रहना चाहिए।”⁸⁵

‘मनुस्मृति’ में कहा गया है कि, “ब्राह्मण संभवेनैव दैवानमपि दैवतम्”- अर्थात् ब्राह्मण जन्म मात्र से देवों का भी देव है। हिंदू वर्ण-व्यवस्था की सारी मान्यताएँ दलितों के विरोध में खड़ी हैं। इस वर्णाश्रम व्यवस्था ने दलितों पर द्विजों का इतना निर्णायक सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक वर्चस्व कायम कर दिया कि उसे दंड शक्ति की उतनी जरूरत ही नहीं रह गई। उल्लेखनीय है कि वर्णाश्रम व्यवस्था पुनर्जन्म और कर्म फल के तर्क पर आधारित है। इसके तर्कों के अनुसार पूर्व जन्म में किए गए कर्म के अनुसार ऊँची या नीची जातियों में जन्म होता है। दलितों के लिए निर्विकार भाव से सवर्णों की सेवा करना आवश्यक बना दिया गया यही उनकी मुक्ति का मार्ग था। ऐसे में यह समझना कोई मुश्किल काम नहीं रह जाता कि यह मुक्ति का मार्ग था या गुलामी का का।

आलोचक कँवल भारती का कहना है कि, “गाँवों में जो अचार-संहिता (कोड) सवर्णों ने दलितों पर लागू किया है, उसमें अन्य तमाम निषेधों के साथ एक निषेध यह भी है कि, यदि कोई दलित अछूत शिष्ट भाषा में सवर्ण से बात करता है, तो यह दण्डनीय अपराध होगा।”⁸⁶

दलितों की चेतना को नष्ट करने की सारी स्थितियाँ हिंदू वर्णवादी व्यवस्था ने बनायी और इतनी पैचीदा बनायी कि हजारों सालों तक दलितों को अपनी पहचान को ध्यान ही नहीं दिया। भारतीय वर्ण-व्यवस्था की सतही जानकारी रखने वाले भी यह जानते हैं और मानते हैं कि सोपानीकृत जाति व्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर सदियों से खड़ी दलित स्त्रियों की

⁸⁵ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा.. खंड 3- सं. एल.जी.मेश्राम ‘विमलकीर्ति’, पृ-324

⁸⁶ दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक –कँवल भारती, पृ-12

मुक्ति के लिए इसमें कोई जगह नहीं है। यही कारण है कि जब भी हमारे देश में किसी मुक्तिकामी विचारधारा का आविर्भाव हुआ, उसमें दलितों की भागीदारी सबसे ज्यादा हुई और सबसे ज्यादा विरोध हिंदू वर्णवादी, जातिवादी व्यवस्था का हुआ।

कवयित्री अनिता भारती अपनी कविता ‘जातिवाचक संज्ञा’ में लिखती हैं कि,

“छोटू कोई नाम नहीं
जातिवाचक संज्ञा है
जो हम पढ़ते हैं किताब में
और गढ़ लेते हैं एक शक्ल
मैले कपड़े, बिखरे चीकट बाल
फटे जूतों से झांकता
नन्हा-सा घायल अंगूठा
आँखों में जमी कीचड़-सी ढीठ
पसीने से लथपथ शरीर
पपड़ाये फीके होंठ”⁸⁷

जाति मनुष्य की पहचान बन गई है। कपड़े, वेश-भूषा के आधार पर लोगों की पहचान की जाती है। दलित पुरुष हो या स्त्री लोगों के मन में उसकी एक छवि निर्धारित हो गई है। कवयित्री ने अपनी इस कविता ‘जातिवाचक संज्ञा’ में एक दलित बच्चे की पहचान को दर्शाया है। जो अपनी शक्ल, कपड़े, बाल, जूतों, आँखें और शरीर से सवर्णों के लिए दलित की छवि को व्यक्त करता है।

⁸⁷ रखसाना का घर – अनिता भारती, पृ-15

3.2.2. सामाजिक क्रूरता

सदियों से स्त्रियों को सत्ता, संपत्ति और प्रतिष्ठा से वंचित रखा गया है। स्त्री इस व्यवस्था के विरुद्ध बगावत न करे। इसलिए यह व्यवस्था ईश्वर ने बनाई है। पत्नी के लिए पति ईश्वर का रूप होता है, ऐसा सिद्धांत प्रतिपादित किया गया। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि, सवर्ण स्त्री और दलित स्त्री में क्या अंतर है? यद्यपि विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक नियोगताओं से दोनों ही समान रूप से ग्रस्त रही है। दोनों ही वंचित, शोषित, पीड़ित और समाज के अत्याचार की शिकार रही है। सवर्ण और दलित दोनों स्त्रियों को सदियों से पराधीन रखा गया। दोनों के लिए कुछ समान ढंग की बंदिशें हैं लेकिन दोनों में फर्क है। पुरुष वर्ग के अधीन होने के बावजूद एक द्विज स्त्री जहाँ वर्ण गर्व से आप्लावित होती है। वहीं अछूत स्त्री वर्ण ग्लानि से पीड़ित। इस प्रकार दलित स्त्री को दोहरा अभिशाप झेलना पड़ता है। कवयित्री रजनी तिलक 'औरत-औरत में अंतर' कविता में लिखती है कि,

“एक भंगी तो दूसरी बामणी
एक डोम तो दूसरी ठकुरानी
दोनों सुबह से शाम खटती हैं
बेशक, एक दिन भर खेत में
दूसरी घर की चारदीवारी में
शाम को एक सोती है बिस्तर पे
तो दूसरी काँटों पर।
प्रसव पीड़ा झेलती फिर भी एक स्त्री
जन्मती है एक नाले के किनारे
दूसरी अस्पताल में
एक पायलट है

तो दूसरी शिक्षा से वंचित है,
एक सत्ताहिन है,
दूसरी निर्वस्त्र घुमाई जाती है।”⁸⁸

इस कविता में यह बताया गया है कि सभी औरतें एक जैसा दुःख दर्द झेलती हैं मगर जाति के नाम पर उनमें भेद हो जाता है। जाति के नाम पर ही वे उच्च और निम्न कहलाती हैं, मगर उनका शोषण समान रूप से ही होता है। समाज के नियम केवल स्त्रियों के लिए ही बनाया गया है। पुरुषों को हर तरह की स्वतंत्रता प्राप्त है। परंतु बेटी पैदा होते ही उसे तरह-तरह के नियम सुना दिये जाते हैं। मनुष्यता के धरातल पर क्यों दलित स्त्री को ही शोषण का शिकार बनाया जाता है?

स्त्री उपेक्षिता में सीमोन द बोउवार लिखती हैं “पुरुष प्रधान वातावरण में परवरिश होने के कारण वह अब यह महसूस करती हैं कि, प्रत्येक बात में पुरुष को ही पहल करनी चाहिए। अपने अधिकारों का त्याग तथा विलयन की चाह के बीच बँटी हुई, एक औरत निरंतर तनाव झेलती है और टूकड़ा-टूकड़ा जीती है।”⁸⁹ दलित स्त्रियों के प्रति हमारा व्यवहार गैर बराबरी पूर्ण इसलिए भी रहा है, क्योंकि अभी तक सामंती मानसिकता नहीं टूटी है। पारिवारिक स्तर पर आज भी उनके साथ सामंती किस्म का क्रूर व्यवहार होता है। इतना ही नहीं जो लोग मंचों पर नारी मुक्ति का प्रचार करते हैं। वही लोग अपने घरों में स्त्री के साथ बर्बरतापूर्ण, पक्षपातपूर्ण सामंती व्यवहार करते हैं। भारतीय समाज में कदम-कदम पर ऐसे तीखे विरोधाभास मौजूद है। जिनके कारण स्त्रियों के प्रति हमारा व्यवहार पक्षपातपूर्ण, हिंसक एवं उत्पीड़नकारी रहा है।

“सभी चाहते हैं मुझसे
त्याग, समर्पण
नहीं पसंद

⁸⁸ पदचाप-रजनी तिलक, पृ-26

⁸⁹ स्त्री उपेक्षिता – सीमोन द बोउवार, पृ-325

किसी को मेरी
आज़ाद अभिव्यक्ति
लगा देते हैं मुझ पर
आरोप सदियों पुराना
मेरे सिर पर-
बाँध दिया जाता है
होश संभालते ही
इज्जत का सेहरा”⁹⁰

रजत रानी ‘मीनू’ की कविता ‘मैं कौन हूँ?’ कहानी संग्रह में सामाजिक क्रूरता की चली आ रही उस परंपरा का उल्लेख किया है जिसमें दलित लड़की के रूप में जन्म लेने से ही घर-परिवार में एक नियम लगा दिया जाता है। इस कारण कवयित्री समाज से प्रश्न पूछती है ‘मैं कौन हूँ?’ मेरी पहचान क्या है? समाज के साथ-साथ घर-परिवार वाले मुझ पर हमेशा पाबंदी लगाते हैं। मेरे बोलने, हँसने, खाने, चलने इत्यादि हर चीज़ पर घरवालों की इज्जत को ध्यान में रख कर करना पड़ता है। सदियों से केवल स्त्रियों को ही इन नियमों का पालन करना पड़ रहा है। सभी की चाह है कि, दलित स्त्री त्याग, समर्पण करे परंतु आज़ादी की सांस न ले। जन्म से मृत्यु तक समाज और परिवार में एक गुलाम का जीवन यापन करे। उसके हाथों में परम्परा और सामाजिक कुरीतियों की बेड़ियाँ बाँध दी जाती हैं।

स्त्रियों को सदा शंकालु दृष्टि से देखना पुरुष की वर्चस्ववादी प्रवृत्ति का द्योतक है। आज भी स्त्री यदि सहेली या सहयोगी से मिलने चली जाए, तो पिता और भाई सैकड़ों सवाल पूछ कर उसका जीना हराम कर देते हैं। यह एक संकीर्ण और तानाशाही मानसिकता वाले समाज का परिचायक है। ऐसी प्रवृत्ति जड़ समाज को ब्राह्मणवादी सोच ने जड़ बना दिया है।

⁹⁰ पिता भी होते हैं माँ – रजत रानी ‘मीनू’, पृ-141

इन युगों में स्त्री की एक मनुष्य या व्यक्ति के रूप में पहचान अथवा आत्मसम्मान व अधिकार पर बहुत ही कम लिखा गया है। रजनी तिलक 'कासे कहूँ' कविता में लिखती हैं कि,

“कासे कहूँ
छुपाना चाहूँ तो
छुपती नहीं मेरी
अपलक नयनों की खामोशी
मुस्काराना चाहूँ तो
मुस्कराती नहीं मेरे
लुटे जज्बातों की ज़िंदगी
मेरी धड़कन पर
यूँ लगी पाबंदी।”⁹¹

कवयित्री लिखती है, जीवन के दुःख, दर्द को किसके साथ बाँटू, अपने दिल की बात को कहने के लिए डरती हूँ। दलित स्त्री अपने साथ हो रहे अत्याचार को सह जाती है, पर किसी के समक्ष मुँह खोलने से डरती है। अपने दुःखों को आँसुओं में बहा देती है। स्त्री होने को पाबंदी ऐसी लगाई गई है कि वह हँसना चाहती है परंतु, हँस भी नहीं पाती। जीवन के कष्टों को चुपचाप सहने की आदत हो चुकी है। दलित स्त्री होने के कारण न जाने बचपन से अब तक उसने न जाने कितनी समस्याओं का स्वयं ही लड़ा होगा। दलित स्त्री घर-परिवार के दायरे से बाहर निकलकर कैरियर की नई-नई ऊँचाइयों को छूना चाहती है। हाँलाकि उन उपलब्धियों में वह अपनी सभ्यता-संस्कृति के प्रति आस्था और घर-परिवार के बीच ही पूरी तरह जीने के सामाजिक सरोकार को भी बरकरार रखने की इच्छा रखती है।

⁹¹ हवा-सी बेचैन युवतियाँ – रजनी तिलक, पृ-74

3.2.3. पारम्परिक रुढ़ियाँ

जब बात दलित स्त्री की हो तो परम्परा, नैतिकता, परिवार व सामाजिक सरोकारों को लेकर उसे अलग ढंग से देखा जाता है। यह वर्ग सभी रुढ़ियों को अपना धरोहर बताते हुए व्यक्तिगत स्वतंत्रता को लक्ष्य बनाकर जीने का ढंग और शर्तें खुद निर्धारित नहीं कर सकती है। उसकी परिभाषा के अंतर्गत स्त्री स्वतंत्रता में देह की स्वतंत्रता या मुक्त-यौन की आकांक्षा की छूट के साथ-साथ अपनी देह और यौन-संबंधों के अतिरिक्त सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक मुद्दों व सरोकारों संबंधी सभी निर्णय खुद से लेने की छूट शामिल नहीं है।

पारम्परिक रुढ़ियों के कारण दलित स्त्री को स्त्री होने के नाते सदियों से चली आ रही रुढ़ियों को मानना पड़ता है, जो उसे केवल स्त्री होने का एहसास दिलाती रहती है। इन रुढ़ियों में स्त्रियों को बंधनों में बांध रखा है। सुशीला टाकभौरे अपनी कविता 'साहस' में लिखती हैं कि,

“चेतना है हमारे बीच
सदियों से,
पर
साहस का अभाव है।
रुढ़ियों को तोड़ने की बात
हम
करते अवश्य हैं,
पर उस लहर की तरह नहीं
जो सागरतट को
हर क्षण

काटती रहती है।”⁹²

कवयित्री पारम्परिक रुढ़ियों से मुक्त होने की कल्पना करती है। वह सदियों से नियम-कानून दलित स्त्रियों के लिए जो लगाया गया है, उसे तोड़ना चाहती हैं। परंतु इन रुढ़ियों में इतनी जकड़ चुकी हैं कि अब साहस ही नहीं हो पा रहा है कि उन्हें इन रुढ़ियों से मुक्त कर सके। दलित स्त्रियों ने अपने कदम को आगे बढ़ाया है, परंतु वह इस राह पर आगे नहीं जा पा रही हैं। कविता में वह आगे लिखती हैं,

“सागर बड़ा है
उसका तट बड़ा है,
उसी तरह
हमारी बेड़ियाँ
हमारी रुढ़ियाँ भी बड़ी हैं।
हमें
सागर के पल्लर की तरह
लाट की तरह,
हर क्षण
अपनी बेड़ियों को काटना है।”⁹³

यह कविता सकारात्मक भावना से लिखी गयी है। कवयित्री संपूर्ण दलित समाज की स्त्रियों को यह समझाती है कि हमारी रुढ़ियाँ बेशक पुरानी और मजबूत हैं। हमें अपने अधिकार और पहचान पाने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ेगा। हमें अपनी राह में सदैव चलना पड़ेगा। अपनी रुढ़ियों को तोड़ने के लिए और मुक्त होने के लिए निरंतर प्रयास करना पड़ेगा।

⁹² यह तुम भी जानो, तुमने उसे कब पहचाना- सुशीला टाकभौर, पृ-23

⁹³ यह तुम भी जानो, तुमने उसे कब पहचाना- सुशीला टाकभौर, पृ-23

सीमोन द बोउवार ने यह सवाल उठाया कि “क्यों स्त्री को धर्म, समाज रुढ़ियाँ और साहित्य शाश्वत नारीत्व के मिथक के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं? विश्व की प्रत्येक संस्कृति में या तो स्त्री को देवी के रूप में रखा गया या गुलाम की स्थिति में। अपनी इन स्थितियों को स्त्री ने संघर्ष स्वीकार किया, बल्कि बहुत सी जगहों पर वह सह अपराधी भी बनी। आत्महत्या का यह भाव स्त्री में न केवल अपने लिए रहा, बल्कि वह अपनी बेटी, बहू या अन्य स्त्रियों के प्रति भी आत्मपीड़ाजनित द्वेष रखती आई हैं, परिणाम स्वरूप उसकी अधीनस्थता और बढ़ती गई।”⁹⁴

दलित स्वयं भी हिंदुत्व से मुक्त नहीं हुए डॉ. अम्बेडकर पूर्वाग्रहों से मुक्त थे और उन्होंने महिलाओं के लिए दलित-दृष्टि के साथ सम्यक् दृष्टि अपनाई थी। वे महिलाओं को विकास का पैमाना मानते थे। इसलिए जहाँ तक दलित-दृष्टि का सवाल है। वह तो स्पष्ट है लेकिन उस पर अमल करने वालों की दृष्टि साफ नहीं है। दलित अब भी धार्मिक कट्टरता, मनुवादी आचरण संहिता तथा ब्राह्मणवादी शुचिता या पवित्रता के पोषक हैं। खासकर स्त्रियों के अधिकारों और आचरण के संदर्भ में। दरअसल वे स्वयं भी हिंदुत्व से मुक्त नहीं हुए हैं। उनकी स्त्री भी अन्य हिंदू स्त्रियों की तरह अपने पुरुषों की अनुगामिनी बनाई जा रही है। धर्म के मामले में भी और जाति के मामलों में भी।

“न जाने कब से
मैं रिवाजों की बुनियादी में
गिनी जा रही हूँ
परम्पराओं की बेड़ियों में
जकड़ी जा रही हूँ
क्यों नहीं मैं,

⁹⁴ स्त्री उपेक्षिता – सीमोन द बोउवार, पृ-52

रिवाजों की परिधि को छोटा
परम्पराओं के अस्तित्व को बौना
कर सकती ?”⁹⁵

कवयित्री भारतीय समाज की उस रुढ़ि के बारे में लिख रही है जो सदियों से स्त्रियों के लिए ही बनाया गया है। दलित स्त्री इन परम्परा की बेड़ियों में जकड़ गई है। जिससे निकलना कठिन है। अपने अस्तित्व को बाहर निकलने के लिए उसे इन रुढ़ियों से मुक्त होना पड़ेगा। परम्पराएँ समाज आधारित होती हैं और भारत का समाज जाति और धर्म आधारित है। जैसा कि परिवार और परम्परा से मुक्त स्त्री का एक सपना होगा, तभी वह मुक्त होगी। रुढ़ियाँ तो समाज में अक्सर जरूरत के अनुसार बनती-बिगड़ती रहती हैं पर परिवार की पिंजरा बहुत मजबूत है, क्योंकि वह केवल परम्परा, रुढ़ि, आचार संहिता पर ही आधारित नहीं है उसमें भावनाओं के टांके भी लगे हुए हैं। इसमें ममता, लिहाज व शर्म तो फेवीकोल की तरह है, जिन्हें हाथी भी शायद तोड़ने में सक्षम नहीं होता।

3.2.4. लिंगगत भेदभाव

विश्व में आज तक चाहे पश्चिम के विकसित राष्ट्र हो या भारत, लिंगगत भेदभाव की भावना हर कहीं मौजूद है। स्त्री किसी भी राष्ट्र, जाति, वर्ग, वर्ण, समुदाय, रंग की क्यों न हो उसकी स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता है। दलित स्त्रियों के साथ जिस प्रकार यौन उत्पीड़न, मानसिक, शारीरिक उत्पीड़न होता है। उससे उनकी सामाजिक स्थिति और लिंग भेद की राजनीति को समझ सकेंगे। दलित स्त्री समाज पर निरंतर बढ़ता जा रहा दमन, उत्पीड़न, अत्याचार, हत्याएँ, आत्महत्याएँ क्या यही सिद्ध नहीं करतीं कि आज भी पितृसत्तात्मक समाज का दृष्टिकोण उनके प्रति उत्पीड़ितों, उपनिवेशों जैसा ही है। “स्त्री-पुरुष के लिंगभेद पर चर्चा करने वाले स्त्री चिंतकों को इस पर ध्यान देना अनिवार्य है। क्यों औरत के

⁹⁵ हवा सी बेचैन युवतियाँ – रजनी तिलक, पृ-75

घरेलू काम में पुरुष हाथ नहीं बाँटता। इसका यह मतलब भी नहीं कि, आदमी घर में रहें, कार्य परस्त रहें। मगर स्त्री पक्षीय दृष्टि में कुटुम्ब को कायम रखने में उसके सदस्यों की आपसी सहानुभूति अनिवार्य है।”⁹⁶

जो समाज लिंग भेद-भाव की राजनीति में जकड़ा हुआ संवेदनहीन हिंसक होता है, वह कभी भी विकसित अथवा 21वीं शताब्दी का समाज नहीं हो सकता। इतना ही नहीं अमेरिका जैसे विकसित राष्ट्र में भी लिंगगत भेद-भाव (मोनिका लेविस्की विवाद) को देखा जा सकता है जहाँ नारीवादी आंदोलन इतने प्रखर हैं। प्रसिद्ध आलोचक राजेंद्र यादव लिखते हैं कि “आदमी ने यह मान लिया है कि, औरत शरीर है, सेक्स है, वहीं से उसकी स्वतंत्रता की चेतना और स्वच्छंद व्यवहार पैदा होता है। इसीलिए वह हर तरह से उसके सेक्स को नियंत्रित करना चाहता है।”⁹⁷ सुशीला टाकभौरै कहती हैं कि,

“वफा के नाम पर
अपने आप को
एक कुत्ता
कहा जा सकता है,
मगर कुतिया नहीं।
कुतिया शब्द सुनकर ही लगता है
यह एक गाली है,
क्या इसलिए कि वह
स्त्री वर्ग में आती है?
उसके चरित्र को, उसकी वफा को

⁹⁶ कविता का स्त्रीपक्ष- प्रमीला के.पी. पृ.178

⁹⁷ आदमी की निगाह में औरत- राजेंद्र यादव, पृ.15

अनेक बाँटों में तोला जाता है।”⁹⁸

कवयित्री इस कविता में लिखती है कि केवल लिंग के कारण मनुष्य में ही नहीं बल्कि जानवरों में भी भेदभाव किया जा रहा है। जिस प्रकार लोग पालतू जानवर कुत्ते को पालते हैं और वफादारी का प्रतीक ‘कुत्ता’ कहलाता है। केवल लिंग बदल जाने से वही जानवर ‘कुतिया’ गाली के रूप में प्रयोग किया जाता है। स्त्री और पुरुष के भेदभाव को जानवरों में भी तोलने लगे हैं। स्त्री के चरित्र को हमेशा अग्नि परीक्षा देने की जरूरत पड़ती है। वह अपनी ईमानदारी को पुरुष के प्रति रखती है। पर पुरुषों को इस बात में सदैव संदेह है। क्यों हमेशा से ही स्त्री को अपनी ईमानदारी को साबित करना पड़ता है? इसी बात को आगे समझाते हुए कवयित्री लिखती हैं,

“जब कुत्ता और कुतिया

एक दूसरे के पूरक हैं

तब

कुत्ते को वफादार

कहने के साथ ही

चरित्र के नाम पर

‘कुतिया’ गाली क्यों दी जाती है?

पुरुष प्रधान समाज में

चाहे समर्पण हो

या विद्रोह,

दुर्गुण का दोष नारी पर है!

पुरुष के दुर्गुणों पर हमेशा

⁹⁸ यह तुम भी जानो, तुमने उसे कब पहचाना, सुशीला टाकभौरे, पृ-30

मनु नाम की चादर डाली जाती है।”⁹⁹

स्त्री-पुरुष सिक्के के दो हिस्से हैं, जो आपस में एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है। परंतु यह बात पुरुषों के समझ से परे है। वह यह बात भूल जाते हैं कि स्त्री ने ही उन्हें जन्म दिया है। समाज का तो नियम ही यह बन गया है कि प्रधान कहलाने का हक केवल पुरुष को है स्त्री को नहीं। दलित स्त्री होने के नाते समाज की सभी गंदगियों की जिम्मेदारी उसकी है। कभी-भी उसके त्याग, प्रेम, ममता की सराहना नहीं की जाती है, बल्कि सभी गलती स्त्रियों के ऊपर डाल दी जाती है। पुरुष का व्यवहार मनुस्मृति की देन है। पुरुष कभी कोई गलती नहीं कर सकता है क्योंकि वह लिंग से पुरुष कहलाता है। कवयित्रियों के सोचने, रचने के तरीकों पर, उनकी दलित स्त्रीवादी दृष्टि पर जो तीखे आक्रमण हो रहे हैं। उनके पीछे भी लिंग भेद काम कर रही है। “यह लिंग-भेद सदियों से उसी प्रकार काम कर रहा है जैसे भारतीय समाज में जातिभेद, पश्चिम में रंगभेद, वर्ग भेद काम कर रहा है। अभी इस लिंग भेद की राजनीति के खिलाफ औरतों ने आवाज़ उठाया है। उस हाशिये कृत संसार को छिन्न-भिन्न करना है।”¹⁰⁰

पुरुष आलोचक कवि या लेखकों ने स्त्री मुक्ति के लिए बहुत कुछ कहा और लिखा है परंतु सही अर्थ में पुरुष की निगाहों में एक स्त्री केवल एक स्त्री ही है। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता लिखती हैं, “जब भी स्त्री-मुक्ति का सवाल उठाया जाता है, प्रायः पुरुष, खासकर कथित बुद्धिजीवी या अर्ध-पढ़ित पुरुष समाज दुविधाग्रस्त हो उठता है। एक तरफ वह समाज के सामने स्त्री-मुक्ति का समर्थक दिखना चाहता है, अन्यथा वह अमानवीय या पिछड़ा कहलाएगा, दूसरी तरफ उसे खुद अपने बिखरने का डर भी सताता है, क्योंकि स्त्री का

⁹⁹यह तुम भी जानो, तुमने उसे कब पहचाना- सुशीला टाकभौरे, पृ-30

¹⁰⁰ नारीवादी विमर्श- राकेश कुमार, पृ-30

इस्तेमाल वह सदियों से एक सेविका या दासी के रूप में करता आया है।”¹⁰¹ अनिता भारती अपनी कविता ‘हमने देखा है’ में लिखती हैं,

“जब इस देश की
गरीब दलित आदिवासी
बच्चियों का जीवन
यौन-उत्पीड़न के नाम पर
होम हो जाता हो”¹⁰²

कवयित्री दलित स्त्री पर होने वाली लिंगगत भेदभाव जो शारीरिक रूप से उनके साथ शोषण किया जाता है। लड़कियों की उम्र नहीं देखी जाती है, उनका बचपन छीन लिया जाता है। यौन-उत्पीड़न का शिकार ज्यादातर गरीब, दलित और आदिवासी स्त्रियों को ही होना पड़ता है। भारतीय समाज में पुरुष यह बात भूल जाते हैं कि उनका वजूद स्त्री के होने पर ही निर्भर करता है। पुरुषों की मानसिकता में स्त्री को गुलाम के रूप में इस्तेमाल करना है। घरेलू मामले में वह उस पर पूरी तरह आश्रित है। डॉ. अम्बेडकर का कहना है कि “उन्हें पुरुषों की तरह सार्वजनिक जीवन में आना चाहिए। पुरुष वर्ग से यदि नारी वर्ग पिछड़ गया तो किसी भी समाज का उत्थान नहीं होगा। गाड़ी का एक पहिया यदि कमजोर हो तो गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती। इसलिए नारियों को अब पुरुषों से कंधे से कंधा मिलकर चलना चाहिए जिससे हम अपनी आजादी को जल्दी से जल्दी हासिल कर पाएँगे।”¹⁰³

यह कहना ज्यादा उचित होगा कि वह घर के मोर्चे पर स्त्री पर सब कुछ छोड़कर निश्चित रहता है लेकिन इस सत्य को मन ही मन स्वीकार करने के बावजूद पुरुष का अहं स्त्री की महत्ता को स्वीकार करना नहीं चाहता और उसे अक्षम मानकर चलता है। वह अच्छी तरह

¹⁰¹ स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास – रमणिका गुप्ता, पृ-126-127

¹⁰² रखसाना का घर – अनिता भारती, पृ-43

¹⁰³ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा... खंड 3- सं. एल.जी.मेश्राम ‘विमलकीर्ति’, पृ-351

जानता है स्त्रियाँ बाहर के काम करते हुए घर भी कुशलता से संभाल लेती हैं, जबकि पुरुष केवल एक ही मोर्चा संभालता है। प्रसिद्ध आलोचक राजेंद्र यादव लिखते हैं कि, “आदमी ने यह मान लिया है कि औरत शरीर है, सेक्स है, वहीं से उसकी स्वतंत्रता की चेतना और स्वच्छंद व्यवहार पैदा होते हैं। इसीलिए वह हर तरह से उसके सेक्स को नियंत्रित करना चाहता है।”¹⁰⁴

जिस लिंगगत भेदभाव की बात हम कर रहे हैं जो दलित समाज की एक महत्वपूर्ण समस्या बन गई है। वहीं डॉ. अम्बेडकर इस भेदभाव को नहीं मानते थे। उनके जीवन में उनकी पत्नी का महत्वपूर्ण योगदान है। इसी संदर्भ में अनिता भारती लिखती हैं “रमाबाई दलितों के महानायक डॉ. अम्बेडकर नामक विशाल वृक्ष की मजबूत जड़ थी, जो आंधी-तुफानों से भरे संघर्षपूर्ण दिनों में उन्हें अविचल रूप में थामें मजबूती से खड़ी रही। रमाबाई के मूक बलिदान ने दलित आंदोलनों में रक्त प्रवाह का कार्य किया है। रमाबाई और डॉ. अम्बेडकर का जीवन आदर्श दांपत्य जीवन तो नहीं पर समझदार पति-पत्नी का जीवन तो अवश्य ही कहा जा सकता है।”¹⁰⁵

दलित साहित्य की नींव डॉ. अम्बेडकर के विचार-धाराओं पर रखा गया है। परंतु दलित समाज के पुरुषों ने अनेक जीवन से कोई विचार नहीं लिया। डॉ. अम्बेडकर ने जब स्वयं स्त्री-पुरुष में कोई भेदभाव नहीं किया। अपनी पत्नी को वह सम्मान दिया, जिसकी वह हकदार थीं। दलित पुरुषों को डॉ. अम्बेडकर के विचारों के साथ-साथ उनके जीवन यापन और उनके गुणों को भी अपने जीवन का आदर्श बनाना चाहिए था। “वर्चस्व को छुपाकर, प्यार और परिवार के नाम पर स्त्रियों की गुलामी जारी है। आपसी अभाव में उनका शोषण हो रहा है। इसलिए स्त्रियों की जागरूकता नए आयामों तक पहुँचाने के लिए स्त्री चिंतन सचेत है।”¹⁰⁶

¹⁰⁴ आदमी की निगाह में औरत – राजेंद्र यादव, पृ-15

¹⁰⁵ समकालीन नारीवाद और दलित स्त्री का प्रतिरोध-अनिता भारती, पृ-254

¹⁰⁶ कविता का स्त्रीपक्ष- प्रमीला के.पी. पृ. 180

3.2.5. पितृसत्तात्मक व्यवस्था

पितृसत्तात्मक समाज में चाहे सवर्ण स्त्री हो या दलित स्त्री दोनों को अपने निश्चित साँचों में ढलने के लिए बाध्य किया जाता है। उन्हें निर्धारित भूमिकाएँ निभाने, उसके अनुरूप चलने के लिए निर्देशित करते हैं। पितृसत्तात्मक समाज दलित स्त्रियों को लिंग भेद की राजनीति के तहत उन्हें निश्चित साँचों, खाँचों में ढालने के लिए अनुकूलित करता रहता है। पितृसत्तात्मक समाज का यही दृष्टि रहती है कि वह स्त्री को किसी न किसी तरह दबाकर नियंत्रण में रख सके। रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि, “पितृसत्ता ने स्त्री के लिए जहाँ एक तरफ सारे पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक मानदंड धर्म और जाति की आड़ में ही तय किए हैं, जो यथास्थिति के समर्थक हैं, तो उसने परिवार के रूप में भी एक पूरा-का-पूरा ढाँचा तैयार कर दिया है, जो पितृसत्ता के अधिकारों की रक्षा करता है और स्त्री को जीवन-पर्याप्त गुलाम बनाए रखता है।”¹⁰⁷ यही दलित स्त्री की सच्चाई है। रजनी तिलक अपनी कविता ‘एकल माँ’ में लिखती हैं

“तुम एकल माँ की बेटियों
निखरो.....संभलो....जमाने को समझो
स्त्रीवाद नहीं है ‘मात्र’ ‘स्त्री’ होने में
वह उत्पीड़न-पीड़ा अकेलेपन की
दीवारों को तोड़कर, जहाँ जायेगा
पितृसत्ता की ताकत को भेदेगा।”¹⁰⁸

हिंदी दलित कविता का संघर्ष पुराना है, परंतु उसमें स्त्री चेतना अभिव्यक्ति का समावेश होना, उसे स्वीकार करना अभी बाकी है। इस कविता में दलित स्त्रियों के सवाल, परिस्थितियाँ, जिंदगी, जाति व्यवस्था और पितृसत्ता के ढाँचे को तोड़ने की प्रेरणा दे रही है।

¹⁰⁷ स्त्री मुक्ति, संघर्ष और इतिहास, रमणिका गुप्ता, पृ-48

¹⁰⁸ हवा सी बेचैन युवतियाँ – रजनी तिलक, पृ-49

स्त्री को हर जगह इस व्यवस्था के कारण ही हर समस्या का सामना करना पड़ता है। बचपन से या यूँ कहें तो बेटी जन्म लेते ही, पितृसत्ता का भार ढोकर बड़ी होती है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री जीवन के उत्कर्ष और अपकर्ष की वह बोलती कहानी है जो सदियों से इतिहास को झोकझरती रही है। जिसके आवरण में मानव सभ्यता का अर्द्धांश अनवरत शोषण से उत्पीड़ित अपना मुँह छिपाए पड़ा है। स्त्री की यह कहानी ही वस्तुतः किसी भी सभ्यता की कहानी है, जिसे उपेक्षित कर देने पर उस सभ्यता का सही मूल्यांकन सम्भव नहीं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पति सिर्फ पत्नी का ही नहीं, बल्कि पुत्र-पुत्री व परिवार का भी भाग्य-विधाता होता है। जिसकी इच्छा पर ही जीना-मरना निर्भर करता है।

रजत रानी 'मीनू' की कहानी 'सुनीता' में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का एक उदाहरण देखने को मिलता है। सुनीता जो कहानी की नायिका है वह जो सोचती है, उसे बोलती है। उसके लिए डटकर मुकाबला भी करती है। परंतु बचपन से ही उसके पिता को उसके पढ़ने लिखने से आपत्ति थी। पिताजी ने तीखे स्वर में डाँटा "ए सुनीता, कान खोल के सुन! हमें तुम्हें कलट्टर-वलट्टर तो बनाना है नहीं, और न ही तू बन पाएगी। फिर तेरी पढ़ाई लल्ला से बढ़कर तो नहीं है, वैसे भी तू पराये घर जाएगी। तो चिट्ठी पत्री लायक थोड़ी-सी पढ़ जा। वंश तो लल्ला ही चलाएगा।"¹⁰⁹

कहानी में सुनीता को केवल 'लड़की' होने के कारण ही यह सब सुनना पड़ता है। समाज में जहाँ एक तरफ पुरुषों के लिए एक नियम तो दूसरी तरफ स्त्रियों के लिए दूसरे नियम क्यों? जब दोनों एक ही माँ के पेट से निकलते हैं, तो पालन-पोषण में भेदभाव क्यों? इन सवालों का जवाब जरूर पुस्तकों में मिल सकता है, परंतु सच्चाई आज भी समाज में बना हुई है।

¹⁰⁹ हम कौन है? -रजत रानी 'मीनू', पृ-29

हालांकि, स्त्री की असमानता का मूल मंत्र धर्म ही है। पर यह समझना भी जरूरी है कि धर्म व जाति से पितृसत्ता का रिश्ता चोली-दामन का रहा है। परम्परा, संस्कार और सामाजिक राजनैतिक व्यवहार धर्म और जाति की देन हैं। ये विशुद्ध पितृसत्ता के पोषण का औजार भी हैं। सुशीला टाकभौरै अपनी कविता 'आस की पीड़ा' में लिखती हैं कि,

“नहीं लौटायेंगे ये

अगला दिन,

अगला जन्म,

मोक्ष के नाम पर

सब खो जायेगा।

बेटी झील-सी आँखों से

राह तकती रहेगी!

फिर भी

परिंदों की तरह

पंख फड़फड़ायेंगे

स्वप्न

एक बेटा और चार बेटे।”¹¹⁰

कविता में पुत्र चाह की बात की गई है। समाज में जब भी कोई स्त्री गर्भवती होती है तब पूरा का पूरा परिवार यही कहा करता है कि, 'बेटा' ही जन्म ले। बेटी को परिवार में बोझ समझा जाता है, जो केवल इसलिए जन्म लेती है ताकि, वह एक दिन ब्याह कर दूसरे घर जा सके। इस मानसिकता के लोग तो बेटी को जन्म लेते ही या तो मार देते हैं या कूड़े-कचड़े में फेंक देते हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में बेटियों के लिए कोई स्थान नहीं है। बेटियाँ पैदा न हो

¹¹⁰ यह तुम भी जानो, तुमने उसे कब पहचाना, सुशीला टाकभौरै, पृ-64

इसलिए कई व्रत, तप भी परिवार वाले करते हैं। यह मानसिकता सदियों पहले भी थी और अब तक भी विद्यमान है। स्त्री हो या पुरुष दोनों ही इस व्यवस्था को स्वीकार कर चुके हैं। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि, “दरअसल पितृसत्तात्मकता से न तो सवर्ण मुक्त हैं, न ही दलित। आश्चर्य तो तब होता है, जब हम दुनिया भर में स्त्री की पितृसत्ता के दृष्टिकोण के समर्थन में खड़ा पाते हैं। बहुत कम स्त्रियाँ हैं, जो स्त्री होने को हीनता का पर्याय नहीं मानती या अगले जन्म में पुरुष बनना नहीं चाहती। ‘अगले जनम मोहें बिटिया न कीज्यो’, जैसे लोकगीत घर-घर में आज भी गाए जाते हैं।”¹¹¹

धीरे-धीरे स्त्रियाँ पितृसत्तात्मक नियमों, कानूनों, सिद्धांतों, जीवन मूल्यों को झेलते-झेलते इतनी अभ्यस्त हो गई हैं कि उसे निभाना अपना धर्म, कर्तव्य समझ लिया है। अर्थात् उत्पीड़न के नियमों में वह इतनी ढाल दी गई हैं कि अब उन नियमों से बाहर निकल ही नहीं पा रही हैं। उन पितृक सांचों को तोड़ना जैसे उनके लिए जबर्दस्ती भय, खतरा, असुरक्षा पैदा करता है। रजत रानी ‘मीनू’ अपनी कविता ‘मेरा दर्द’ में लिखती हैं,

“मैं भी तड़पी हूँ

अपमानित हुई हूँ

मर-मर कर जी हूँ

पर

मेरी आवाज़ नहीं सुनी थी किसी ने

दम घुट रहा है

सदियों से

मुझ जैसी बालाओं का।

क्यों उदासीन है व्यवस्था मेरे प्रति?”¹¹²

¹¹¹ स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास – रमणिका गुप्ता, प्र-52

¹¹² पिता भी तो होते हैं माँ – रजत रानी ‘मीनू’, पृ-47

दलित स्त्री इन बंधनों में तड़प रही है। उस पर हुए शोषण के प्रति किसी का ध्यान ही नहीं जा रहा है। हर कोई उसे केवल उपभोग की वस्तु मात्र ही समझता है। यह व्यवस्था केवल पुरुष के हित में ही सोच सकती है। स्त्रियों के लिए सहानुभूति शेष मात्र भी नहीं बची है। अनामिका पितृसत्तात्मक व्यवस्था के संदर्भ में लिखती हैं “स्त्री-आंदोलन पितृसत्तात्मक समाज में पल रहे स्त्री-संबंधी पूर्वाग्रहों से पुरुषों की क्रमिक मुक्ति को असंभव नहीं मानता। दोषी पुरुष नहीं, वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था है, जो जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुषों को लगातार एक ही पाठ पढ़ाती हैं कि, स्त्रियाँ उनसे हीनतर हैं, उनके भोग का साधन-मात्र।”¹¹³

दलित स्त्रियों को उपनिवेश बना कर रखना, पितृ समाज की नैतिक मर्यादा और वर्चस्व से जुड़ा हुआ है। पितृ नैतिकता सदा यही कहती आई है कि ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी की अनिवार्य है, अर्थात् इन पर अपना नियंत्रण, वर्चस्व बनाए रखना आवश्यक है। लिंग भेद में जकड़े हुए दलित स्त्री विरोधी समाज की यही तो भयानक विडम्बना एवं वास्तविकता है। जिसका सामना तक करने का साहस पितृसत्तात्मक समाज के पास नहीं है। अब महत्वपूर्ण बात यह है कि दलित स्त्रियों ने स्वत्वाधिकारों की चेतना के विकास के लिए सदियों पुरानी तड़प से भरी हुई चुप्पी को वाणी दी है।

3.2.6. दैहिक शोषण

स्त्रियों को अपनी सम्पत्ति समझना पुरुष प्रधान समाज की बहुत बड़ी गलती है। पर इस गलती के कारण ही सदियों से पुरुषों ने उनका दैहिक शोषण किया है। स्त्री को एक वस्तु के रूप में इस्तेमाल करना ही उनका एक मात्र मकसद है। सवर्ण पुरुषों के लिए दलित स्त्री के साथ बलात्कार करना बहुत ही सरल काम है।

दलित स्त्री की गरीबी और लाचारी का फायदा उठाया जाता है। दलित कवयित्रियों और लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में दैहिक शोषण की समस्याओं को उजागर किया है।

¹¹³ स्त्रीत्व का मानचित्र-अनामिका, पृ-11

यौन उत्पीड़न द्वारा लड़की हर पल घुट-घुट कर अपमानित होती रहती है। कार्यकर्ताओं में भी यौन उत्पीड़न की घटनाएँ प्रकाश में आती रहती हैं। आजकल बाहर तो बाहर, घर के निकट रिश्तेदारों, पड़ोसियों द्वारा भी लड़कियों का यौन उत्पीड़न किया जा रहा है। ऐसे में यदि लड़की उनके अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाती है, तो उसे पारिवारिक विरोध, सामाजिक उपेक्षा, आर्थिक हानि तथा चरित्र हनन जैसे दुःसाध्य स्थितियों से गुजरना पड़ता है। इसके साथ ही भीषण मानसिक यातना भी सहनी पड़ती है। यौन उत्पीड़न स्त्री के कार्य करने तथा समानता के अधिकार का भी हनन करता है। यौन उत्पीड़न से ग्रस्त स्त्री भीषण मानसिक यातना से गुजरती है। इसके विषय में गंभीरता से सोचने की जरूरत है।

रजनी अनुरागी ने अपनी कविता 'महानगरीय सड़क' में इस समस्या को उजागर किया है। वे लिखती हैं-

“साँझ होते ही जब पसर जाता है अंधेरा
भय की आगोश में खो जाती हैं सड़कें
तो ऐसे में खूँखार चमचमाती आँखें
लपलपाती जीभें और नोचने को आतुर पंजे लिए
घूमते हैं गिद्ध सड़कों पर।”¹¹⁴

कविता की इन पंक्तियों में महानगरीय सड़क का उदाहरण दिया गया है। इस सड़कों में लड़कियों की सुरक्षा की जो समस्या प्रस्तुत की गई है, वह हमारे समाज पर एक कलंक मात्र है। जब कोई लड़की घर से निकल कर स्कूल, कॉलेज या काम पर जाती है, तो उसके घर से बाहर कदम निकालते ही उसके मन में एक डर बैठ जाता है। जो घर वापस आने तक बना रहता है। उसकी इस समस्या का कोई हल ही नहीं है। जब तक समाज में पुरुष के रूप में जानवर स्त्रियों को नोचने के लिए बैठे हुए हैं। भारत जैसे देश में जहाँ उसकी पहचान सभ्यता,

¹¹⁴ समकालीन भारतीय महिला लेखन- रजनी तिलक, पृ. 40

संस्कृति, व्यवहार के लिए पूरे विश्व में जानी जाती है। इस देश की सच्चाई कुछ ओर ही है, जो रात के अंधेरों में सामने आती है। राजेंद्र यादव अपनी पुस्तक ‘आदमी की निगाह में औरत’ में लिखते हैं “हम पुरुष को उसकी सम्पूर्णता में देखते हैं, उसकी कमियों और कमजोरियों के साथ उसका मूल्यांकन करते हैं। नारी को हम संपूर्णता में नहीं देख पाते। कमर से ऊपर की नारी महिमामयी है, करुणा-भरी है, सुंदरता और शील की देवी है, वह कविता है, संगीत है, अध्यात्म है और अमूर्त है। कमर से नीचे वह काम-कंदरा है, कुत्सित और अश्लील है, ध्वंसकारिणी है, राक्षसी है और सब मिलाकर नरक है।”¹¹⁵ पुरुषवादी सोच का सही उदाहरण राजेंद्र यादव ने दिया है। सवर्ण पुरुष हो या दलित पुरुष दोनों की निगाहों में स्त्री की स्थिति एक समान है। रजनी अनुरागी अपनी कविता में आगे लिखती हैं,

“और ऐसी सड़कों से

कोई गिद्ध जब ले उड़ता है किसी लड़की को

तो उसके बाद कोई लड़की

लड़की नहीं रहती

सड़क हो जाती है

सपाट, स्याह और बेजान।”¹¹⁶

इन पंक्तियों में उस समय की परिस्थितियों के बारे में बताया गया है। जब एक लड़की के साथ बलात्कार हो चुका होता है। समाज में जब पुरुष बलात्कार करता है, तब उस स्त्री का धर्म, जाति या वर्ग नहीं देखता। यह वही पुरुष है जो समाज में धर्म और जाति को लेकर दुहाई देता फिरता है। वही रात को दलित स्त्री के साथ बलात्कार करने से पीछे नहीं हटता। दलित स्त्रियों के साथ जब बलात्कार होता है, तब उसे शारीरिक और मानसिक शोषण का शिकार होना पड़ता है। दोनों ही स्थिति में स्त्रियों को पिसना पड़ता है। दैहिक शोषण के बाद समाज

¹¹⁵ आदमी की निगाह में औरत – राजेंद्र यादव, पृ-14

¹¹⁶ आदमी की निगाह में औरत – राजेंद्र यादव, पृ-14

उस स्त्री को सामान्य स्त्री के रूप में नहीं देखता है। जब बलात्कार के समय पुरुष यह सब नहीं सोचता तब क्यों स्त्रियों पर ही सवाल उठाया जाता है। कविता में 'सड़क' को माध्यम बनाकर कवयित्री ने इस मुद्दे को उठाया है। जिस सड़क पर बलात्कार किया जाता है। उसी सड़क की तनहाई की तरह स्त्री भी अकेली रह जाती है। रमणिका गुप्ता लिखती हैं "एक गरीब खटने-कमाने वाली औरत की मुक्ति की प्रथम शर्त होती है उसकी भूख से मुक्ति, जिसके लिए इसे चाहिए रोजगार। यह स्त्री अपनी देह का उपयोग अपने मन से तो कर सकती है, किंतु उसकी देह पति के अतिरिक्त दबंगों व उच्च जातीय लोगों के अधीन भी होती है। इसलिए वह पति के अतिरिक्त दूसरे मर्दों की हिंसा का शिकार भी बनती है, एक दलित मजदूर औरत के लिए तिहरी मुक्ति चाहिए- स्त्रीपन, गरीबी और जाति की मुक्ति।"¹¹⁷ रजनी तिलक 'ए लड़की' कविता में लिखती हैं-

“ए लड़की
अंधेरे में आँख फाड़कर चल
बलात्कारी
घूम रहे हैं अंधेरे में
वे शानों-शौकत में हैं
कारों व क्वालिशों में हैं
सड़के उनकी हैं
गाड़ियाँ उनकी हैं
उनकी जिपें खुली हुई हैं।”¹¹⁸

यह कविता नारी जाति की युवा पीढ़ी को सतर्क करने वाली कविता है। समाज में स्त्रियों के साथ खुले आम हिंसा, बलात्कार की घटनाएँ घटती रहती हैं। जो स्त्री-जीवन को पूरी

¹¹⁷ स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास - रमणिका गुप्ता, पृ-131-132

¹¹⁸ हवा सी बेचैन युवतियाँ- रजनी तिलक, पृ-19

तरह ध्वस्त कर देती हैं। ऐसी स्थिति से बचने के लिए सबल बनकर सतर्क रहने की आवश्यकता है। हर घर और हर परिवार में लड़कियों की इज्जत-अस्मिता असुरक्षित है। पुरुष दल और बल से स्त्रियों का दैहिक और मानसिक शोषण करते हैं। नारी मुक्ति के लिए ऐसी स्थितियों को बदलना जरूरी है। इसी तरह स्त्रियों की आज़ादी के लिए रजनी तिलक ने अपनी कविताओं में अनेक प्रश्न उठाए हैं। सीमोन द बोउवार लिखती हैं “प्रकृति ने स्त्री शरीर को इस प्रकार गठित किया है कि सभी दर्द और दुःख उसके ही भाग्य में है।”¹¹⁹

बलात्कार स्त्री के प्रति पुरुष द्वारा की गई यौन हिंसा ही है। जो स्त्रियों की असहमति अथवा जबरन सहमति से की जाती है। यह दुष्कर्म स्त्री को सबक सिखाने, दंडित करने या अपनी कामोत्तेजना को जबरन शांत करने के लिए पुरुष द्वारा किया जाता है। आजकल बलात्कार की घटनाएँ रोज ही प्रकाश में आ रही हैं। जिससे उनकी तीव्रता का अनुभव किया जा सकता है। ‘दिल्ली में बलात्कार’ के प्रकाशित आँकड़े दर्शाते हैं कि स्त्री के सामूहिक बलात्कार जैसी घटनाएँ अधिक बढ़ गई है। इस संदर्भ में रजत रानी ‘मीनू’ अपनी कविता ‘चीख’ में लिखती हैं-

“सुनाई देती है
अगली चीख
सामूहिक बलात्कार की, शिकार
दलित स्त्री की
सुनाई देती है चीखा।”¹²⁰

बलात्कार करना बलात्कारियों के लिए बहुत आसान सी बात हो गई है। अगर अकेला कम पड़ जाए तो सामूहिक बलात्कार करने लगे हैं। इन लोगों की मनुष्यता तो पहले ही नहीं थी। पर अब दया नाम की चीज़ भी नहीं बची है। एक शरीर को जानवरों की तरह

¹¹⁹ स्त्री उपेक्षिता – सीमोन बोवार, पृ-124

¹²⁰ पिता भी तो होते हैं माँ- रजत रानी ‘मीनू’, पृ-75

पाँच-छः लोग मिलकर नोचते हैं। लड़की चीखती-चिल्लाती है, परंतु उस पर कोई नहीं तरस खाता। समाज में बलात्कारी पुरुष का रहना कोई शर्म की बात नहीं है, परंतु उस दर्द और दुःख से गुजरती लड़की के लिए समाज में जीना मुश्किल हो जाता है। पहले तो स्त्रियाँ इस प्रकार की दुर्घटना को चरित्र हनन की घटना मानकर छिपा लिया करती थीं। उनके परिवार वाले भी इस कारण उसे मानसिक यातना देते थे कि ‘हाय तू तभी मर क्यों न गई’। लेकिन अब स्त्रियाँ बलात्कार की घटना को दुर्घटना से जोड़कर देखने लगी हैं क्योंकि, शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण, आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होने के कारण उनका आत्मविश्वास बढ़ा है।

अनिता भारती बुद्ध काल में स्त्रियों को प्रेरणा देने वाली भिक्षुणियों के बारे में लिखती हैं “बौद्ध काल में स्त्रियाँ ज्ञान अर्जित करती, गली-गली घूमती हुई ज्ञान बांटती, भिक्षुणी संघ स्थापित कर रही थीं। उन्होंने समाज द्वारा जबर्दस्ती लादी गई जिम्मेदारियों को उतार फेंका। वे अपनी बात बेबाक और स्वतंत्र रूप से कहती हुई, तथाकथित स्त्री-शोषण की दीवार को तोड़ धराशायी कर देती हैं, वे समझ जाती हैं ‘देह’ स्त्री के शोषण का आधार है और जाति-व्यवस्था, परिवार व पुरुष-सत्तात्मक समाज उसका कारण है।”¹²¹

दैहिक शोषण के अंतर्गत बलात्कार के साथ-साथ दलित स्त्रियों पर अपने ही परिवार या पति द्वारा मार-पीट को भी शामिल किया जाता है। रजनी तिलक अपनी कविता ‘औरत-औरत में अंतर है’ में लिखती हैं-

“औरत औरत होती है,
उसका न कोई धर्म
न कोई जात होती है,
वह सुबह से शाम खटती है,
घर में मर्द से पिटती है

¹²¹ समकालीन नारीवाद और दलित स्त्री का प्रतिरोध – अनिता भारती, पृ-52

सड़क पर शोहदों से छिड़ती है।”¹²²

कविता की आरंभिक पंक्ति में यह बताया गया है कि स्त्री केवल स्त्री ही होती है। वह चाहे किसी भी राज्य, देश, रंग, जाति, धर्म या वर्ग की क्यों न हो। पुरुष के नज़र में वह एक स्त्री ही है। स्त्री के साथ जानवरों की तरह मारना-पीटना एक आम बात है। भारत में शायद ही ऐसा परिवार होगा, जिसने स्त्री को नीचा न दिखाया हो। स्त्री को अपने पैरों की जूती समझना पुरुष अपनी शान समझते हैं। दलित स्त्री समाज में सवर्ण जमींदारों, साहूकारों के हवस का शिकार होती है और अपने घर के पुरुषों द्वारा भी शोषण का शिकार बनती है।

दलित स्त्री चिंतन पुरुष प्रधान समाज की उस सोच को खारिज करता है। जिसमें स्त्री को मात्र देह ही समझा जाता है तथा स्त्री की चाहत भी सिर्फ पुरुष की देह ही मानी जाती है। भारत में पर्याप्त चर्चित रही ‘मनुस्मृति’ में मनु लिखते हैं-

“नैतां रुपं परीक्षते नानां वयीस संस्थितिः।

सुरुपं वा विरुपं वा पुमनिन्येव भुंजते॥”¹²³

अर्थात् स्त्री न तो रुप की परीक्षा करती है, न ही आयु देखती है। उसे न सुंदर चाहिए, न कुरूप। उसे तो बस किसी भी हाल में पुरुष चाहिए। मनुस्मृति की ये पंक्तियाँ स्पष्ट कर देती हैं कि समाज में स्त्री को मात्र देह ही समझा जाता है। जो उसे मनुष्य स्तर से गिराकर पशु-स्तर पर ले जाता है। स्त्री मात्र शरीर को एक हरा घाव मानने वाली अनामिका के अनुसार, “स्त्री के देह युग-युगांतर से उसके शोषण का प्राइम साइट रही है- मार-पीट, घसीट-घसीटी, गाली-गलौज, नोच-खसोट, यांत्रिक सम्भोग, विवाह के भीतर या उसके बाहर का सूक्ष्म यौन-शोषण, कभी गॉड फादर के रुप में, कभी सहकर्मी या अन्य हितैषी के रुपों में भी। इसलिए देह के प्रश्न पर हर स्त्री संशक रहती है।”¹²⁴

¹²² पदचाप – रजनी तिलक, पृ-39

¹²³ मनुस्मृति - श्री भागवतुला सुब्रह्मण्यम्, पृ-326

¹²⁴ स्त्री-मुक्ति, साझा चुल्हा- अनामिका पृ-149

बलात्कृत स्त्री जिस शारीरिक, मानसिक, सामाजिक पीड़ा को झेलती है उस दर्द को समझने की सख्त आवश्यकता है। बलात्कार को स्त्री चरित्र से न जोड़ा जाए तथा अपराधी को कठोर-से कठोरतम दंड दिया जाए, ताकि दूसरे पुरुष भी सावधान रहें। स्त्री को मानव समझा जाए, खिलौना नहीं।

3.2.7. पारिवारिक शोषण

समाज में परिवार को बहुत महत्व दिया गया है या दूसरी तरह से देखा जाए तो कई परिवारों का एक बड़ा समूह समाज कहलाता है। परिवार स्त्री-पुरुष दोनों के मिलने से बनता है। जब पुरुष अपने परिवार के लालन-पालन के लिए घर से बाहर नौकरी करने के लिए निकलता है। जिससे कि उसका और उसके परिवार का जीवनोपार्जन हो पाता है। वहीं दूसरी ओर स्त्री घर के अंदर रहकर गृहस्थी संभालती है। आज दलित स्त्री घर और बाहर दोनों जगह अपनी स्थिति को मजबूत बनाने का प्रयास कर रही है। कवयित्री हेमलता महेश्वरी अपनी कविता ‘स्मृतियाँ’ में लिखती हैं-

“बँधी सदा
खूँटे से
गले में
रस्सी डाले
लम्बी हो
चाहे कितनी
स्मृतियों को
फंदा बनते
देर नहीं लगती
पतंग होती हैं

स्मृतियाँ।”¹²⁵

दलित स्त्रियों को घर के चार दीवारों से बाहर जाने की अनुमति और काम करने की छूट जरूर मिलती है, परंतु परिवार के अंदर उसे दासी की तरह ही रहना पड़ता है। अपने ही पति के द्वार मारी-पीटी जाती है। दलित पुरुषों की मानसिकता भी सवर्ण पुरुषों से कम नहीं है। दलित पुरुष जब घर पर अपनी पत्नी पर अत्याचार करता है, तब शायद यह बात भूल जाता है कि जो सवर्ण समाज ने उनके साथ किया। वह वही घर पर अपनी पत्नी के साथ कर रहा है। “पुरुष समाज ने स्त्री को खूंटे से बांधने के लिए ही ब्याह का बंधन बनाया गया है। विवाह बंधन है और परिवार उसका पिंजरा है। उसी परिवार में पुरुष भी रहता है, लेकिन वह परिवार में कैद नहीं होता, जैसे स्त्री होती है। पुरुष परिवार से उतना नहीं बंधता, जितना कि स्त्री।”¹²⁶ दोनों के बंधने में अंतर है।

“ठीक कहा तुमने
हमारे पास है
बच्चे...घर...बर्तन...रसोई
अधूरी कहानियाँ
बिखरी कविताएँ
निराश पन्ने, कुंठित मन
तुम्हारे जूते जुर्राब बनियान
बच्चों की बर्दियाँ
होमवर्क... खिलौने
रोते जिद्दी बच्चे और तुम
हमे समय नहीं अपने लिए

¹²⁵ नील, नीले रंग के – हेमलता महेश्वरी, पृ-59

¹²⁶ स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास – रमणिका गुप्ता, पृ-117

सुबह का नाश्ता रात का खाना

दोपहर का लंचा”¹²⁷

रजनी तिलक अपनी इस कविता ‘मेरे भाई’ में यह बताती है कि किस प्रकार एक ही परिवार में स्त्री-पुरुष में भेदभाव किया जाता है। घर की पूरी जिम्मेदारी स्त्री के हाथों में होती है। फिर भी पुरुष अपना वर्चस्व साबित करने के लिए उस पर अत्याचार करता है। विवाह और परिवार की अवधारणा के मूल में दोहरी शोषण व्यवस्था निहित है- एक उसका यौन शोषण, दूसरा उसका आर्थिक इस्तेमाल व आर्थिक लाभ के लिए दोहन। वह परिवार की ऐसी सदस्य बन जाती है, जिसके किसी काम का कोई मोल नहीं है यानी उसकी सारी मेहनत, सारे काम उसके कर्तव्य हैं। उसकी कोख पर भी उसका अपना अधिकार नहीं होता। परिवार के सुविधानुसार बनाए नियमों का होता है। नैतिकता का नियम स्त्री अधिकारों के हनन का सबसे बड़ा हथकंडा है। परिवार की मर्यादा और इज्जत का बोझ अकेली औरत के कंधों पर इस कदर और इस हद तक लाद दिया जाता है कि वह सिर ही न उठा सके, बोल ही न पाए। परिवार एक सुरक्षा के नाम पर प्रश्न चिह्न है। सुरक्षा के नाम पर दीवारें इतनी ऊँची कर दी जाती हैं कि आकाश भी नज़र नहीं आता और इस छद्म सुरक्षा की कैद को वह मुक्ति मान बैठती है। सुशीला टाकभौरै की कविता ‘मेरी स्थिति’ में इस समस्या पर प्रकाश डाला गया है-

“आप मेरी सही स्थिति आँकिये

मुझे यूँ टुकड़ों में न बाँटिये

मैं एक औरत हूँ

सधवा-विधवा से परे

दो परिवारों की इज्जत के अलावा

मैं मैं हूँ

¹²⁷ हवा सी बेचैन युवतियाँ – रजनी तिलक, पृ-33

हाड़-मांस की जीवित भावना

एक मानस संसार, अपना एक अस्तित्व,

इसे यूँ न मिटाइये!”¹²⁸

दलित स्त्री अपनी वेदना को कविता में व्यक्त कर रही है। एक स्त्री होने को दर्द जो सदियों से वह झेलती आ रही है। विवाह के बाद उसे दो परिवारों के बारे में सोचना पड़ता है, जो उसका कर्तव्य, जिम्मेदारी है। विवाह के पहले अपने पिता की इज्जत और विवाह के बाद ससुर और पति की इज्जत को बनाए रखने का काम स्त्री का ही होता है। उसे एक दूसरी स्त्री अर्थात् उसकी सास करने के लिए प्रेरित भी करती है।

समाजों में जहाँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था है। पुरुष परिवार का महत्वपूर्ण व मुख्य कार्यकर्ता होता है। परिवार को नाम भी पुरुष से मिलता है। अतः परिवार में बेटे महत्वपूर्ण हो जाते हैं और बेटी का पालन-पोषण किसी और की अमानत की तरह किया जाता है। परिवार की मुख्यधारा से उसे कट जाना होता है। यह भावना लड़की के मन में जड़ विहीनता की दृढ़ करती है और आत्मविश्वास की कमी आती है।

धनंजय कीर ने अपनी पुस्तक में डॉ.अम्बेडकर द्वारा 1938 में विद्यार्थियों को एक सभा में बोला गये भाषण को लिखा है “परिवार नियोजन की जवाबदारी स्त्री-पुरुष दोनों की होती है। बच्चों का लालन-पालन हम अच्छी तरह कर सकते हैं। कम संतान होने पर स्त्रियाँ अपने शक्ति बाकी कामों में लगा सकती हैं।”¹²⁹ डॉ.अम्बेडकर एकमात्र ऐसे विश्वस्तरीय चिंतक हैं, जिन्होंने परिवार और समाज में स्त्री की स्थिति कैसे हो, इस पर गहन चिंतन मनन किया। पुरुषों के साथ स्त्री को भी समानता व स्वतंत्रता मिले। उसे सामाजिक आज़ादी के साथ आर्थिक आज़ादी भी प्राप्त हो। परिवार में उसका दर्जा पुरुष के समान हो। इसके लिए उन्होंने

¹²⁸ यह तुम भी जानो, तुमने उसे कब पहचाना, सुशीला टाकभौरे, पृ79

¹²⁹ लाईफ एंड मिशन - डॉ.अम्बेडकर

दलित, गैर दलित स्त्रियों को समाज परिवर्तन के आंदोलन में सक्रिय रूप से जोड़ने का आह्वान किया।

डॉ.अम्बेडकर ने दलित परिवार से अनुरोध किया कि वे अपने बच्चों खासकर लड़कियों की शादी बचपन में न करें। साथ ही उन्होंने विवाह जैसे सवाल पर भी बातचीत की। पत्नी कैसे होनी चाहिए? इस बारे में पुरुषों का विचार जाना जाता है। वैसे ही पति कैसा हो के बारे में पत्नी का मन जान लेना जरूरी है। स्त्री एक व्यक्ति है और उसे भी स्वतंत्रता की सुविधा होनी चाहिए। भारत वर्ष में खुशहाल परिवार के लिए प्रचलित परिवार नियोजन का नारा आजादी के बाद का है, परंतु बाबा साहेब ने स्त्री के संदर्भ में नियोजन के फायदे बहुत पहले ही देख लिये थे। वे यह भी जानते थे कि इन सबके लिए देश के युवा वर्ग को समझाने व उसको साथ लेने से ही परिवार की खुशहाली बनाई जा सकती है। रजनी अनुरागी 'औरत' कविता में लिखती हैं-

“टंगी रहती है औरत पर्दे की तरह
आड़ देती घर की तमाम कमजोरियों को
और बदल दी जाती हैं पुरानी पड़ जाने पर
सीवन करती है वह तमाम उधड़नों को
और खुद ही उधड़-उधड़ जाती है
हाड़तोड़ बेगार करती है तमाम उम्र
और हमेशा खाली हाथ रहती हैं
औरों की तरह औरत भी अपना सफर करती है
मगर औरत की जिंदगी में
पिता के घर से पति के घर तक

कोई हमसफर नहीं होता!!!”¹³⁰

कवयित्री ने औरत के जीवन के उस पहलू पर बात की है, जो बचपन से उसके साथ जुड़ा हुआ है यानी ‘घर’। स्त्री का न ही अपना कोई परिवार होता है और न ही घर। उसका जन्म ही दूसरों के लिए होता है। दूसरों की इच्छाओं को पूरा करना। घर-परिवार की सेवा करना इत्यादि। उसके पास स्वयं के लिए वक्त ही नहीं है। सुबह से रात तक घर-परिवार की खुशियों के बारे में ही सोचना उसका उद्देश्य बन गया है। दलित परिवारों में भी सवर्ण परिवारों की ही नकल पर ब्राह्मणवादी मूल्य स्थापित हैं। अगर लड़की अनपढ़ है, तो उसका बालविवाह कर दिया जाता है और यदि वह पढ़ी लिखी है तो उसे गर्व से शॉ केस गुड़िया की तरह सजाकर ढंका-छिपा कर रखा जाता है। यहाँ तक की अम्बेडकरवादी चेतना से लैस कार्यकर्ता नेता व साहित्यकार भी स्त्रियों को अपने घर में ही रखना पसंद करते हैं। वे सवर्ण परिवारों के ही तर्ज पर अपने परिवार की स्त्रियों को सभ्य, सुशील, कुलीन स्त्रियों में तब्दील करना चाहते हैं। इस तरह वे सामाजिक सुरक्षा के नाम पर दलित स्त्रियों पर अपना वर्चस्व जमाने के लिए उन पर ब्राह्मणवादी मूल्य थोप रहे हैं।

3.2.8. अशिक्षा

शिक्षा के अभाव के दो मूल कारण हैं- एक सामाजिक नियम और दूसरा आर्थिक समस्या। यहाँ पर हम सामाजिक नियम के अनुसार दलित स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखने पर चर्चा करेंगे। स्त्रियों की शिक्षा को लेकर बुद्ध काल में देखा जाए तो, स्त्रियों को शिक्षा का दी जाती थी। परंतु धीरे-धीरे समाज में वर्णव्यवस्था के चलते दलित पुरुषों और स्त्रियों दोनों को ही शिक्षा से वंचित रखा गया। समाज के नियम के अनुसार शिक्षा केवल उच्च वर्ग के लोगों के लिए ही है। दलितों को शिक्षा की कोई आवश्यकता ही नहीं। पुरुषों को तो फिर भी जैसे-तैसे शिक्षा प्राप्त हुई। परंतु यहाँ बात तो दलित स्त्री की हो रही है। दलित स्त्रियों को समाज और

¹³⁰ दलित महिला लेखन : 2011, खंड 1, सं. रजनी तिलक, पृ-38

परिवार दोनों के शोषण से गुजरना पड़ा। ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले ने स्त्री शिक्षा की नींव डाली। “डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि परिवार में स्त्री शिक्षा ही वास्तविक प्रगति की धुरी है। स्त्री शिक्षा को डॉ. अम्बेडकर अत्यधिक महत्व देते हुए कहते हैं कि, अगर घर में एक पुरुष पढ़ता है, तो केवल वही पढ़ता है और यदि घर में स्त्री पढ़ती है, तो पूरा परिवार पढ़ता है।”¹³¹

रजनी अनुरागी अपनी कविता 'सर्दियों की सूबह: दो' में लिखती हैं-

"बेहद लगन से ये बीनते-छानते हैं कूड़ा

और बुनते हैं सपने...

देखते हैं पैंट-टाई में स्कूल जाते बच्चों को

सोचते होंगे शायद

क्या हम भी कभी स्कूल जा पाएँगे

शायद वह दिन कल ही आए

पर वह दिन कभी आता भी है

किसे पता?"¹³²

कवयित्री जहाँ इस कविता के प्रथम भाग में उन बच्चों के बारे में बताती है, जो सवर्ण वर्ग की जाति के हैं। जो प्रति दिन शिक्षा ग्रहण करने के लिए स्कूल जाते हैं। वहीं दूसरे भाग में कवयित्री दलित बच्चों के जीवन को उजागर करती हैं। स्कूल जाना दलित बालक और बालिकाओं के लिए एक स्वप्न-सा है। कूड़ा उठाने के साथ-साथ उनके मन में स्कूल और शिक्षा प्राप्त करने की अभिलाषा जागती है। यह आशा पूरी होगी कि नहीं, इसी सोच में उनका जीवन बीत जाता है। समाज के इस कठोर नियम में दलित बच्चों का बचपन छिन जाता है।

¹³¹ समकालीन नारीवाद और दलित स्त्री का प्रतिरोध – अनिता भारती, पृ-256

¹³² दलित महिला कहानी लेखन : 2015(खंड-2) सुशीला टाकभौरे, पृ-235

लड़कियों के लिए तो परिवार वालों की सोच ही काफी है कि 'ये पढ़ लिख कर क्या करेगी?' इसे तो चूल्हा-चौका ही संभालना है। इसी संदर्भ में हम सुशीला टकभौरै की कहानी 'मेरा बचपन' का उदाहरण देख सकते हैं। वह कहती हैं कि "लड़की जात, पढ़कर का करेगी? यह भावना और छूआछूत की पराकाष्ठा के कारण स्कूल के दरवाजे उनके लिए बंद ही रहे। नानी के समय में शिक्षा पाने की बात सोचना भी संभव नहीं था। नानी चाहकर भी अपनी बेटी को स्कूल नहीं भेज पाई थी। शिक्षा के प्रति ललक, उत्सुकता और आदर होने के बाद भी वे शिक्षा से वंचित रहे।"¹³³

दलित स्त्रियों के लिए शायद ही कोई नियम बचा हो जो उन पर लागू न हुआ हो। इसी मानसिकता के साथ स्त्री का जीवन किस प्रकार गुजरता है यह विचार करने की बात है। रजत रानी 'मीनू' अपनी कविता 'बचपन' में कहती हैं कि,

"वे मर रही थीं
या कहें
वर्ण भेद भरी
हजारों बरसों की गुलामी की तरह।
आज भी उसके मन में
शिक्षा की भूख दिख रही थी
उसके चेहरे पर
पेट की भूख की तरह।"¹³⁴

कवयित्री अपने बचपन को याद करती हुई यह यह कविता लिखती हैं। यहाँ पर उन्होंने शिक्षा की भूख को पेट की भूख के साथ जोड़ा है अर्थात् जिस प्रकार पेट की आग मनुष्य को

¹³³ टूटता वहम - डॉ सुशीला टाकभौरै, पृ-14

¹³⁴ पिता भी तो होते हैं माँ- रजत रानी 'मीनू', पृ-171

अंदर-अंदर जलाती है ठीक उस तरह शिक्षा से वंचित रखने से मनुष्य अंदर ही अंदर तड़पता रहता है। भारतीय वर्ण-व्यवस्था ने दलित स्त्रियों के पक्ष में ही दुनिया के सारे कष्ट लिख दिए हैं। “शिक्षा अर्जित करने की दृष्टि से छात्र वर्ग की स्थिति काफी खराब है। सरकार ने पिछले साल की तुलना में इस साल काफी पैसा शिक्षा पर खर्च किया है। किंतु आजकल छात्र वर्ग शिक्षा प्राप्त करने की बजाय राजनीति में ही ज्यादा व्यस्त दिखाई देता है। यह भी मेरी दृष्टि से शिक्षा के क्षेत्र का पतन ही है।”¹³⁵

डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय साहित्य में प्राचीन से लेकर आधुनिक साहित्य के साथ-साथ विदेशी साहित्य का भी अच्छी प्रकार से अध्ययन-मनन किया था। साहित्य अध्ययन के दौरान शिक्षित व स्वतंत्र स्त्रियाँ उदाहरण के रूप में उनके सामने बुद्ध की थेरियों से लेकर सावित्रीबाई फुले थीं। इसके अलावा उनकी कई महिला मित्र ऐसी थीं, जिन्होंने पढ़-लिख कर समाज परिवर्तन के लिए काम किया। इसलिए डॉ. अम्बेडकर दलित स्त्री को शिक्षित करने के लिए प्रतिबद्ध थे। परंतु इसीलिए उन्होंने हिंदू कोड़ बिल की बात की थी। मनुवादी समाज में दलित स्त्री की शिक्षा को एक अलग ही मानसिकता बना दिया है। अगर कोई दलित स्त्री घर-परिवार से संघर्ष कर स्कूल जाती भी है, तो उसे स्कूल के अध्यापक मानसिक और शारीरिक शोषण का शिकार बनाते हैं। इसी संदर्भ में रजत रानी 'मीनू' अपनी कविता 'स्कूल के वे दिन' में लिखती हैं-

"मैं भी काँप जाती थी

अपने अध्यापक का

क्रूर रूप देख कर

परम शुद्ध भाषा

भंगी-चमार रसाले

¹³⁵ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा... – खण्ड- 4, सं- अल.जी. मेश्राम 'विमलकीर्ति', पृ-12

ये हैं, वे हैं
 पढ़ना नहीं है इन्हें
 ये पढ़ कर क्या करेंगे?
 इन्हें तो आखिर...
 जो व्यक्त हो ही जाती थी
 उनके चेहरे और आवाज़ से
 हमारे प्रति घृणा।"¹³⁶

पुरुषवादी मानसिकता को स्कूल के अध्यापक भी छोड़ नहीं पाये। शिक्षित होने के बावजूद भी दलित स्त्रियों के प्रति जो व्यवहार अध्यापक ने किया है वह कोई अनपढ़ भी नहीं करता है। शिक्षा मनुष्य को मानवीयता सिखाती है। जिससे हम सही और गलत में फर्क कर पाते हैं। परंतु मनु ने जो सवर्ण समाज को सिखाया है। वह शायद ही पूरी तरह हट पाएगा। कविता में कवयित्री ने जिस प्रकार अध्यापक के घृणा भाव को दलित स्त्रियों के प्रति दर्शाया है, वह सोचने वाली बात है। अध्यापक की नज़र में कक्षा का हर छात्र समान होना चाहिए। यहाँ जातिगत भेदभाव या लिंगगत भेदभाव नहीं तोलना चाहिए। दलित स्त्री शिक्षा ग्रहण करके क्या करेंगी? यह सवाल अध्यापक के दिमाग में घर कर गया है। एक तो दलित और ऊपर से स्त्री। स्त्री को शिक्षा की कोई जरूरत नहीं ऐसी, पुरुषवादी समाज की मानसिकता है।

डॉ.अम्बेडकर ज्योतिबा फुले को अपना गुरु मानते थे। उन्होंने लड़कियों के लिए अलग से पाठशालाएँ खोली थीं। घर-घर से बालिकाओं को लाकर उन्हें स्कूल में पढ़ाते थे। सावित्रीबाई फुले ने स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान दिया था। सवर्ण और शूद्र समाज की लड़कियों को शिक्षा देकर मनु के इस कानून को तोड़ा गया था कि 'स्त्रियों को शिक्षा नहीं देना चाहिए।' उन्होंने समाज की कुरीतियों और अंधविश्वास को तोड़ा। फुले दंपत्ति ने अपने

¹³⁶ पिता भी तो होते हैं माँ – रजत रानी 'मीनू', पृ-180-181

कार्यों से यह बता दिया कि शिक्षा का अधिकार सबको है। स्त्रियाँ भी शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं। वे भी ज्ञान और तर्क को समझ सकती हैं। वे शिक्षित होकर स्वावलम्बी बन सकती हैं। वे जानते थे कि, शिक्षा ही वह शस्त्र है, जिसे धारण कर दलित समाज और दलित स्त्री अपनी रक्षा और सुरक्षा स्वयं कर सकती है। इसी संदर्भ में कवयित्री रजनी तिलक 'शिक्षा का परचम' में लिखती हैं-

"तू पढ़ महाभारत
न बन कुंती, न द्रोपदी।
पढ़ रामायण
न बन सीता, न कैकेयी।
पढ़ मनुस्मृति
उलट महाभारत, पलट रामायण।
पढ़ कानून
मिटा तिमिर, लगा हलकार।
पढ़ समाजशास्त्र, बन सावित्री
फहरा शिक्षा का परचम॥"¹³⁷

इस कविता में शिक्षा के महत्व को समझाने के लिए वैदिक काल से उदाहरण देते हुए समकालीन समय तक पहुँच गयी है। कवयित्री ने दलित स्त्रियों में चेतना और शिक्षित होने की प्रेरणा दे रही है। सत्ययुग में भी किस तरह सवर्ण स्त्रियों के साथ भी अत्याचार हुआ है। महाभारत हो या रामायण स्त्रियों को हमेशा से दोयम दर्जे पर रखा गया है। स्त्रियों को भी हमेशा अग्नि परीक्षा से गुजरना पड़ता है। परंतु अब शिक्षा के माध्यम से स्त्रियों को अपनी पहचान मिलेगी और वह स्वयं अपनी लड़ाई लड़ सकेगी।

¹³⁷ पदचाप – रजनी तिलक, पृ-51

3.3. अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में सामाजिक भेदभाव

अफ्रीका के लोगों के साथ गुलामी की जो प्रथा सदियों से जुड़ी रही उसका मुख्य कारण समाज ही रहा है। अमेरिकी समाज ने अफ्रीका के लोगों को गुलाम बनने के लिए मजबूर कर दिया। उसके साथ-साथ आज तक कहीं-न-कहीं गोरों के मन में यह भावना बनी हुई है। समाज ही वह डोरी होती है, जो लोगों को आपस में जोड़े रखती है। परंतु जब यही समाज कुछ लोगों के लिए जेल या कहे नरक बन जाता है। तब मनुष्य को जीवन जीने की चाह भी मर जाती है। अफ्रो-अमेरिकन लोगों के जीवन से जुड़ी यथार्थ को साहित्य, कला, संगीत, नृत्य तो प्रस्तुत किया है। साथ ही फिल्मों में भी इन्हें उतारा गया है।

इस विषय का अध्ययन करते समय शोधार्थी ने साहित्य को तो पढ़ा ही। साथ ही उनके जीवन को और जानने-समझने के लिए कुछ फिल्मों को भी देखा। फिल्मों को देखते समय उस सच्चाई और दर्द को शोधार्थी ने अपनी आँखों से व्यक्त किया। अमेरिका के समाज ने जो नियम-कानून अफ्रीका के लोगों के लिए लगाया था। उसने इंसानी सभ्यता की पहचान ही मिटा दी। मानव का दूसरे मानव के प्रति इतना अमानवीय अत्याचार क्रूरता के सभी बंधनों को तोड़ देता है।

हम यहाँ पर अफ्रो-अमेरिकन स्त्री के साथ हुए सामाजिक अत्याचारों और समस्याओं पर बात करेंगे। अमेरिका के लोगों ने जब अफ्रीका के लोगों को गुलाम बनाया तो उन्होंने स्त्री-पुरुष में कोई भेदभाव नहीं किया। दोनों को एक समान यातनाएँ दीं। स्त्री समझकर भी उन्हें बख्शा नहीं, बल्कि स्त्रियों के साथ तो दोहरा शोषण होता रहा।

अश्वेतों की अलग बस्ती में आज तक साहित्य में व्यक्त न हुए अनुभव को समझ लेने के लिए यहाँ की प्रस्थापित समाज व्यवस्था का अभ्यास करना आवश्यक है। प्रस्थापित विषम व्यवस्था और इस व्यवस्था में होने वाले अश्वेत के शोषण को सुलझने के सिवाय इस

साहित्य में व्यक्त हुई 'वेदना' और 'विद्रोह' का अन्वयार्थ लगाना कठिन काम है। इसलिए तो अश्वेत वाङ्मय की समीक्षा सामाजिक दृष्टि से होनी चाहिए। इस संदर्भ में हस्टन ए. बेक कहते हैं कि, "A critic's function, attention must also be paid to the sociological conditioning of critics and criticism as a mean of providing safeguard against an alien orientation of judgement or evaluation a factor of which the critic may remain blissfully unaware."¹³⁸ अर्थात् एक आलोचक के कार्य और आलोचना के समाजशास्त्रीय अनुकूलन पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। क्योंकि निर्णय के एक विदेशी अभिविन्यास के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करने या कारक का मूल्यांकन करना जिसमें आलोचक आनंद से अनजान रह सकता है।

हस्टन ए. बेक ज्यूनियर का कथन ध्यान में लिया जाए तो यह कहना उचित होगा कि जिस साहित्य की आत्मा ही 'समाज' और 'सामाजिक समस्या' है। उस साहित्य के आकलन के लिए इस समस्या पर बात करना अत्यंत आवश्यक है।

3.3.1. नस्लवादी व्यवस्था

अश्वेत के गुलामी का मुख्य और एक मात्र कारण उनका रंग है। अमेरिका के लोगों ने इसी बात के कारण ही उन्हें सदियों से गुलामी का जीवन जीने में मजबूर कर दिया। क्या केवल रंग के आधार पर मनुष्य के साथ अत्याचार किया जाता है? इस सवाल का जबाब अमेरिका के मूल निवासियों के पास नहीं होगा। 'रंग' केवल त्वचा का ऊपरी भाग है। जो कभी भी मनुष्य की पहचान बन नहीं सकता है। मनुष्य की पहचान उसके स्वभाव, काबिलियत और व्यवहार से करना चाहिए। त्वचा का रंग 'गोरा' या 'काला' होने से वे मालिक और गुलाम नहीं बन जाते हैं।

¹³⁸ Huston a bake jr/reading black: essays in the criticism of African, caribbean and black American literature, p-2

अश्वेत कहने से यूरोपियन के अलावा सारी रंगीन प्रजातियाँ आ जाती हैं। इसमें अफ्रीका और एशियाई मूल के लोग भी आ जाते हैं। यह उचित नहीं है। पर गोरों (यूरोपियन) के अलावा सबके लिए एक शब्द, कलर्ड शब्द का प्रयोग होता है। इसमें काले, भूरे, पीले सब रंगों, सब नस्लों के लोग समाहित कर लिये जाते हैं। बहुत सारे लोग मानते थे कि काले लोगों में आत्मा ही नहीं होती है अतः वे मनुष्य नहीं होते हैं। इसलिए उनके साथ अमानवीय व्यवहार करने से उन्हें कोई अनुभूति, दुःख-दर्द तकलीफ नहीं होती है।

एलिस वॉकर अपनी कविता ‘without commercials’ में लिखती हैं-

“stop bleaching
Your skin
And talking about
So much black
Is not beautiful
The color black
Is not bad at all.
There are black nights
That rock us in dreams.
Or if you must,
Bleach only because it pleases you
To be brown,
To be able to see for as long
As you can bear it
The whole world’s

lighter face reflected

in your own.”¹³⁹

कवयित्री ने इन पंक्तियों में अपनी बात काफी साफ शब्दों में प्रस्तुत की है। हमारे रंग को व्यावसायिक रूप न देकर उसकी सच्चाई को जानना चाहिए। कविता के आरंभ में कवयित्री गोरे रंग के बारे में बताती है कि, गोरा रंग बुरा नहीं बल्कि सुबह का प्रतीक है। जो हमारे दिन को उजाले से भर देती है। साथ ही साँवला रंग उस गर्मी में उस सूरज की रोशनी की तरह है, जो आपके आँखों में पड़ते ही पूरी दुनिया अँधेरी नज़र आती है।

कवयित्री अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों को कहती है कि अपने चेहरे को निखारना बंद करो और यह कहना कि काला रंग सुंदर नहीं होता। काला रंग या त्वचा कहीं से बदसूरत नहीं है। काली-अंधेरी रात जो हमारे सपनों को रौंदती है, उससे लड़ो। कुछ ऐसा करो जिससे पूरी दुनिया तुम्हारे चेहरे से चमके।

बेल हूक्स ने एलिस वॉकर के ‘कॉलर पर्पल’ और ‘थार्ड लाइफ’ टोनी मॉरीसन की ‘सूला’ और बाम्बारा की ‘द सल्ट इटर्स’(1980) इस रचनाओं में लेखिकाओं के योगदान के बारे में लिखा है- “the struggle by black female characters for subjectivity, though forged in radical resistance to the status quo.....usually takes the form of black women breaking free from boundaries imposed by others, only to practice their newfound ‘freedom’ by setting limits and boundaries for themselves.”¹⁴⁰ अर्थात् अपने समाज के लिए संघर्ष करने वाली अश्वेत स्त्री पात्र, हालांकि यथास्थिति के लिए कट्टरपंथी प्रतिरोध में..... आमतौर पर दूसरों द्वारा

¹³⁹ Her blue body everything we know- alice walker, p-381-382

¹⁴⁰ Bell hooks, revolutionary black women: making ourselves subject, ed. Paul e.logan, p-56

लगाए गए सीमाओं से मुक्त होने वाली अश्वेत स्त्रियों का रूप लेती है, केवल सीमा और सीमा निर्धारित करके अपने नए 'स्वतंत्रता' का अभ्यास करने के लिए।

एलिस वॉकर ने कई उपन्यासों, कहानियों, निबंधों और कविताओं की रचना की है। उनकी प्रसिद्ध कृति 'कलर पर्पर'(उपन्यास) स्त्री शक्ति के दस्तावेज के रूप में सामने आया है। उनका कहना है कि, "अधिकांश पुरुष यातना की जिस सीमा को छू सकते हैं बहुत सी स्त्रियों के लिए गर्भपात का अनुभव उससे कई अधिक पीड़ादायक है। यह दया और आत्म रक्षा का काम है।"¹⁴¹ उनकी इन पंक्तियों में स्त्रियों की शक्ति व्यक्त होती है, जो पुरुषों के मुकाबले कई अधिक होता है। पुरुष यह बात अक्सर भूल जाते हैं कि उनका वजूद स्त्रियों की वजह से है। श्वेत लोगों ने अश्वेत स्त्रियों के साथ केवल रंग के आधार पर शोषण किया। स्त्रियों की स्थिति हर समाज में एक सी है। स्त्री के चरित्र हमेशा अग्नि परीक्षा देने की आवश्यकता पड़ती है। इन सवालों का जबाब न तो भारतीय पुरुष के पास है और न ही अश्वेत पुरुषों के पास होगा।

कवयित्री Gwendolyn brooks अपनी कविता 'ballad of pearl may lee' में लिखती हैं-

"At school, your girls were the bright little girls,

You couldn't abide dark meat.

Yellow was for to look at,

Black for the famished to eat.

Yellow was for to look at

Black for the famished to eat."¹⁴²

¹⁴¹ अफ्रो-अमेरिकन साहित्य स्त्री स्वर – विजय शर्मा पृ-259

¹⁴² The world of Gwendolyn brooks, p-45

कवयित्री ने रंग भेद के कारण समाज में जो गुलामी की प्रथा कायम है, उस समस्या को कविता में प्रस्तुत किया है। श्वेतों की सोच में ही काले और गोरे रंग को लेकर जो भेदभाव बैठ गया है, उसे निकालना बहुत मुश्किल है। जीवन में जितने अभाव, कष्ट और दुःख हो सकते हैं, अश्वेत स्त्री का जीवन उन सब से परिपूर्ण रहा है।

जितनी घृणा, अपमान, अन्याय और उपेक्षा उसने सही है। वह अमेरिकी समाज की असभ्यता, अमानवीय और बर्बरता का इतिहास बयान करता है। अश्वेत स्त्रियों का दमन, शोषण और उनको दी गयी शारीरिक मानसिक यंत्रणायें समाज के माथे पर एक बड़ा कलंक है। कोई भी सभ्य समाज अपने इस प्रकार के व्यवहार पर कभी गर्व नहीं कर सकता सिर्फ शर्मसार हो सकता है।

फ्रेडरिक डगलस ने अपने जीवन के अनुभव को लिखा है। ‘एक अमेरिकी गुलाम’ के नाम से उनकी आत्मकथा आज हम सबके सामने है। नैरेटिव ऑफ लाइफ ऑफ फ्रेडरिक डगलस एन अमेरिकन स्लेव अश्वेत आंदोलन के अगुआ फ्रेडरिक डगलस की आत्मकथा है। इस पुस्तक का प्रकाशन सन् 1845 में हुआ। उस समय डगलस की उम्र मात्र 27 साल थी। आलोचकों ने अप्रमाणिक कह कर इस पर कड़े प्रहार किए उनका तर्क था कि कोई अश्वेत साहित्यिक दृष्टि से इतनी उच्च कोटि की रचना कर ही नहीं सकता। जल्द ही अमेरिका में यह कृति बेस्टसेलर हो गई। साहित्य से इतर सामाजिक-राजनीतिक हलकों में भी इसे बहुत सराहा गया।

3.3.2. सामाजिक क्रूरता

यहाँ बात छोटे समाज की नहीं है, बल्कि एक विशाल देश की सामाजिक मानसिकता की है। अमेरिका का समाज अपने में ही कई समाजों को लेकर बना है। पर इन सभी समाजों की सोच एक ही तरह है जो मनुष्य को रंग या नस्ल के आधार पर बाँटते हैं। “रिचर्ड राइट की

पुस्तक 'नेटिव सन' में नायक बड़ी आहत में से अपनी जिंदगी के आखिरी वक्त में यह निर्धारित और सुस्पष्ट हीनता महसूस करता है। दूसरापन उसकी काली चमड़ी पर गोद दिया गया है। वह आकाश में उड़ते हवाई जहाजों को देखता है, लेकिन उनमें उड़ नहीं सकता।”¹⁴³

श्वेत लोगों ने अश्वेत पुरुषों के साथ जैसा व्यवहार और अत्याचार किया, वैसा अत्याचार स्त्रियों के साथ नहीं किया गया। बल्कि उससे भी अधिक शोषण का शिकार स्त्रियों को होना पड़ा। इसका कारण केवल एक ही है कि वह स्त्री है। समाज के नियम स्त्रियों के लिए पूरे विश्व में एक जैसे ही हैं। स्त्री चाहे भारत में हो या अमेरिका में उसे केवल एक ही निगाह से देखा जाता है। माया एंजेलो की कविता 'prisoner' में लिखती हैं-

“Black night. The me
Myself of me sleeks
In the folds and history
Of fear. To secret hold
Me deep and close my
Ears of lulls and clangs
And memory of hate.
Then night and sleep
And dreams.

It's jail and bail then rails to run.”¹⁴⁴

सामाजिक क्रूरता में बंधा है अश्वेत जीवन। जीवन-मुक्ति की कामना और इस गुलामी की जंजीर को तोड़ना चाहते हैं। गुलामों के जीवन की सबसे बड़ी विवशता है कि उन्हें इस

¹⁴³ सीमोन द बोउवार- स्त्री: उपेक्षिता, पृ. 142

¹⁴⁴ Oh pray my wings are gonna fit me well- maya angelou, p-50

गुलामी के जीवन से आजादी तो मिल गई है परंतु वह शोषण, अत्याचार, दर्द आज भी रातों को सोने नहीं देता है। कविता में अश्वेत स्त्रियों की यादों में नफ़रत, घृणा ही भरी हुई है। उनकी रातें बुरे सपने की तरह बीतती हैं। माया एंजेलो ने अपनी कविता के माध्यम से खुद के अनुभव से जुड़े यथार्थ को उजागर किया है। उनकी कविताओं में नस्ल और लिंग से जुड़ी समस्याओं से लड़ती, संघर्ष कर रही अश्वेत स्त्रियों की कहानियाँ हैं। कवयित्री ने हर कदम पर संघर्षों के थपेड़ों में मुकाबला करती रही, चाहे बचपन में अपनी माँ के प्रेमी द्वारा बलात्कार का शिकार होने की दुर्घटना हो, युवावस्था में अनजाने में ही गर्भवती होने की घटना हो या फिर कुछ और हो आदि। उन्होंने सभी परिस्थितियों में उभरी और उसके बाद अधिक जुझारु होकर जीवन का सामना करती रही। कवयित्री जून जोर्डन अपनी कविता ‘Soldier: A Poet’s Childhood’ में लिखती हैं-

“My mother did not see me off

My father brought me to the railroad

Station by himself.

Just outside track 22, we faced each other

Okay! Little soldier! G-wan! G-wan!

You guys made me proud!

And I could hear nothing else

And I wondered who would meet my train.”¹⁴⁵

डब्ल्यू.ई.बी. डुबोइस ने ‘द सोल्स ऑफ ब्लैक फॉक’ में लिखते हैं कि, “negroes of training and intelligence, who had hitherto pretended to regard the race problem as of strictly personal concern and who sought individual

¹⁴⁵ Soldier: a poet’s childhood- june jordan, p-261

solvation in a creed of detachment and silence found a bond in their common grievances and a language through which to express them.”¹⁴⁶ अर्थात् नीग्रो में प्रशिक्षण और बुद्धिमत्ता से भरे होते हैं। जिन्होंने नस्ल की समस्या के बारे में सख्ती से व्यक्तिगत चिंता दिखाया है। उन्होंने टुकड़ी और चुप्पी के बीच मोक्ष की मांग की साथ ही अपनी आम शिकायतों में एक बंधन मिला और एक भाषा के द्वारा अपनी भावनाओं को व्यक्त किया।

कवयित्री एलिस वॉकर अपनी कविता ‘Thief’ में लिखती हैं कि,

“I wish to own only the warmth
of your skin
the sound your thoughts make
reverberating off the coldness
of my loss
to love purely
as I love trees and
the quiet sheens and
colors
of my house”¹⁴⁷

कवयित्री इन पंक्तियों में प्रकृति से उसकी खूबसूरती और सच्चाई को चोरी करना चाहती है। समाज में मनुष्य के मन में जो क्रूरता की भावना है। वह प्रकृति में नहीं होती है। प्रकृति के लिए हर कोई एक समान है चाहे वह श्वेत हो, अश्वेत हो या स्त्री हो। श्वेतों के साथ-

¹⁴⁶ Saunders redding in introduction to the study of the souls of black folk by W.E.B.DuBois, p- ix

¹⁴⁷ Her blue body everything we know- alice walker, p-224

साथ अश्वेत पुरुषों ने भी अश्वेत स्त्रियों पर शोषण किया। जहाँ एक तरफ अफ्रो-अमेरिकन स्त्री स्वयं के लिए समाज से लड़ती रही। वहीं उसे अश्वेत पुरुषों से भी लड़ने के लिए आना पड़ा। एलिस वॉकर ने कई उपन्यासों, कहानियों, निबंधों और कविताओं की रचना है। इसमें उन्होंने इस विषय पर गंभीरतापूर्वक लेखक कार्य किया है।

इन्होंने हमेशा अफ्रो-अमेरिकन स्त्री के लिए अपनी लड़ाई लड़ी है। अपनी कविताओं में अमेरिकी समाज की सच्चाई और सदियों की गुलामी का चित्रण प्रस्तुत किया है। बीवर्ली गाय-शेफ्टल लिखते हैं कि, “black feminism’s goals are to provide clarity about the impact and interface of racism, sexism, hetero-sexism and classism on the lives of African-american women and to create a world in which race, class, gender and class hierarchies are no longer viable.”¹⁴⁸ अर्थात् अश्वेत नारीवाद का लक्ष्य अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों के जीवन पर नस्लवाद, लिंगवाद, विषमलैंगिकता और वर्गवाद का सामना करें और एक ऐसी दुनिया बनाए जिसमें जाति, वर्ग, लिंग और नस्ल की पदानुक्रम अभी भी व्यवहार्य न हो।

समाज लोगों से बना है। पर जब उसी समाज के अपने नियम-कानून से लोगों का जीवन किसी नर्क से कम न हों तो वह समाज, समाज नहीं रहता है। नस्ल या रंग के कारण अश्वेत लोगों को समाज में मनुष्य की तरह नहीं बल्कि एक गुलाम की ज़िंदगी मिली।

3.3.3. लिंगगत भेदभाव

पुरुष और स्त्री, चाहे वे मज़दूरी करने वाले हों या फिर खेती या दफ्तर में काम करने वाले, दिन भर साथ-साथ और बराबर काम करने के बाद भी दोनों में लिंग का भेदभाव क्यों किया जाता है? पुरुषवादी व्यवस्था की सोच में स्त्री का स्थान हर देश और समाज में एक तरह

¹⁴⁸ Words of fire: an anthology of afrian-american feminist thought- ed. Beverly guy, sheftall, p- xviii

है। अफ्रो-अमेरिकन स्त्री के लिए जहाँ एक तरफ श्वेत स्त्री-पुरुष दोनों के अत्याचारों का शिकार होती है, वहीं दूसरी तरफ अश्वेत पुरुषों के नज़रों में स्त्री होनी ही सजा मिलती है।

रीटा डॉव अपनी कविता 'The life' में लिखती हैं-

“your face, though I didn’t know it.

Our lives will be the same-

Your lips, swollen from whistling

At danger,

And I a stranger

In this desert,

Nursing the tough skins of figs”¹⁴⁹

जीवन के हर पल में जो जिया उसी को व्यक्त करती यह कविता है। किसी भी देश के इतिहास में जब हम स्त्री लेखन की गाथा को देखते हैं तो पाते हैं कि, लिखना उनके लिए आसान न था। उनके सामने बहुत सारी चुनौतियाँ थीं। विशेष रूप से लिंग भेदभाव थी। अफ्रो-अमेरिकन स्त्री रचनाकारों, कवयित्रियों के पास इसके साथ और चुनौतियाँ भी जुड़ी हुई थी। उन्हें न केवल लिंगगत भेदभाव का सामना करना पड़ा। बल्कि उनके सामने दासत्व और नस्ल का मुद्दा भी खड़ा था। इलेनर डब्लू ट्रेलर 'द ब्लैक वीमेन' पुस्तक में लिखते हैं “explores first the interiority of an in-the-head, in-the-heart, in-the-gut region of a discovery called the self. It tests the desires, the longings, the aspirations of this discovered self with and against its possibilities for respect, growth, fulfilment and accomplishment.”¹⁵⁰ अर्थात् इसकी आकांक्षाओं ने स्वयं

¹⁴⁹ Selected poems- rita dove, p-4

¹⁵⁰ The black woman- Eleanor w. traylor, p-xi

के साथ की खोज की और इसके खिलाफ सम्मान, विकास, पूर्ति और उपलब्धि की सम्भावनाएं हैं।

एलिस वॉकर पर आरोप लगता है कि उनके पुरुष पात्र अत्याचारी और आत्मकेंद्रित हैं। अश्वेत पुरुष के ऐसे चित्रण के लिए उनकी भरपूर भर्त्सना होती है। उनका कहना है कि, वे पुरुषों को खुश करने के लिए नहीं लिखती हैं। कवयित्री के अनुसार उस व्यक्ति के प्रति सहानुभूति रखना कठिन है। जो आपके चेहरे पर मौका ताने रहते हैं। अश्वेत समुदाय का पुरुष स्त्री के साथ ठीक वैसा ही व्यवहार करता है जैसा कि, एक श्वेत पुरुष करता है। पुरुष-सत्ता इस समुदाय के लिए अभिशाप है। अश्वेत स्त्री दोहरी-तिहरी झेलती है।

“we alone can devalue gold

By not caring

If it falls or rises

In the market place.

Whenever there is gold.

There is a chain, you know,

And if your chain

Is gold so much the worse

For you.”¹⁵¹

‘we alone’ कविता में कवयित्री जीवन के अकेलेपन को समझाने के लिए उदाहरण प्रस्तुत करती है। अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों की तनहाई उन्हें अंधेरे में ले जाती है। समाज और घर में उन्हें वह मान-सम्मान प्राप्त नहीं हुआ। कविता में सोने की पहचान और उसके मूल्य को स्वयं की जगह रखकर लिखा गया है। सोने की परख केवल सुनार ही कर सकता है। उसी

¹⁵¹ Her blue body everything we know- alice walker, p-329

प्रकार एक स्त्री को जानने, समझने के लिए मनुष्यता का होना आवश्यक है। पर अमेरिकन और अफ्रो-अमेरिकन पुरुषों की सोच में स्त्रियों के लिए न ही कोई इज्जत है और न ही कोई सम्मान। रीटा बी. डेंड्रीज लिखती हैं कि, “like walker’s other works, ‘The Colour Purple’ depicts the pain in black people’s lives, especially the pain inflicted on black women by black men.”¹⁵² अर्थात् एलिस वॉकर के अन्य कामों की तरह, ‘कलर पर्पल’ उपन्यास में भी अश्वेत लोगों के जीवन में होने वाले दर्द को दर्शाया गया है, विशेष रूप से अश्वेत पुरुषों द्वारा अश्वेत स्त्रियों पर किया गया अत्याचार को दिखाया।

अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों को दर्द श्वेत लोगों की तुलना में कहीं अधिक अश्वेत पुरुषों ने पहुँचाई है। स्त्री अपनों से ही लिंग भेदभाव के कारण सताई जाती है। समाज और परिवार दोनों से ही संघर्ष करती रही है।

3.3.4. परिवार का स्वप्न

अफ्रो-अमेरिकन स्त्री अपने जीवन में परिवार का स्वप्न देखती है। गुलाम का कोई अपना जीवन न हो ये कानून श्वेतों ने लगाया है। अफ्रो-अमेरिकन स्त्री की इच्छा है कि वह सामान्य जीवन की तरह अपने एक परिवार की चाह रखती है। स्त्री उस घर की तलाश कर रही है। जहाँ वह गुलामी के जीवन मुक्त होकर सुकून के साथ रह सके। उनका भी सपना है कि श्वेत लोगों की तरह विवाह कर एक परिवार बसाए।

कवयित्री माया एंजेलो ‘Alone’ कविता में लिखती हैं कि,

“lying, thinking

Last night

How to find my soul a home

¹⁵² Rita b.dandridge- black women’s blues, p-15

Where water is not thirsty
And bread loaf is not stone
I came up with one thing
And I don't believe I'm wrong
That nobody
Can make it out here alone.”¹⁵³

कवयित्री जीवन के अकेलेपन को इस कविता में व्यक्त करती है कि उन्हें एक घर की तलाश है। जहाँ उनकी आत्मा को शरीर मिल सके। जहाँ पानी प्यास बुझाती हो, जहाँ खाने के लिए पत्थर न मिले। अफ्रो-अमेरिकन स्त्री के जीवन में कोई अपना नहीं है। जो उनके इस अकेलेपन को दूर कर सके। वह अकेले ही जीवन के दुःख, कष्ट से लड़ती, अकेले ही संघर्ष कर रही है। गुलामी से आज़ादी मिलने के बाद भी जीवन का खालीपन दूर न हो सका। “like a number of black women writers, angelou does not limit her writing to a particular genre. As progenitor of contemporary black ‘life writing’ angelou has not only published five autobiographies but also eight books of poetry.”¹⁵⁴ अर्थात् कई अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखिकाओं की तरह, माया एंजेलो ने भी अपनी लेखन को एक विशेष शैली तक सीमित नहीं रखा है। क्योंकि समकालीन अश्वेत ‘जीवन लेखन’ के पूर्वज एंजेलो ने न केवल पांच आत्मकथाएँ, बल्कि कविता की आठ किताबें भी प्रकाशित की हैं।

माया एंजेलो ने हमेशा अपनी कविताओं में यथार्थ को दिखाया है। अन्य कवयित्रियों की तरह कविता को सुंदर बनाने के लिए कल्पना का सहारा नहीं लिया। बल्कि अपनी बात को साफ शब्दों में प्रस्तुत किया है।

¹⁵³ Oh pray my wings are gonna fit me well- maya angelou, p-18

¹⁵⁴ African-american women's literature- ed. angelyn Mitchell, p-73

एलिस वॉकर का पूरा जीवन और कार्य स्त्री, अश्वेत लोगों और न्याय, पर्यावरण, संरक्षण, भूमंडलीकरण के विषय से जुड़ा हुआ है। वे अपने लोगों, अफ्रो-अमेरिकन का इतिहास दुनिया के साथ बांटने को प्रतिबद्ध हैं। लोगों को अमेरिका में अश्वेत लोग खासकर अश्वेत स्त्रियों के योगदान के विषय में बताना चाहती हैं। गहराई से आध्यात्मिकता से जुड़ी एलिस अपने लेखन में भी इसे शिद्दत से अभिव्यक्त करती हैं। कवयित्री अपनी कविता 'Listen' में लिखती हैं-

“listen

I never dreamed

I would learn to love you so.

You are as flawed

As my vision

As short tempered

As my breath

Every time you say

You love me

I look for shelter.”¹⁵⁵

इन पंक्तियों में कवयित्री उस प्यार की तलाश में हैं, जो उन्हें मिल कर भी मिल नहीं पा रहा है। अफ्रो-अमेरिकन स्त्री होने के कारण समाज ने उन्हें कभी अपनाया नहीं। वह भी अपना एक घर-परिवार चाहती हैं। परंतु समाज उन्हें कभी सभ्य समाज के शामिल ही नहीं करता है। स्त्री होने के कारण उन्हें हर जगह से केवल अन्याय और अत्याचार ही सहना पड़ता है। कविता का शीर्षक 'सुनो' जो अपने प्यार को अपने वजूद का एहसास दिला रही है।

¹⁵⁵ Her blue body everything we know- alice walker, p-324

कवयित्री Gwendolyn brooks की कविता 'Queen of the Blues' में लिखती हैं-

“show me a man

What will love me

Till I die.

Now show me a man

What will love me

Till I die.

Can't find no such a man

No matter how hard

You try.

Go long, baby.

Ain't a true man left

In chi”¹⁵⁶

कवयित्री प्रश्न पूछती है कि उन्हें वह पुरुष चाहिए जो सच्चे मन से उनके साथ रहे। जो जीवन के अंत तक उनका साथ निभाए। परंतु मैं, जितनी भी कोशिश करूँ मुझे वह इंसान मिलता ही नहीं है। अफ्रो-अमेरिकन स्त्री के जीवन में सच्चा प्रेम वह तलाश है, जो कभी खत्म नहीं होती है। गुलामी की जंजीरों को तोड़ दिया पर जीवन के अकेलेपन को तोड़ नहीं सकी। सीमोन द बोउवार कहती हैं कि “औरत तथा एक नीग्रो में मौलिक फर्क तो यह है कि जहां नीग्रो विद्रोह की भावना के साथ समर्पित होता है। बड़ी से बड़ी सुविधा में भी क्रांति की भावना बनाए रखता है, वहीं औरत को यह अपराधीता की प्रेरणा मिलती है।”¹⁵⁷

¹⁵⁶ The world of Gwendolyn brooks - Gwendolyn brooks, p-41

¹⁵⁷ सीमोन द बोउवार- स्त्री:उपेक्षिता, पृ.142

3.2.5. मातृत्व की भावना

यह एक आम धारणा है कि मातृत्व प्राकृतिक धर्म है और एक सामाजिक जिम्मेदारी है, लेकिन इस जिम्मेदारी को निभाने के क्रम में महिलाएं क्या-क्या झेलती हैं? किन-किन हालातों से गुजरती हैं? अवहेलनाओं एवं अपमानों को कैसे रहती हैं? और पुरुष की क्या भूमिका होती है? आदि सवालों के स्पष्ट जवाब नहीं हैं। इसलिए नारीवादी कविता यह मांग करती है कि महिलाओं के लिए पुनरुत्पत्ति की आजादी हो, यानी बच्चों को पैदा करने का अधिकार उनके पास हो और समाज में ऐसा वातावरण पैदा हो जिसमें महिलाएं अपने शरीर और शारीरिक धर्मों के प्रति प्यार कर सकें तथा पुनरुत्पत्ति कार्य को एक मधुर अनुभूति के रूप में संघर्ष के तौर पर स्वीकार कर सकें। नारीवादी आंदोलन यह स्पष्ट करता है कि बच्चों को पैदा करना और मातृत्व एक नहीं है। यह दोनों अलग-अलग विषय हैं। बच्चों को पैदा करना महिलाओं की एक सामाजिक जिम्मेदारी है। नारीवादी आंदोलन यह घोषित करता है कि स्त्रियों को यह चुनने का अधिकार हो कि बच्चे को पैदा करें या ना करें। और वास्तव में यह उनके मानवाधिकारों का एक हिस्सा है। इसका मतलब यह कतई नहीं समझना चाहिए कि नारीवादी कविता पुनरुत्पत्ति के विरुद्ध है। बिल्कुल नहीं। नारीवादी कविता मातृत्व की मधुरता को सानंद जरूर स्वीकार करती है। लेकिन उसके पीछे निहित शारीरिक हिंसा और महिलाओं की इच्छा के बगैर मातृत्व की स्थिति का विरोध करती है।

सिमोन द बोउवार का कहना है “स्त्री मां बनते समय अपनी मां की भूमिका में आ जाती है यह उसके जीवन का एक नया आरंभ होता है। प्रसन्नतापूर्वक स्वेच्छा या घर धारण करने वाली स्त्री संतान को कभी बोझ नहीं समझती। स्त्री और उसकी संतान के पिता का संबंध भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है।”¹⁵⁸

¹⁵⁸ स्त्री:उपेक्षिता- प्रभा खेतान, पृ.23

नारीवादी आंदोलन ने इस बात का खंडन किया है कि स्त्री बच्चों को पैदा करने वाली मात्र यंत्र है। कवयित्री एलिस वॉकर अपनी कविता 'we have a beautiful mother' में लिखती है-

“we have a beautiful
Mother
Her green lap
Immense
Her brown embrace
Eternal
Her blue body
everything we know”¹⁵⁹

मार्गरेट वॉकर की 'जुबली' (1977) एक 17 साल की उम्र में मां बनी बेरी की कहानी है। बेरी एक नाबालिक लड़की जो अपने बच्चों को खुद से ज्यादा चाहती थी। वह अपने बच्चों को गुलामी की जंजीरों से मुक्ति दिलाने के सदा प्रयत्न करती रही। वहां अपने दोनों बच्चे जिम और मीना को अपने अस्तित्व की पहचान एक घर और प्यार करने वाला पिता के लिए बेरी अपने दोनों बच्चों को जीवन के जटिलताओं का सामना करना सिखाती है। उसने 19 साल की उम्र में ब्राउन से विवाह किया। बेरी एक विचारशील, अच्छा खाना बनाने वाली और आदर्श शील माँ थी। उसने अपने जीवन में कड़ी मेहनत की, ताकि अपने दोनों बच्चों को अच्छे स्कूल में पढ़ा सके। मार्गरेट वॉकर लिखती हैं कि, “peasant and slave, unlettered and untutored, she was nevertheless the best true example of the motherhood of her race, an ever present assurance that nothing could

¹⁵⁹ Her blue body everything we know-alice walker, p.-460

destroy a people whose sons had come from her loins.”¹⁶⁰ अर्थात् बिना सोचे समझे यह कहा जा सकता है कि किसान और गुलाम अपने नस्ल की मातृत्व का सबसे अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं और उनकी गोद से आये हुए बेटे को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता है।

अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों में यह बहुत देखा गया है कि किस तरह अपने बचपन की यादें उनके जीवन के साथ जुड़ गई हैं। माता-पिता का एक साथ न रहना दोनों का आपस में झगड़ना आदि चीजें उनके मानसिकता पर असर डालती हैं। इस विषय पर सिमोन द बोउवार भी अपने पुस्तक में लिखती हैं कि, “मनोविश्लेषण के अनुसार बच्चों को सबसे बड़ा खतरा माता-पिता से ही रहता है। भैंस की मानसिक विकृति, घुटन और मनो ग्रंथि का मुख्य कारण पारिवारिक जीवन में ही निहित होता है। वे माता-पिता, जिनमें आपस में मतभेद हैं, जो स्वयं झगड़ते हैं, कभी भी बच्चों के लिए अच्छे साथी नहीं हो सकते। वे निराश और विकृत मनो स्थिति के साथ ही अपनी संतान के साथ बर्ताव करते हैं।”¹⁶¹

स्त्री के साथ मातृत्व जुड़ा हुआ है। संतान स्त्री का विस्तार होती है। वह शिशु को गर्भ में रखती है। अपनी रक्त मज्जा से गर्भस्थ शिशु का पोषण करती है। जन्म के बाद वह अपना दूध पिला कर उसको पालती है। प्रसव अपने आप में स्त्री के लिए एक अनोखा अनुभव है। प्रसव के दौरान स्त्रियाँ अनजान स्त्री की सहायता के लिए आगे आ जाती हैं। कवयित्री लूसी किफ्टन का कहना है कि, “Clifton claims that her mother had burned her poems because her husband Samuel didn’t want her to publish them, a lot of people now might not understand that, but then a wife obeyed. Clifton said, ‘I can forgive my father for driving us crazy. He was driven crazy,

¹⁶⁰ Jubilee- Margaret walker, p-407

¹⁶¹ स्त्री:उपेक्षिता- प्रभा खेतान, पृ.252

you known. But I cannot forgive him for driving my mother mad. And she was probably always on the edge.’”¹⁶² अर्थात् क्लिफ्टन का दावा है कि उनकी माँ ने उसकी सारी कविताओं को जला दिया था क्योंकि उनके पति सैमुएल उन्हें प्रकाशित नहीं करना चाहते थे, बहुत से लोग अब शायद यह नहीं समझ सकते हैं। क्लिफ्टन ने कहा, ‘मैं अपने पिता को हमें पागल करने के लिए माफ कर सकती हूँ, आप जानते हैं। लेकिन मैं अपनी माँ को पागल करनेके लिए उन्हें माफ नहीं कर सकती हूँ’

कवयित्री माया एंजेलो की अपनी कविता ‘come. And be my baby’ में कहती हैं-

“some prophets say the world is

Gonna end tomorrow

But others say we’ve got a week or two

The paper is full of every kind of blooming horror

And you sit wondering

What you’re gonna do.

I got it.

Come. And be my baby.”¹⁶³

माया एंजेलो ने अपनी आत्मकथा में मातृत्व का उदाहरण प्रस्तुत किया है। अफ्रो-अमेरिकन स्त्री आत्मकथा में उन्होंने जो मातृत्व का सर्जनात्मक और संपूर्ण व्यक्तिगत का किरदार निभाया है। वह किसी भी दूसरी रचना से उन्हें श्रेष्ठ बनाता है। माया अपनी आत्मकथा में कहती हैं “no matter what it cost in loneliness, I was doing the good-mother thing to leave my son at home. Thus I had soothed my guilt, never

¹⁶² Her life and letters- mary jane lupton, Lucille Clifton, p- 14

¹⁶³ Oh pray my wings are gonna fit me well- maya angelou, p -16

admitting that I was reveling in the freedom from the constant nuisance of a small child's chatter.”¹⁶⁴ अर्थात् कोई फर्क नहीं पड़ता है कि अकेलेपन में क्या खोया, मैं अपने बेटे को घर पर अकेला छोड़ कर एक अच्छी माँ की तरह काम पर जाती थी। इस बात के लिए अपना अपराध स्वीकार करती है।

अमेरिका में गुलाम को बच्चे पैदा करने के बाद उन्हें प्यार करना, लालन पालन का हक उसे बिल्कुल न था। उसके बच्चे कभी भी उससे छीन कर बेचे जा सकते थे। भले ही उसका अपना श्वेत मालिक या कोई अन्य श्वेत व्यक्ति इन बच्चों का पिता हो। क्योंकि मान्यता के अनुसार बच्चों का जीवन माँ की नियति से जुड़ा होता था। यह कानून था। एक बार बच्चे बिक गए तो न जाने कहां जाएं। मायानी गुलाम स्त्री फिर उन्हें देख पाने की आशा नहीं कर पाती थी। वहां अपने बच्चों का हक मारकर मालिक के बच्चों को दूध पिलाती थी पर मालिक के उन बच्चों पर उसका कोई हक नहीं होता था।

कवयित्री ग्वेन्डोलीन ब्रूक्स अपनी कविता ‘the mother’ में लिखती हैं कि,

“abortions will not let you forget.

You remember the children you got that you

Did not get,

The damp small pulps with a little or with

No hair

The singers and workers that never handled

the air”¹⁶⁵

¹⁶⁴ Women and her family- alladi uma, p-57-58

¹⁶⁵ The world of Gwendolyn brooks- Gwendolyn brooks, p-5

ग्वेन्डोलिन ब्रूक्स की इस कविता की तरह टोनी मॉरिसन ने अपने उपन्यास 'बिलवड' में मातृत्व की भावना को व्यक्त किया है। “ ‘बिलवड’ में डेनवर बिलवड को रजाई ओढ़ाती है। सीने पिरोने का रूपक अफ्रो-अमेरिकन महिला साहित्य का एक प्रमुख रूपक है। यह अफ्रो-अमेरिकन जीवन की दर्दनाक कहानी से पाठकों को परिचित कराता है। यह स्त्री की अस्मिता, आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता का प्रतीक है। निजी-सामाजिक कहानियाँ पिरोना, सांस्कृतिक-ऐतिहासिक अनुभवों को लेखन में ढालना, बिखरे हुए सूत्रों को एक बार में गूँथना भी अफ्रो-अमेरिकन साहित्य में टांके डालने के अर्थ में प्रयोग होता है।”¹⁶⁶

गुलाम स्त्री का अपने बच्चों पर कोई हक नहीं होता था। पहली बात तो कई बार उसे अपने बच्चों के पिता का पता नहीं होता। गुलाम के बच्चों का पिता जेफरसन जैसा व्यक्ति हो सकता था। वह पत्नी-प्रेमिका ना होकर केवल 'ब्रीडर' मालिक के दांतों की संख्या बढ़ाने के लिए बच्चे पैदा करने की मशीन होती थी। मालिक की कोशिश होती की गुलाम स्त्री से अधिक से अधिक बच्चे पैदा करवा लिए जाएँ। कई बार 15-17 बच्चे। अक्सर बच्चे बलात्कार का प्रतिफल होते। कवयित्री ऑड्रे लॉर्ड अपनी कविता 'And what about the children' में कहती हैं-

“now we’ve made a child.

And the dire predictions

Have changed into

Wild

Grim

Speculations.

Still the negatives

¹⁶⁶ अफ्रो-अमेरिकन साहित्य स्त्री स्वर- विजय शर्मा, पृ. 51

Are waiting

Watching

And the relatives

Keep right on touching.....”¹⁶⁷

ममता प्रेम का उदात्त और विशुद्ध रूप है। श्री जीवन का यह मातृत्व का महत्वपूर्ण पक्ष सब परिवेश और सब स्त्रियों के लिए समान नहीं है। अफ्रो-अमेरिकन साहित्य इसे बहुत अच्छी तरह प्रदर्शित करता है। एक श्वेत स्त्री और एक गुलाम स्त्री के लिए मातृत्व का अर्थ बिल्कुल भिन्न होता है। श्वेत स्त्री अपने पति से संतानोत्पत्ति करती थी मगर वह अपने बच्चे का जन्म के बाद पालन-पोषण नहीं करती थी। बच्चे के पालन-पोषण का दायित्व दास स्त्री पर होता था। गुलाम दासी ही श्वेत बच्चों को अपना दूध पिलाती। अपने बच्चों का हक मारकर दूसरों के बच्चों को अपना दूध देती। परंतु फिर भी उन्हें माँ का दर्जा नहीं दिया जाता था। टोनी मॉरीसन 'सॉन्ग ऑफ सोलोमोन' में लिखती हैं, “you see, daling, that there is the only child I got.....women are foolish, you know, and mamas are the most foolish of all.....mama's get hurt and nervous when somebody don't like they children.....”¹⁶⁸ अर्थात् आप देख सकते हैं कि, मैं अपनी माँ की अकेली संतान हूँ। दुनिया सोचती है कि स्त्रियाँ मूर्ख होती हैं और मामा तो सबसे ज्यादा मूर्ख है।

मातृत्व की भावना को अफ्रो-अमेरिकन स्त्री रचनाकारों ने अपनी कई रचनाओं में दिखाया है जैसे- मार्गरेट वाकर की 'जुबली'(1977), लुइस मेरी वेथर की 'डैडी वाजे ए नंबर रनर'(1977), टोनी मॉरीसन की 'द ब्लूएस्ट आय' (1972), 'सॉन्ग ऑफ सोलोमोन' (1977), एलिस वॉकर की 'द थर्ड लाइफ ऑफ ग्रेंज कॉपलेंड' (1970), 'मेरिडियन' (1977) आदि प्रमुख रूप से एक उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। “motherhood incarcerated by the laws

¹⁶⁷ The poetry of black American – ed. Arnold adoff, p-247

¹⁶⁸ Women and her family- alladi uma, p-60

and practices of ownership, a dual patrimony that could not, either way, speak its name, woman undifferentiated by type and severity, women as ‘men’, men as ‘women’, or the loosening the cinctures of gender, the pregnant body of the bonded woman ‘split’ into social economy between the belly and the unborn and the penally constituted backside.”¹⁶⁹ अर्थात् मातृत्व को कानूनों और स्वामित्व के तरीकों से अवगत कराया जाना चाहिए। यह एक दोहरी पैत्रिकता है जो पुरुष के रूप में महिला और महिला के रूप में पुरुष को सामाजिक अर्थव्यवस्था में बंधी हुई है।

कवयित्री रीटा डॉव की कविता ‘Motherhood’ मातृत्व भाव को सही मायने में दिखा रहा है।

“she dreams the baby’s so small she keeps

Misplacing it- it rolls from the hutch

And the mouse carries it home, it disappears

With his shirt in the wash.

The she drops it and it explodes

Like a watermelon, eyes spitting.”¹⁷⁰

गुलामी से मुक्ति के लिए बरसों की योजना, प्रखर कल्पनाशक्ति और अपरिमित धीरज की आवश्यकता होती है। जिसके बल पर वह गुलामी से भाग निकलने का मार्ग ढूँढ़ लेती है। लेखिका हैरियट जैकब्स को अपने बच्चों के दास बना लिए जाने का भय था। इसलिए वह कई सालों तक एक गड्ढे में छुपी रही। अपने साहसिक अभियान का वर्णन मेरी जैक्सन ने भी

¹⁶⁹ African-american women’s literature- ed. Angelyn Mitchell, p-99

¹⁷⁰ Selected poems- rita dove, p-185

किया है। वह लिखती है “माँ को कैप्टन प्लासियों और मेरी बहन को बेंजामिन बोर्ड के पास बेच दिया गया। मुझे कैप्टन फिस्बी के पास बेचा गया। मां और कैप्टन ने आठ सौ डालर में खरीदा। मेरी बहन जो 16 साल की थी, को साढ़े आठ सौ डालर और मुझे नौ सौ डालर में बेचा गया। यह 1863 की बात है। अपने परिवार में मुझे सबसे ज्यादा दुख झेलना पड़ा। मुझे एक भी दिन भरपेट खाना और ठंड से बचने का कोई तरीका नहीं मिला। मैं जिस घर में रहती थी, वह बहुत बड़ा था पर वहां मुझे कभी आग सेंकने का अवसर नहीं मिला... छः महीने में उस जगह से भागने की कोशिश करती रही। मैं सुबह चार बजे उठकर इस ताक में रहती कि मुझे मदद करने वाला कोई मिल सके। मुझे पंद्रह दिन में एक बार तीन मील की परिधि तक जाकर वापस लौटने की इजाजत मिली हुई थी। ऐसे में एक मौके का फायदा उठाकर मुझे आखिर में सफलता मिली।”¹⁷¹

3.2.6. दैहिक शोषण

स्त्री दमन के पीछे पुरुष का प्रमुख अस्त्र है देह। स्त्री को अपना गुलाम बनाए रखने के असीम तानाशाही के अधिकार पुरुष ने अमेरिकन सामाजिक परंपरा से प्राप्त किया है। फिर शरीर के नाम पर स्त्री को नियंत्रित किया है। “most afro-american women novelists of the twentieth century are concerned with the plight of the black woman, her position within the family, in society, and the world at large. As her position within the family is the focal point of this unending spiral of relationships, this is their primary concern. Maya angelou, even if she talks about the effects of rape on a young black girl, or the impact of inter-racial marriage, deals in her autobiographical sequel mainly with the

¹⁷¹ मेटी जैक्सन की कहानी - रूपांतर सुखजोत, अन्यथा पत्रिका अंक - जून 2000, पृ- 240

life of a black family.”¹⁷² अर्थात् बीसवीं शताब्दी की अधिकांश अफ्रो-अमेरिकन स्त्री उपन्यासकारों ने अश्वेत स्त्री की दुर्दशा, परिवार में उनकी स्थिति, समाज और बड़े पैमाने पर दुनिया से जुड़ी रचनाओं की रचना की हैं। जैसा कि, परिवार के अंदर उनकी स्थिति को केंद्र में रखकर उसे प्राथमिकता दी है। माया एंजेलो एक युवा अश्वेत लड़की पर हुए बलात्कार और अंतर-जातीय विवाह से हुए प्रभाव के बारे में बात करती है। मुख्य रूप से, एक अश्वेत परिवार के जीवन के साथ उसकी आत्मकथात्मक की अगली कड़ी का सौदा करती है।

कवयित्री ऑड्रे लोर्ड अपनी कविता ‘suffer the children’ में कहती हैं-

“pity for him who suffers from his waste.

Water that flows from the earth

For lack of roots to hold it

And children who are murdered

Before their lives begin.”¹⁷³

कवयित्री उन स्त्रियों के बारे में बोल रही हैं जो शारीरिक शोषण के कारण अपने बच्चों को खो देती हैं। स्त्री के शोषण की कोई उम्र नहीं होती है। उसका स्त्री रूप में जन्म लेना ही उसका भाग्य निर्धारित करना है। इस संदर्भ में आर्डर लॉर्ड का यह कथन महत्वपूर्ण है कि, “जब मैं खुद को ‘मैं एक अश्वेत नारीवादी हूँ’ कहती हूँ तो यह जानती हूँ कि मेरी शक्ति और मेरे साथ हुए उत्पीड़न, दोनों मेरे अश्वेत और स्त्री होने के कारण हैं और इसलिए इन दोनों मोर्चों पर मेरे संघर्ष हैं।”¹⁷⁴

मनुष्य अपने प्रारंभिक रूप में दूषित है। उसका जन्म उसको केवल मृत्यु की ओर ही नहीं, बल्कि विनाश की ओर भी ले जाता है। स्त्री हमेशा अन्य रही है। इसलिए स्त्री और पुरुष

¹⁷² Woman and her family- alladi uma, p-16

¹⁷³ The poetry of black American- ed. Arnold adoff, p- 248

¹⁷⁴ www.buddhubaksa.com

दोनों एक समान शरीर रूप नहीं है। ईसाइयों ने भी स्त्री को देह- रूप माना है। संसार की सारी लाल साईं नारी में मूर्त रूप हैं। वह शरीर और शैतान एक साथ है। चर्च के सभी फादर कहते हैं कि नारी ने ही आदम को पाप की ओर अग्रसर किया। टर्टूलियन कहते हैं, “नारी, तुम शैतान के पास पहुंचने का मार्ग हो। जिस पर स्वयं शैतान प्रत्यक्ष रूप से आक्रमण न कर सके, उस पुरुष को तुमने प्रलोभीत किया। तुम्हारे कारण ईश्वर के पुत्र को मरना पड़ा। तुम्हें तो हमेशा शोक चिथड़े कपड़ों में रहना चाहिए।”¹⁷⁵

दैहिक शोषण का केवल अर्थ बलात्कार या यौन शोषण नहीं है। बल्कि यहां शारीरिक रूप से मारना पीटना भी शामिल है। अमेरिका के श्वेत स्त्री एवं पुरुष दोनों ने अश्वेत स्त्रियों को दैहिक शोषण के द्वारा उन्हें पीड़ित किया। कवयित्री Nikki Giovanni अपनी कविता ‘Dreams’ में लिखती हैं कि,

“in my younger years

Before I learned

Black people aren’t

Suppose to dream

I wanted to be

A raelet”¹⁷⁶

अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ इतिहास एवं परंपरा के प्रति क्रोध का दस्तावेज हैं। पुरुषवादी समाज ने जिन-जिन चीजों का निषेध किया है। उन्हीं चीजों को लेकर कविताएं लिखी गई हैं। देह के नाम पर स्त्री को कैसे वंचित किया जा रहा है। इसका बखूबी वर्णन इन कवयित्रियों ने किया है। ‘टोनी मॉरीसन की ‘बिलवड’ में सेथे अपनी यौनिकता को पहचानती

¹⁷⁵ स्त्री उपेक्षित- सीमोन द बौवार, पृ.91

¹⁷⁶ The poetry of black American- ed. Arnold adoff, p- 454

है। पॉल डी के योन नियंत्रण को स्वीकार कर उसका साथ देती है। जैकब्स बहुत पहले लिख रही थीं। भरी गुलामी के समय लिख रही थीं, भेदभाव के समय में लिख रही थीं। इसलिए अपने यौन संबंधों के विषय में कहती हैं कि इसके स्मरण से मैं दुख और शर्म से भर जाती हूँ। इसे आपको बताने में मुझे कष्ट होता है।”¹⁷⁷ कवयित्री एलिस वॉकर अपनी कविता ‘who?’ में लिखती हैं कि,

“Not I, said the people.

Not I, said the trees.

Not I, said the waters.

Not I, said the rocks.

Not I, said the air.

Moon!

We hoped

You were safe.”¹⁷⁸

यहाँ यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि युगों-युगों से पुरुषों द्वारा किए गए स्त्री शरीर के वर्णन में और नारीवादी कवित्रियों के वर्णन में बहुत अंतर है। स्त्री शरीर के साथ जुड़ी हिंसा और शरीर से वह जिस पीड़ा का अनुभव करती है, उसका चित्रण नारीवादी कविताओं में हुआ है। सिमोन द बोउवार लिखती है “पुरुष जब नारी को अपनी संपत्ति के रूप में प्राप्त करता है, तो उसकी यही इच्छा रहती है कि नारी केवल दे ही रहे। पुरुष नारी के शरीर में नारी के व्यक्तित्व का विकास नहीं देखना चाहता। वह आने में सीमित रहे, संसार में अन्य किसी से संलग्न न रहे।”¹⁷⁹

¹⁷⁷ अफ्रो- अमेरिकन साहित्य स्त्री स्वर - विजय शर्मा, पृ 40

¹⁷⁸ Her blue body everything we know- alice walker, p- 378

¹⁷⁹ स्त्री उपेक्षिता- सिमोन द बोवार, पृ 85

नारी केवल पुरुष की सामाजिक स्थिति को ही पुष्ट नहीं बनाती, बल्कि उसके गर्व की प्रतीक है। नारी पर अधिकार जमा कर पुरुष प्रसन्नता का अनुभव करता है। नारी के व्यक्ति रूप के साथ पुरुष केवल काम क्रीडा ही नहीं करता, बल्कि उसे शारीरिक शोषण का भी शिकार बनाता है। “autobiographers Lucille Clifton and June Jordan also suffered at the hands of abusive fathers. Clifton’s biographer, M.J.Lupton, writes that Clifton was sexually abused but not raped by her father, Samuel Sayles. Jordan was not molested sexually but she was beaten by both parents, often pummeled by her father’s fists.”¹⁸⁰ अर्थात् आत्मकथाकार लूसी क्लिफ्टन और जून जॉर्डन भी अपमानजनक रूप से अपने पिता के हाथों से पीड़ित हुई हैं। क्लिफ्टन के जीवनी लेखक एम.जे.ल्यूपटन ने लिखा है कि क्लिफ्टन का यौन शोषण किया गया था लेकिन उसके पिता सैमुएल सैल्स ने बलात्कार नहीं किया। जॉर्डन का यौन शोषण तो नहीं हुआ लेकिन वह अपने दोनों मात-पिता द्वारा पीटी जाती थी, अक्सर उसके पिता जमकर पिटते थे। कवयित्री माया एंजेलो अपनी कविता ‘the lie’ में लिखती हैं-

“today, you threaten to leave me.

I hold curses, in my mouth,

Which could flood your path, sear

Bottomless chasms in your road,

I keep, behind my lips,

Invectives capable of tearing

The septum from your

¹⁸⁰ African-american women’s literature- ed. Angelyn Mitchell, p-144

Nostrils and skin from your back.”¹⁸¹

कवयित्री माया एंजेलो ने अपने जीवन में बहुत संघर्ष किया है। जब वे करीब छः साल की थीं। तब उसकी मां के प्रेमी मिस्टर फ्रीमैन ने उसका बलात्कार किया। फ्रीमैन ने कवयित्री को धमकी दी कि वह किसी को बताएगी तो वह बेली को मार डालेगा। जब माया एंजेलो आत्मकथा लिखना चाहती थी तब सोचा कि, उन्हें मनुष्य की आत्मा का परीक्षण करना होगा। आत्मा जो सदा ऊपर उठती है, भविष्य की कठिनाइयों के बावजूद जो सदैव चमकती है। शारीरिक दुख दर्द और मानसिक क्रूरता से ऊपर उठती है। जो बलात्कार और दुर्व्यवहार के बाद भी ऊपर उठती है और किसी प्रकार के शोषण का शिकार होने से इनकार करती है। जो उठती है और आगे आगे बढ़ने को तैयार रहती है। वह अपनी आत्मकथा की पहली पंक्ति लिखती है, “मुझे क्या देख रहे हो, मैं यहाँ रहने नहीं आई हूँ।”¹⁸²

उनकी एक प्रसिद्ध कविता का शीर्षक ही है ‘स्टील आई राइज़’। हैरियट जाकब्स लिखती हैं “I have not written my expriences in order to attract attention to myself; on the contrary, it would have been more pleasant to me to have been silent....but I do earnestly desire to arouse the women of the north to a realizing sense of the conditions of two millions of womwn.....still in bondage.”¹⁸³ अर्थात् मैंने खुद पर ध्यान आकर्षित न करने के लिए अपने अनुभवों को नहीं लिखा है। इसके विपरित, मेरे लिए चुप रहना अधिक सुखद रहा। लेकिन मैं उत्तर की स्त्रियों को दो करोड़ महिलाओं की स्थिति का एहसास दिलाने के लिए ईमानदारी से काम करती हूँ।

समाज में स्त्री की स्थिति विचित्र है। पुरुष उसे उसकी स्वतंत्रता देता है। पुरुष अपनी दुनिया में नारी को सेविका के रूप में प्रवेश देता है। इस प्रकार उसके सर्वोपरि रूप को निराशा

¹⁸¹ And still I rise- maya angelou, p-89

¹⁸² अफ्रो-अमेरिकन साहित्य स्त्री स्वर - विजय शर्मा, पृ - 157

¹⁸³ African-american women's literature- ed. Angelyn Mitchell, p- 24

मिलती है। यह स्वतंत्रता मानो अभिशाप हो। स्त्री यह स्वतंत्रता नहीं चाहती है। वहां अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही है। जो उसे समाज में एक पहचान दिला सके। कवयित्री रीटा डॉव अपनी कविता 'variation on pain' में लिखती हैं कि,

“two strings, one pierced cry.

So many ways to imitate

The ringing in his ears.

He lay on the bunk, mandolin

In his arms. Two strings

For each note and seventeen.”¹⁸⁴

इन कविताओं में स्त्री शरीर से संबंधित काव्य में प्रौढ़ होने का, गर्भपात करवाने का, भोग की वस्तु के रूप में देखने की मानसिकता का और संभोग श्रृंगार में पुरुष को पाशविक आनंद को चित्रित करने के संदर्भ अधिक हैं। शारीरिक हिंसा और मन के बीच के नाजुक संबंध एवं उससे उत्पन्न व्यथा कवयित्री अपने कविता में दिखाती है। एलिस वॉकर अपने उपन्यास 'The third life of gänge Copeland (1970)' में नायिका मार्गरेट के जीवन को व्यक्त करती हुई कहती हैं “her husband gänge’s behaviour towards her is deplorable. He treats her like an object he can trample on- beating her one moment, making love to her the next. His incompetency in dealing with the white world makes him take out his frustrations on her. Margaret, like a true obedient wife, puts up with his game of love and berating.”¹⁸⁵ अर्थात् पति गंग्रे का व्यवहार उसके प्रति नीचता का बोध करता है। वह उसे एक वस्तु की तरह मानता था। जिसे वह किसी भी पल हरा सकता है। श्वेत दुनिया से निपटने में उनकी अक्षमता उन्हें उस

¹⁸⁴ Selected poems- rita dove, p-143

¹⁸⁵ Woman and her family- alladi uma, p- 32

पर अपनी हताशा का कारण बनाती है। मार्गरेट, एक सच्ची आज़ाकारी पत्नी की तरह उससे प्रेम करती थी।

3.2.7. बहनापा

अमेरिकी स्त्रियों के बीच बहनापा विशिष्ट है। इसकी शुरुआत नारीवादी और सिविल राइट्स आंदोलन के दौरान हुई। माना जाता था कि बहनापा सारी स्त्रियों के लिए एक जैसा है। मगर ऐसा हुआ नहीं, श्वेत स्त्रियाँ अश्वेत स्त्रियों से भावात्मक स्तर पर पूरी तरह से नहीं जुड़ सकीं। हाँ, अश्वेत स्त्रियों के बीच ‘सिस्टर हुड’ खूब पनपा। अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में बहनापा के संदर्भ में कई कविताएं लिखी गई हैं। कवयित्री सोनिया सन्चेज ने अपनी कविता ‘to all sisters’ में लिखती हैं कि,

“hurt
U worried abt a
Little hurting.
Man
Hurt ain’t the bag u
Shd be in.
Loving is
The bag man.”¹⁸⁶

कविता में कवयित्री अपने सभी अफ्रो-अमेरिकन बहनों को संबोधित करते हुए कहती है, हमें समाज में कभी चोट पहुंचाया है। तुम्हें इतने से चोट से दुखी मत होना। हमारे जीवन में आगे दुखों की पोटली है। हम एक-दूसरे का सहारा बनेंगे। अश्वेत स्त्रियों को बहुत से जटिल

¹⁸⁶ The poetry of black America- ed.arnold adoff, p-290

परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है। जिस कारण वह एक दूसरे का साथ कभी नहीं छोड़ती हैं। घर में भाई-बहन और बहन-बहन का रिश्ता भिन्न है। बहुत सी बातों को हम अपने भाई के साथ नहीं कर सकते हैं परंतु बहनों का रिश्ता कुछ खास है। “The bond between a sisters is equally central to the afro-american women. Lack of concern is only a façade. Indifference seems the motto of the peace family in morrison’s sula (1975).”¹⁸⁷ अर्थात् बहनों के बीच का संबंध अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों के लिए समान रूप से केंद्रीय में है। चिंता की कमी लेवल एक पहलू है उदासीनता। मॉरिसन की ‘सुला’ में एक शांति परिवार का आदर्श रूप प्रस्तुत किया गया है।

एलिस वॉकर अपनी कविता ‘Telling’ में लिखती हैं-

“I want to be with you
In the pain and sadness
Or relief, of abortion
In the pain and joy
Or horror, of birth.
Through my words
Little sister
I am taking your hand in mine.
I am telling you
You will never again
Be alone.”¹⁸⁸

¹⁸⁷ Women and her family- alladi uma, p- 84

¹⁸⁸ Her blue body everything we know- alice walker, p-418

इसी संदर्भ में विजय शर्मा लिखती है कि, “अफ्रो-अमेरिकन साहित्य का यह एक खास अंग है। ‘द कलर पर्पल’ में बहनापा है। बहनापा स्त्रियों को शक्ति प्रदान करता है। उपन्यास में बहनापा आंदोलन की भांति नहीं आया है, मगर व्यवहार में यह है। उसका सैद्धांतिक पक्ष ना दिखाकर लेखिका उसका व्यवहारिक उपयोग दिखाती हैं। इसमें बहनापा केवल स्त्रियों के बीच दिखाया गया है।”¹⁸⁹ एलिस वॉकर अपने इस उपन्यास में शुग और सीली के बीच बहनापा को पनपते दिखाती हैं। यह बहनापा समलैंगिकता को पहुंचता है। शुभ का संघ साथ सीली को अपनी पहचान दिलाता है। उसे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाता है। “Audre lorde’s openness about her lesbianism undoubtedly helped facilitate what christion notes as one radical change in the fiction of the 1980s –the overt exploration of lesbian relationships among black women and how these relationships are viewed by black communities.”¹⁹⁰ अर्थात् ऑर्डे लोर्डे ने खुलेपन से समलैंगिकता के बारे में बताया है। 1980 के दशक के कथा साहित्य में एक कट्टरपंथी परिवर्तन के रूप में ईसाई नोटों को अश्वेत स्त्रियों के बीच समलैंगिक संबंधों की अधिक खोज की और साथ ही इन संबंधों को ब्लैक समुदायों द्वारा किस प्रकार दिखाया जाता है वह भी दिखाया गया है।

पुरुषोचित वेशभूषा धारण करने वाली और पुरुषों की तरह दिखने की कोशिश करने वाली स्त्री को हम समलिंगी कामुक स्त्री कहते हैं। उसके पुरुषों जैसे रूप से ऐसी शंका होती है कि उसके हार्मोन अस्वाभाविक हैं। समलिंगी कामुकता को पुरुषत्व की बराबरी में रखना गलत होगा। इसमें रहने वाली अनेक स्त्रियों में समलिंगी कामुकता होती है। पुरुषोचित गुणों वाली कुछ स्त्रियों उभयलिंगी कामुक होती हैं। यौन वैज्ञानिकों और चिकित्सकों के अनुसार

¹⁸⁹ अफ्रो-अमेरिकन साहित्य स्त्री स्वर, विजय शर्मा, पृ - 284

¹⁹⁰ Christion- trajectories, p-240

समलैंगी स्त्रियों की शारीरिक रचना दूसरी स्त्रियों से भिन्न नहीं होती। शरीर रचना के आधार पर उसकी कामुकता का निर्णय करना सहज नहीं।

कवयित्री Gwendolyn Brooks अपनी कविता 'Love note I: surely' में लिखती हैं कि,

“surely you stay my certain own,

You stay my you

All honest, lofty as a cloud.

Surely I could come now

And find you high,

As mine as you ever were”¹⁹¹

‘सिस्टरहुड’, बहनापा अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखन की एक खासियत है। बहनापा स्त्रियों को सहारा देता है, विकसित होने में सहयोग देता है। इसके साथ बहनापे से बच्चों को खूब लाभ पहुँचता है। ये स्त्रियों एक-दूसरे के बच्चों की देखभाल भी करती है। आर.के.धवन लिखते हैं कि, “Radical feminism with an orientation towards exclusive communities or in alicia walker’s term ‘sisterhood’ is encouraged by the perspective of woman as sufferens though they have the power, strength, ability and efficiency to be other wise. Alice walker’s term ‘womanist’ to her, creates in woman an awareness of their capability but it is much more than that.”¹⁹² अर्थात् विशिष्ट समुदायों की ओर उन्मुखीकरण और एलिस वॉकर की ‘सिस्टरहुड’ में कट्टरपंथी नारीवाद को स्त्री के दृष्टिकोण से प्रोत्साहित किया जाता है। क्योंकि

¹⁹¹ The world of Gwendolyn brooks - Gwendolyn brooks, p-57

¹⁹² Feminism and American literature- r.k.dhawan, p-98

उनके पास शक्ति, क्षमता और दक्षता है। उनके लिए एलिस वॉकर का 'नारीवादी' शब्द उनकी क्षमता के बारे में जागरूकता पैदा करता है।

कवयित्री मार्गरेट वॉकर अपनी कविता 'girl held without bail' में लिखती है-

"I like it here just fine

And I don't want no bail

My sister's here

My mother's here

And all my girl friends too

I want my rights."¹⁹³

बहनापे से स्त्री को दमन का प्रतिकार करने की शक्ति और साहस मिलता है। एकमात्र श्वेत स्त्रियाँ मेयर की पत्नी- बेटी में कहीं कोई कोमल भावना नहीं दिखती है। उनमें कोई बहनापा नहीं। न तो अश्विन स्त्रियों से न ही श्वेत स्त्रियों से। एफ्रो अमेरिकन तीन काव्य में बहनापा के आधार पर कई कविताएं रची गई हैं। यह जो रिश्ता है वह बहन और भाई दोनों के साथ दिखाया गया है। पर ज्यादातर, बहन-बहन के आपसी प्रेम दिखता है जो कभी-कभी समलिंगी का भी रूप ले लेता है।

सन् 1971 में अमेरिकी नारीवादी लेखिका और सामाजिक कार्यकर्ता बेल्ल हुल्स ने अपनी किताब 'एन्ट आई अ विमन' में लिखा है "सिस्टहुड एक सामाजिक जमावड़ा नहीं, बल्कि एक राजनीतिक बल का नाम है, जिसका इस्तेमाल हम अपनी देह को स्वयं से मुक्त करने और अपनी बहनों को पुरुषों द्वारा निर्मित पिंजरो से मुक्त करने के लिए चाहते हैं।"¹⁹⁴ कवयित्री माया एंजेलों अपनी कविता 'poor girl' में लिखती हैं-

¹⁹³ The poetry of black American- ed. Arnold adoff, p-149

¹⁹⁴ www.buddhubaksa.com

“you’re going to leave her too

And I know it

She’ll never know

What made you go

She’ll cry and wonder

What went wrong

Then she’ll begin

To sing this song

Poor girl

Just like me”¹⁹⁵

नारीवादी आंदोलन में प्रयोग किए जाने वाले ‘सिस्टरहुड इस पावरफुल’ नारे के ठीक पीछे अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों के प्रति दुर्भावना देखी गयी। ‘सिस्टर’ और ‘सिस्टरहुड’ के नारे को व्यावहारिक तौर पर अगल में लाने से बेरुखी का विरोध हुआ। पहले धीमे स्वर में, बाद में मुखरता से। अमेरिकी दार्शनिक और नारीवादी लेखिका टी-ग्रेस एटकिनसिन का यह कथन है कि ‘इस शक्तिशाली बहनापे ने ही बहनों को मार डाला है।’ इस आंदोलन के अंधेरे पक्ष का पता देता है कि किस तरह मुख्यधारा के नारीवाद में निर्धारित मानदंड उस समय भ्रामक और अविश्वसनीय हो गए थे। जब उन्होंने इन मानदंडों को अश्वेत स्त्रियों के मुद्दों को बहिष्कृत करने के लिए इस्तेमाल किया। जो उनके बहनापे के सांचे में फिट नहीं बैठती थीं। जबकि सिस्टरहुड का सही अर्थ सभी स्त्रियों को एकसाथ लेकर चलने में निहित है।

¹⁹⁵ Oh pray my wings are gonna fit me well- maya angelou, p-14-15

3.3. निष्कर्ष

दलित और अफ्रो-अमेरिकन स्त्री की अभिव्यक्ति एक प्रकार का संगठनात्मक दिशाबोध का कार्य करती है। अपने-आप में समेटकर सभी आरोपों को सहती रहने पर भी इस समाज के पूरे अमानवीय व्यवहार को नकारती है। उनका आत्मचेतस् अधिकाधिक औरतों की पिछड़ी दशा व उपेक्षित अवस्थाओं से प्रेरित आत्महनन के कारणों को ढूँढ़ता है। गुलामी करना जैसे उनकी नियति बन चुकी है। परंतु यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि वर्तमान समाज में स्त्री की भागीदारी अनिवार्य है। अन्यथा इसके अभाव में सामाजिक विकास संभव नहीं है। दोनों ही समाज में जब तक स्त्रियों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण में बदलाव नहीं आएगा। तब तक दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों को सामाजिक संघर्ष करना पड़ेगा। नाम मात्र के लिए स्त्रियों को आज़ादी प्राप्त है, परंतु वह आज भी परंपरा की बेड़ियों में जकड़ी हुई हैं। वह स्वयं के घर में ही कैदी की तरह रहती हैं, कारण मात्र कि वह 'स्त्री' है।

यह दोनों साहित्य के इतिहास में सदियों से बेजुबान रहते आये लोगों को स्वर देता है। उनके लिए एक समतामूलक समाज की आशा को जगाता है। समग्र समाज के साथ-साथ मनुष्यता के उत्थान और विकास की बात करता है। यह बताता है कि दलित और अश्वेत लोगों को किनारा करके भारत और अमेरिका जैसे राष्ट्र का विकास भी नहीं हो सकता है। उनके साहित्य ने दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन लोगों के जीवन को विश्व के हर कोने तक पहुँचाया है।

उनके दुःख-सुख, आशा-निराशा-हताशा, उम्मीदों-आकांक्षाओं-स्वप्नों से विश्व को परिचित कराया है। घर और बाहर, अपने भीतर और बाहर से संसार के साथ निरंतर जूझती हुई दलित और अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियाँ महज एक यंत्र बनती जा रही हैं। अपने स्वत्वाधिकारों,

अस्मिता के लिए किया गया संघर्ष ही उनकी सामाजिक स्थिति को मजबूत बना सकता है।
इसके बिना उनके जीवन में कोई सार्थक बदलाव संभव नहीं है।

चतुर्थ अध्याय

दलित और अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ : आर्थिक संदर्भ

4.0. प्रस्तावना

भारत में शोषक की परम्परा प्राचीन काल से आरंभ होकर समय के साथ-साथ अपना रूप बदलती हुई, आज भूमंडलीकरण के दौर में भी किसी-न-किसी रूप में मौजूद है। दलितों को आशा थी कि देश के स्वतंत्र हो जाने के बाद वे खुली हवा में सांस ले सकेंगे, सुख का जीवन-यापन करेंगे और समाज उन्हें आर्थिक अधिकारों से वंचित नहीं रखेगा।

बाबा साहेब अम्बेडकर के इन विचारों से स्पष्ट होता है कि यदि आर्थिक समानता लाने के लिए जाति-व्यवस्था का उन्मूलन करना आवश्यक है। जाति उन्मूल के बिना इस देश में किसी प्रकार की आर्थिक समानता का सपना सोचना व्यर्थ ही होगा। इस महान देश में जाति उन्मूलन की क्रांति के बिना दूसरा मार्ग संभव नहीं है। जाति मुक्ति पर ही गरीबी से मुक्ति, गुलामी से मुक्ति, तथा आर्थिक समानता ला सकते हैं। “मानवीय जीवन की नींव आर्थिक है और इसीलिए आर्थिक परिस्थिति के मुताबिक इतिहास बनता है, यह विचार मार्क्स ने दुनिया के सामने रखा।”¹⁹⁶

आज के भौतिकतावादी युग में दलित और अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों के लिए समाज की आर्थिक चुनौतियों का भी सामना करना पड़ता है। इस समाज में आर्थिक विपन्नता के कारण जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुओं के अभाव में अनेक तरह की समस्याओं का अनुभव अपने दैनंदिन जीवन में करता है, किंतु यह विडंबना ही कही जाएगी कि दलित और अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों की कविताओं में आर्थिक प्रश्न प्रमुखता से नहीं आ पा रहे हैं। इसका कारण यह है कि इन कविताओं में प्रमुख रूप से केंद्रीय विषय सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त जातिभेद

¹⁹⁶ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा...खंड 3- सं. एल.जी.मेश्राम ‘विमलकीर्ति’, पृ-343

है। कविताओं में जाति व्यवस्था के आधार पर ही आर्थिक समस्याएँ को दर्शाया गया है। जाति-समस्या और रंगभेद का भाव प्रमुख होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वहाँ आर्थिक समस्या है ही नहीं। इन समाजों में दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन समस्या के आर्थिक पहलू को नज़रअंदाज़ करके बहुमुखी परिवर्तन समाज में लाना संभव नहीं है।

4.1. दलित स्त्री कविताओं में आर्थिक मजबूरी

दलित स्त्री कविताओं में जो प्रमुख रूप में उभर कर आता है। वह है अपनी अस्मिता की लड़ाई। जाति, लिंग और वर्ग के आधार पर उनकी कविताओं को मुख्य रूप दिया गया है। उन्हें आर्थिक समस्याएँ भी जाति-व्यवस्था का परिणाम दिखाती हैं। इसलिए आर्थिक संदर्भ, जातिगत समस्याओं के साथ परस्पर अंतर्गुथित हैं। इन कविताओं के अंतर्गत आर्थिक परिप्रेक्ष्य के चित्रण मिलते हैं और वे जातिगत समस्याओं में गुंथे हुए हैं। डॉ.अम्बेडकर का कहना है कि “मैंने हाल में ही ‘आर्थिक मानव की मौत’ नाम की किताब पढ़ी है। किंतु जब अभी तक आर्थिक मानव का जन्म ही नहीं हुआ है तो उसकी मौत का सवाल ही नहीं उठता। मनुष्य सिर्फ अन्न पर नहीं जीना यह मार्क्स के आलोचकों का जवाब है जो वास्तव में सही है। मानव का सिर्फ सूअर की तरह तरोताजा होना संस्कृति का लक्ष्य नहीं है। कार्लाइल का यह कथन मुझे पसंद है। किंतु मजदूरों के तरोताजा होने की बात तो दूर, उन्हें भरपेट भोजन भी नहीं मिलता।”¹⁹⁷

दलित स्त्री कविताओं में आर्थिक संदर्भों से जुड़े कई बिंदुओं पर आगे चर्चा की जाएगी।

4.1.1. भूमिहीनता

दलित कवयित्रियों ने आर्थिक शोषण से पीड़ित दलितों की छवि को अपनी कविता में व्यक्त किया है। इन कविताओं में केवल स्त्री की स्थिति नहीं बल्कि पूरे दलित समाज के

¹⁹⁷ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा..खंड 3- सं. एल.जी.मेश्राम ‘विमलकीर्ति’ , पृ-343

यथार्थ को प्रस्तुत किया है। कवयित्री रजनी अनुरागी अपनी कविता ‘चौराहे पर ज़िंदगी’ में लिखती हैं-

“जहाँ न माँ की ममता की छाँव, न पिता की करुणा
न खेलने को खिलौने और न पढ़ने को किताबें
ये तो ज़िंदगी का पाठ पढ़ते हैं चौराहे पर
भीख माँगते हुए जमाने की घृणा और वासना को सहते हुए
इस धरती पर पैदा होने का खामियाजा भुगतते हुए”¹⁹⁸

रजनी अनुरागी दलित विमर्श का जाना पहचाना नाम है। जिनकी कविताएँ संवेदना के विविध धरातल को छूती हैं। इनकी कविताओं में संघर्ष का तेवर अंशतः देखने को मिलता है। ‘चौराहे पर ज़िंदगी’ कविता में भूमिहीन दलितों की स्थिति को व्यक्त किया गया है। हम अपने रोजमर्रा के जीवन में यातायात के दौरान यह नज़ारा देखने को मिलता है, परंतु हम यह भूल जाते हैं कि चौराहे पर रहने वाले लोगों के जीवन में कितना दुःख है। मनुष्य की पहली जरूरत रोटी, कपड़ा और मकान में जब तीनों ही आर्थिक दृष्टि से न हो तो जीवन जीना बहुत ही कठिन है। कविता में कवयित्री अक्सर रानीबाग के चौराहे पर ऐसी ज़िंदगी का सामाना करती है जो चौराहे पर भीख माँग कर अपना गुजरा करते हैं। अपनी ज़मीन न होने के कारण चौराहों पर जीवन जीने पर वेबस हैं दलित। कविता की आगे की पंक्तियाँ कुछ प्रकार हैं-

“चौराहों पर मिलते हैं ताली पीटते हाथ
भिन्न भिन्न मुद्राओं में
आँखें नचाते, कमर मटकाते
गहरे मेकअप में अपने को चमकाए

¹⁹⁸ दलित महिला लेखन : 2011(खंड-1)-सं. रजनी तिलक, रजनी अनुरागी, पृ-36

अपनी लाचारी को छिपाए,
सबकी सलामती की दुआ माँगते।”¹⁹⁹

अर्थ सामाजिक प्राणी के जीवन में कितना महत्त्व रखता है यह कहने की आवश्यकता नहीं। इसकी उच्छृंखल बहुलता में जितने दोष हैं। वे अस्वीकार नहीं किये जा सकते, परंतु इसके नितांत अभाव में जो अभिशाप हैं। वे भी उपेक्षणीय नहीं। विवश आर्थिक पराधीनता अज्ञात रूप में व्यक्ति की मानसिकता तथा अन्य विकास पर ऐसा प्रभाव डालती रहती है, जो सूक्ष्म होने पर भी व्यापक तथा परिणामतः आत्मविश्वास के लिए विष के समान है। दीर्घकाल का दासत्व जैसे जीवन की स्फूर्तिमयी स्वच्छंदता नष्ट करके उसे बोझिल बना देता है। निरंतर आर्थिक परवशता भी जीवन में उसी प्रकार प्रेरणा-शून्यता उत्पन्न कर देती है। किसी भी सामाजिक प्राणी के लिए ऐसी स्थिति अभिशाप है, जिसमें वह स्वावलम्बन का भाव भूलने लगे क्योंकि, इसके अभाव में वह अपने सामाजिक व्यक्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता। डॉ. अम्बेडकर का कहना है कि “भारत में भूमिधारी होना सिर्फ जीवन-निर्वाह की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण है, ऐसी बात नहीं, बल्कि वह सामाजिक प्रतिष्ठा से भी सम्बंधित है। जिनके पास जीवन नहीं उनके मुकाबले जिनके पास ज़मीन का स्वामित्व होता है, उनका सामाजिक दर्जा ऊँचा होता है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि, आर्थिक दर्जे के संबंध में गाँव-देहातों में यह बात हर किसी को बहुत ही महत्वपूर्ण लगती है। हर हिंदू यह चाहता है कि, जो अछूत हमेशा हमसे नीचे रहा है, वह हमेशा हमसे नीचा ही रहे।”²⁰⁰ कवयित्री पुष्पा विवेक अपनी कविता ‘फुटपाथ’ में लिखती हैं कि

“फुटपाथ पर बसी ज़िंदगी
बना जीवन अभिशाप है।
रोजी-रोटी कमाने को करते

¹⁹⁹ दलित महिला लेखन : 2011 (खंड-1)-सं. रजनी तिलक, रजनी अनुरागी, पृ-36

²⁰⁰ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा... खंड 5- सं. एल. जी. मेथ्राम ‘विमलकीर्ति’ पृ-220

करते गाँव से पलायन है
काम-काज के अभावमें
बनता जीवन अभिशप्त है।”²⁰¹

फुटपाथ पर जीने वाले लोगों का जीवन मुट्ठी में रेत की तरह है जो कभी भी हाथ से फिसल सकता है। इन्हें रोज कई मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। सर पर छत न होने के कारण इनका जीवन कठिनाईयों से भरा है। कविता में जिस प्रकार कवयित्री बताती हैं कि रोजगार की चाह लिये गाँव छोड़कर, अपना घर-परिवार छोड़कर लोग शहर आते हैं परंतु शहर में रोजगार तो दूर की बात है। रहने के लिए छत नसीब नहीं होता। फुटपाथ पर ही गुजारा करने के लिए भीख माँगना पड़ता है। जो व्यक्ति गाँव से रोजगार के सपने लेकर शहर में आता है। उसके सामने भीख माँगने की नोबत आ जाती है। कवयित्री फुटपाथ के जीवन को ओर विस्तार देते हुए आगे लिखती हैं-

“फुटपार्थों पर लगे बिछौना
अम्बर का बना शमियाना
फुटपार्थों पर बसी ज़िंदगी
ढूँढ़ें अपना आशियाना
बना बिछौना धरती का
करते तारों से बातें हैं
फुटपार्थों पर बसी ज़िंदगी
फुटपार्थों पर ही मरती
बलि-वारिस कोई न होता
मिलती मौत भी लावारिस

²⁰¹ दलित महिला लेखन -2015, खंड-2, सं. रजनी तिलक, सुशीला टाकभोरे, पृ-249

फुटपाथों पर बसी ज़िंदगी

शाप से मुक्त न होती।”²⁰²

फुटपाथ पर चाहे कड़कती धूप हो या आंधी तूफान की बारिश साल का हर मौसम खुले आकाश के नीचे सब कुछ सहना पड़ता है। हर मौसम की मार खानी पड़ती है। जीवन का एक-एक दिन न जाने क्या-क्या सहना पड़ता है और इसे सहते ही मौत का इंतजार कर फुटपाथ पर ही लावारिस की तरह मर जाता है। डॉ. अम्बेडकर का मानना है कि “सभ्यता के विकास में एक ऐसी अवस्था आई जब लोग अपने-अपने स्थानों पर बस गए और खेती, गो-पालन आदि के साथ नियमित जीवन बिताने लगे। लेकिन अनेक लोग अनेक कारणों से सभ्यता की दौड़ में पीछे छूट गए। अंत में जब इन बिखरे हुए, खानाबदोश या छितरे हुए लोगों ने सभ्य बस्तियों का हिस्सा बनने की कोशिश की तो बसे हुए लोगों ने इन्हें अपने समाज का अंग मानने से इंकार कर दिया। बसे हुए और छितरे हुए लोगों के आचार-व्यवहार में तब तक बहुत फर्क आ चुका था। बसे हुए ज्यादातर लोग ब्राह्मण मत से प्रभाव में थे, जबकि छितरे हुए लोग ज्यादातर बौद्ध थे।”²⁰³

जरूरत है दलित समुदाय को तेजी से शिक्षित करने, संगठित करने और सम्मानपूर्वक संघर्ष करने के लिए हर संभव प्रयास करने की। हम ऐसे वातावरण का निर्माण करें जिसमें गुणों के आधार पर मनुष्य का मनुष्य से संबंध स्थापित हो और सबको विकास के समान अवसर प्राप्त हों। एक मानवतावादी व समतावादी समाज की स्थापना हो, जिसमें हर मनुष्य का चहुँमुखी विकास हो। कवयित्री रजनी तिलक ‘हॉर्न बजाती जिप्सियाँ’ में लिखती हैं कि-

“चुपचाप वो दबे पाँव

रात के तीसरे पहर आते हैं

²⁰² दलित महिला लेखन -2015, खंड-2, सं. रजनी तिलक, सुशीला टाकभौरे, पृ-250

²⁰³ डॉ. भीमराव अम्बेडकर-शूद्र कौन और कैसे? अनुवादक-भदंत आनंद कौसल्यायन, 1949, पृ-183

कुत्तों के भौंकने की शिथिलता

का फायदा उठाकर

संगीनों को कंधों पर टांगे

दबदबा कर निरापदों के घर

देते हैं दबिश

उठा ले जाते हैं उन्हें रातों रात!”²⁰⁴

कांतिमोहन यह सिद्ध करते हैं कि, दलित समस्या सामाजिक एवं धार्मिक नहीं, आर्थिक है। उनका कहना है, “अछूत प्रथा भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व के संबंध स्थापित होने के बाद ही अस्तित्व में आई होगी। सामाजिक ऊँच-नीच का भाव अभिन्न रूप से आर्थिक ऊँच-नीच के भाव से जुड़ा है और आर्थिक ऊँच-नीच के भाव के मूल में भूमि का स्वामित्व और भूमिहीनता है।”²⁰⁵

इन निष्कर्षों के पीछे एक सोच और दृष्टि है। जो दलित समस्याओं के उन बिंदुओं को लगातार अनदेखा करती रही है जो सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था के द्वारा निर्मित हुए हैं। दलितों को संपत्ति जमा करने के अधिकार से वंचित किया गया। आर्थिक प्रतिबंध लगाए गए। दंड विधान में दोहरे नियम रखे गए। वर्ण-व्यवस्था एवं सामंती-व्यवस्था, बेगार-प्रथा के तहत दलितों की आर्थिक विपन्नता निम्न से निम्नतर होती चली गई।

‘जंग की ठान ली’ कविता में देश में व्याप्त बुराइयों के विरुद्ध जंग ठानने की बात कही गई है। शोषण के विरुद्ध क्रांति का आह्वान किया गया है। रात काली-चादर में जब जीवन करवट बदलता है, तब हवाएँ भी तूफान बन जाती हैं और धरती का अंचल भी परचम बन जाता है कि-

²⁰⁴ हवा सी बेचैन युवतियाँ-रजनी तिलक, पृ-72

²⁰⁵ कांतिमोहन-प्रेमचंद और अछूत समस्या, जनसुलभ साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृ-5

“कमजोरों ने, गरीबों ने
गाँव के भूमिहीनों ने
मानवखोरों से जंग ठान ली।”²⁰⁶

प्राचीन भारतीय वर्ण-व्यवस्था का प्रारंभ कार्य के आधार पर हुआ था लेकिन धीरे-धीरे इसका स्वरूप बिगड़कर वर्ण-वर्ग जातिगत बना गया। इसी जातिगत व्यवस्था ने निम्न वर्ग के रूप में शूद्रों, अस्पृश्यों एवं अछूतों के नाम पर समाज के एक वर्ग-विशेष को हाशिए पर धकेल दिया व उसे सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक रूप के साथ-साथ आर्थिक रूप से भी कमजोर व गया गुजरा बना दिया। अन्य स्वरूपों के साथ-साथ इनका आर्थिक शोषण भी किया गया और इन्हें कमजोर व पिछड़ा बना दिया गया। यहीं दलित वर्ग या समुदाय का आर्थिक शोषण है।

4.1.2. दरिद्रता

दलितों का जीवन जहाँ सामाजिक उत्पीड़न, शोषण, दमन से भरा हुआ है, वहीं व्यवस्था के नाम पर लादी गई मर्यादाएँ, बंधर दलित जीवन की विपन्नताएँ बनकर रहे हैं। आर्थिक विवशताओं और विसंगतिपूर्ण स्थितियों ने दलित जीवन को नर्क बनाया है। ग्रामीण परिवेश के जातीय उत्पीड़न से पलायन कर शहरों, महानगरों की ओर आने वाले दलितों के भीतर हीनता भाव इतना गहरा होता है कि उसे कोई भुक्त भोगी ही समझ सकता है।

रजनी तिलक ‘शहर से बाहर’ कविता में लिखती हैं-

“फटेहाल दिखतीं
सड़कों पर नाचतीं
शहर से बाहर डेरा डालतीं।

²⁰⁶ पदचाप – रजनी तिलक, पृ-8

गोबर थापतीं, झाड़ू लगातीं,
रस्सियों पर चढ़कर
तमाशा दिखाती, भीख माँगती
यह औरतें, फिर भी लड़तीं।²⁰⁷

कविता में शहर से बाहर रहकर अपना जीवन जीने वाली उन औरतों के बारे में बताया है। जो कपड़ों, भूख, घर के लिए भीख माँग कर अपना गुजरा करती है। जो अपने बच्चों को स्कूलों नहीं भेज पाती हैं। बच्चे दूध और खिलौने के मोहताज हो जाते हैं। अपना गुजारा करने के लिए गोबर थापतीं, झाड़ू लगाती, रस्सियों पर चढ़कर लोगों का मनोरंजन आदि करती हैं।

दलित स्त्री कविता में दलित विमर्श और स्त्री विमर्श को आर-पार देखा जा सकता है। सदियों से शोषित-पीड़ित नारी आज के उत्तर-आधुनिक युग में भी शोषित है। सदियाँ बीत गई पीड़ा सहते-सहते। पीढ़ियाँ गुजर गई पीढ़ी-दर-पीढ़ी भोगते-भोगते। अभी भी इक्कीसवीं सदी में दलित स्त्री इस पीड़ा और शोषण से उबर नहीं सकी है। सुशीला टाकभौरै इस कविता के संदर्भ में लिखती हैं “दलित वर्ग की ऐसी स्त्रियाँ जो झुग्गी-झोपड़ी में शहर के बाहर रहती हैं, उनके जीवन और रहन-सहने के चित्र खींचती हुए ‘शहर के बाहर’ कविता में लिखती हैं।”²⁰⁸ कवयित्री पूनम तुषामड़ ‘हमने छोड़ दिए हैं गाँव’ में लिखती हैं-

“हमने छोड़ दिए हैं गाँव
ताकि जानो तुम
चिलचिलाती गर्मी में
गर्म हवाओं के बीच

²⁰⁷ पदचाप – रजनी तिलक, पृ-3

²⁰⁸ दलित महिला लेखन : 2015, खंड-2, सं. रजनी तिलक, पृ-82

लगातार
अधनंगे, आधे पेट श्रम करना
और
दो जून की रोटी कमाना
कितना कठिन है?”²⁰⁹

कविता में श्रम का महत्त्व समझाने के लिए दलित स्त्रियों ने गाँव छोड़ दिया है। ताकि ज़मींदार, साहूकार आदि सवर्ण लोगों को यह अहसास हो कि श्रम करना कितना कठिन है। दो वक्त की रोटी कमाने के लिए उन्हें हाड़-तोड़ मेहनत करना पड़ता है, परंतु इसके बाद भी उन्हें दरिद्रता का जीवन जीने पर विविश होना पड़ता है। जमींदारों के फसलों की बुआई, कटाई, पिनाई आदि का काम वे स्वयं करें। इस कविता में कवयित्री अपने अधिकार और अस्तित्व की लड़ाई लड़ने के लिए गाँव छोड़ने के लिए सामने आती हैं। उपासना गौतम लिखती हैं “दलित स्त्रियों की स्थिति शैक्षिक एवं आर्थिक स्तर पर अत्यधिक दयनीय थी। वर्तमान में तो तथाकथित दलित स्त्रियों को डॉ. अम्बेडकर के अथक संघर्षमय आंदोलन के फलस्वरूप बहुत कुछ प्राप्त हुआ है। लेकिन आज भी वे सवर्णों से काफी पीछे हैं।”²¹⁰

“हमारी बस्ती में
काली काली सी बुढ़िया
हर रोज बिना रुके
आँधी हो या तूफान
रविवार हो या तीज त्यौहार
सूबह होते ही
हाथ में बाल्टी झाड़ू थामें

²⁰⁹ दलित महिला लेखन, 2011, खंड-1, सं. रजनी तिलक, पृ-55

²¹⁰ स्त्री नैतिकता का तालिबानीकरण-सं. रमणिका गुप्ता, पृ-64

आती है।”²¹¹

‘भंगिन’ कविता में रजनी तिलक एक ऐसी स्त्री की व्याख्या कर रही हैं जो झाड़ू लगाती है। समाज इस स्त्री को भंगिन कहकर पुकारता है। यह भंगिन जो अपना काम करने में न तो मौसम का बहाना बनाती है और न ही अपने स्वस्थ का। अपनी बढ़ती उम्र का भी ध्यान नहीं जिसे, जमाना भंगिन कहता है। यह झाड़ू लगाने वाली अपने काम के प्रति पूरी तरह ईमानदार है। परंतु सवर्ण लोगों के लिए यह एक भंगिन दलित स्त्री है।

दलित कविता का संघर्ष पुराना है परंतु उसमें स्त्री चेतना उसकी अभिव्यक्ति का समावेश होना उसे स्वीकार करना अभी बाकी है। इस कविता में दलित स्त्रियों के सवाल, परिस्थितियाँ, ज़िंदगी, जाति व्यवस्था और पितृसत्ता के ढाँचे को तोड़ने के प्रयास जितने तीखे हैं, उतने ही घरेलू ज़िंदगी में व्यक्तित्व को नियंत्रित करने वाले कारकों के प्रति कटाक्ष भी आए हैं। जमाना बदल रहा है। उपभोक्तावाद की चपेट में सारी दुनिया के साथ-साथ दलित समाज भी बदल रहा है। उनके जीवन के मूल्य बदल रहे हैं।

रजत रानी ‘मीनू’ अपनी कविता ‘बचपन’ में अपने बचपन के दिनों को याद कर कहती हैं-

“जब सैर से घर लौट रही थी
तब बचपन झाड़ू-पोछा कर रहा था
और जब जल्दी-जल्दी ऑफिस निकली
रेड लाइट पर बचपन
अंग्रेजी-हिंदी की
पुस्तकें और पत्रिकाएँ बेचने मिल गया

²¹¹ हवा सी बेचैन युवतियाँ-रजनी तिलक, पृ-62

ऑफिस पहुँची तो चाय का कप

लेकर खड़ा था बचपन

मेरे सामने।”²¹²

दलित कविताओं में आर्थिक समस्याओं को प्रमुखता से अभिव्यक्ति मिली है। कवयित्री रजत रानी ‘मीनू’ लिखती हैं “आर्थिक विपन्नताओं पग-पग पर घायल होने वाले दलित कवि का संवेदनशील हृदय अर्थाभाव के काले अभिशाप से घिरे हुए समूचे वर्ग को देखकर उद्वेलित हो उठता है। जन-जीवन से जुड़े तमाम प्रश्नों की रोशनी में अपने सुंदर सपनों को यथार्थ में साकार होते नहीं देख पाता है, तब वह प्रश्नों के समाधान तलाश करते अपने विचारों को कविता की शकल देकर पूरा करने का प्रयास करता है।”²¹³

कविता की पंक्तियों में कवयित्री स्वयं को हर जगह पाती है। चाहे वह घर पर काम करने वाली नौकरानी, सड़क पर पुस्तक बेचने वाले, ऑफिस में चाय देने वाली या चौराहें पर खड़े भीख माँगने वाले आदि परिस्थितियों में कवयित्री अपने बचपन के दिनों को याद करती है जब आर्थिक तंगी के कारण उन्हें दरिद्रता से भरी जिंदगी जीनी पड़ रही थी। आज परिस्थितियाँ जरूर बदल गई हैं परंतु अपने उस अस्तित्व को नहीं भूल पाए हैं जो जन्म के साथ जुड़ गया था।

सुशीला टाकभौरे अपनी कविता ‘याद’में लिखती हैं कि,

“याद

तुम क्या हो आज?

स्वजनों के दर्द की स्मृति

अपनी पीड़ा के

²¹² पिता भी होते हैं माँ-रजत रानी ‘मीनू’, पृ-170

²¹³ नवें दशक की हिंदी दलित कविता-रजत रानी ‘मीनू’, पृ-77

भूले-बिसरे चित्रों की आकृति
 अभाव के दुखों का लेखा-जोखा
 दयनीय जीवन की दिनचर्या
 सूबह से शाम तक का वितरण
 जो आज के लिए लिखित रूप है!”²¹⁴

कवयित्री अपनी स्मृति के पन्नों में अपने बिते हुए दिनों को याद कर रही है। अपने दर्द, पीड़ा और दुखों के दिनों के कष्टों को याद कर उन्हें शब्दों की आकृति प्रदान कर रही है। हर रोज की स्थिति जो दरिद्रता की व्याख्या कर रही है। स्त्री उपेक्षिता में सीमॉन द बोउवार लिखती हैं “औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप औरत को उत्पादन श्रम के क्षेत्र में प्रवेश मिला और यहीं से औरत की स्वाधीनता के दावे को आर्थिक आधार मिला, साथ ही विरोधी खेमे और अधिक आक्रामक हो गये। अचल सम्पत्ति का प्रभाव कुछ हद तक घटने पर भी बुर्जुआ पारिवारिक एकता में निजीकृत सम्पत्ति को प्रश्रय देने वाली पुरानी नैतिकता से चिपका रहा। औरत की स्वतंत्रता सत्ता और स्वाधीनता पुरुषों की आँखों की किरकिरी बन गयी। उसको वापस घर के दायरे में लौटने को कहा गया। यहाँ तक कि, मजदूर वर्ग के पुरुषों ने भी औरत की स्वाधीनता पर बंधन लगाने शुरू किये, क्योंकि औरत को अपना खतरनाक प्रतियोगी समझने लगे।”²¹⁵

पुरुषवादी मानसिकता रखने वाले पुरुषों की सोच सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक सभी क्षेत्रों में एक समान है। स्त्री को दबाकर रखने की प्रक्रिया में उन्हें और कुछ नज़र ही नहीं आता है।

²¹⁴ स्वाति बूंद और खारे मोती, हमारे हिस्से का सूरज-सुशीला टाकभौर, पृ-38

²¹⁵ स्त्री उपेक्षिता-सीमॉन द बोउवार, पृ-27

4.1.3. श्रम का मूल्य

वास्तव में वर्ण व्यवस्था से लेकर जाति व्यवस्था तक, शूद्रों से लेकर दलितों तक। जिन लोगों का सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक शोषण हुआ है। इन सब की वजह से वे आर्थिक उन्नति से भी कोसों दूर रहे हैं। जब तक सामाजिक समता का वातावरण नहीं होगा। तब तक शोषित समुदाय का आर्थिक विकास सम्भव नहीं है। यह परम्परा वैदिक काल से लेकर आज तक चली आ रही है। स्वतंत्र भारत में दलितों का आर्थिक विकास हुआ है लेकिन संपूर्ण रूप से नहीं, साथ ही आर्थिक उन्नति के साथ सामाजिक समस्या का निदान नहीं हुआ। “जिस पंचायती राज की रुमानी कल्पना की कशीदेकारी से हिंदी साहित्य भरा पड़ा है, वही पंचायती राज दलितों के लिए अभिशाप होती है। लोकतंत्र के नाम पर सबसे ज्यादा दलित ही छला गया है। गाँव के खेतीहर मजदूर दलित ही होते हैं। बेगारी प्रथा ने दलितों को घोर विपन्नता दी है। बेगार यानि बिना मूल्य का श्रम। दिन भर मेहनत-मजदूरी करके भी शाम को भूखा रहे, यह अभिशाप नहीं तो और क्या है!”²¹⁶ रजनी तिलक की कविता ‘मजदूर है इस देश का दलित’ में लिखती है-

“शोषण के अधिकारी ये पूंजीवादी,
इंसानियत के गद्दार, हैवान के साथी
तुम्हें न देते दो जून भरपेट रोटी
दलित! तुम ही हो
इस देश के भूमिहीन कृषक सर्वहारा!”²¹⁷

कविता में मजदूर और सर्वहारा के साथ चली आ रही अन्याय की गाथा सुनाती है। दलितों ने इस देश के लिए आज तक जो भी किया, उसका मूल्य उन्हें प्राप्त नहीं हुआ। जाति

²¹⁶ दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र-ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ-76

²¹⁷ पदचाप-रजनी तिलक, पृ-37

के नाम पर उन्हें गुलामी का जीवन जीने पर विवश किया गया। दलितों को अपनी मेहनत, खून-पसीने से कमाई गई रोटी तक नसीब न हुई। सवर्णों ने आर्थिक रूप से दलितों के साथ शोषण किया। अपनी गरीबी के कारण उन्हें अत्याचार, दुःख और पीड़ा झेलनी पड़ी।

रजत रानी 'मीनू' लिखती हैं "ग्रामीण अर्थव्यवस्था, ग्रामीण पंचायती व्यवस्था की विशेषताओं की साहित्यिक चर्चाओं में भी काफी तारीफ की जाती है। लेकिन नगरों की अपेक्षा गाँव में मजदूरों का शोषण खेतिहर मजदूरी बेगार और तरह-तरह के आर्थिक शोषण ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ही ज्यादा होते हैं। वर्तमान प्रजातंत्र के युग में भी अभिशेखों के तौर पर यदि सामंती व्यवस्था कहीं ज्यादा मजबूत रही है, तो वह गाँवों में ही रही है। आर्थिक शोषण व सामाजिक उपेक्षा के कारण ही रोटी-रोजी व सुरक्षा की तलाश में दलितों के समूह के समूह गाँवों से शहरों की ओर पलायन करते रहते हैं।"²¹⁸ अनिता भारती की कविता 'वही रहता है' में लिखती हैं-

“यह छोटा सा छोटू
कितने बड़े-बड़े काम करता है
वह भी अपने छोटे-छोटे हाथों से
फिर भी तुम्हारे लिए
तो छोटू वही रहता है
एक निर्जीव चीज जैसा, मजदूर।”²¹⁹

कविता में 'छोटू' एक ऐसे नाम के रूप में प्रयोग किया गया है, जो सवर्णों के घर में काम करते हैं मजदूर की तरह। बालश्रम करने वाले ये बच्चे चंद रुपयों के लिए उनके घर से कचड़ा, गंदगी साफ़ करते हैं। दिन से रात भर घर का सारा काम करने पर भी मालिकों के लिए

²¹⁸ नवें दशक की हिंदी कविता-रजत रानी 'मीनू', पृ-72

²¹⁹ खूबसाना का घर-अनिता भारती, पृ-14

यह बच्चे केवल एक मजदूर है। ‘छोटू’ वह प्रतीक है, जो आज हर घर में अपना पेट पालने के लिए मजदूरी कर रहा है।

“डॉ.अम्बेडकर ने अवसरों की समानता और उत्पादन के क्षेत्र में प्रजातंत्र का विकास किया। परंतु उनकी परिकल्पनाओं की पूर्ति नहीं हो रही। जिस खुलेपन की नयी विश्व अर्थव्यवस्था के उदारीकरण, भूमंडलीकरण का बाजार गर्म है, उसमें अम्बेडकरीय चिंतन नदारद है। व्यापारीकरण के युग में पूँजीवाद के दलदल में दलितों को क्या कुछ नसीब होगा, इस पर दलित कविता बेलौस ढंग से अपनी बात रखती है।”²²⁰ इस संदर्भ को कविता का रूप देते हुए सुशीला टाकभौरे लिखती हैं-

“उदारीकरण, निजीकरण, भूमंडलीकरण

कहीं का नहीं छोड़ेंगे इन्हें,

बनकर रह जायेंगे बंधुआ मजदूर।

पीढ़ी-दर-पीढ़ी गरीबी, भूखमरी, गुलामी

कब मुक्त हो पायेंगे?

अनभिज्ञ हैं ये अपनी ही स्थिति से।”²²¹

कवयित्री समाज को यह समझाने की कोशिश कर रही है कि दलितों को अपने हिस्से का सूरज को पहचानता होगा अर्थात् अपने हिस्से का अधिकार, अपना अस्तित्व। ताकि समाज में जाति-व्यवस्था को हटाकर सभी एक समान जीवन व्यतित कर सके। पिछड़ी दलित जातियाँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने पैतृक पेशे से जुड़ी हैं। अपने आत्मसम्मान से अनभिज्ञ वे, उन्नति का मार्ग समझ नहीं पाती हैं। वे अपनी उन्नति के विरोधी दुश्मनों से ही अपनी प्रगति के लिए मदद मांगती रहती हैं। परिणाम स्वरूप उन्हें प्रगति का मार्ग नहीं दिखाया जाता, मात्र दया,

²²⁰ दलित हिंदी कविता का वैचारिक पक्ष-श्यामबाबू शर्मा, पृ-166

²²¹ स्वाति बूँद और खारे मोती, हमारे हिस्से का सूरज-सुशीला टाकभौरे, पृ-118

सहानुभूति के द्वारा बहलाकर, अपनी स्थिति पर ही संतोष करने की शिक्षा दी जाती है। उन्हें अच्छे भविष्य के लिए प्रतीक्षा करने का संदेश दिया जाता है।

कवयित्री हेमलता माहिश्वर 'छलना' कविता में लिखती हैं-

“मजदूर मैं
भूखा-प्यासा मैं
ठंड में ठिठुरता
वर्षा में भीगता
चिलचिलाती धूप में
अपने पसीने से
धरती सींचता मैं।
मेहनत मेरी
ताकत मेरी
अधीन तुम्हारी।”²²²

यही तो करते आ रहे हैं सदियों से दलितों के साथ। श्रम का मूल्य शून्य के बराबर भाव में तोलने वाले सवर्ण लोग। मेहनत, मजदूरी से इस धरती को स्वर्ण की तरह चमकाया, परंतु दलितों ने जिस मेहनत से इसे सींचा उसका फल सवर्णों की नज़र में कुछ भी नहीं मायने नहीं रखता है।

मनुस्मृति ने दलितों के जीवन को अंधकार में धकेल दिया। उनसे गुलामों की भाँति दिन-रात श्रम करवाया। बदले में बचा-कुचा जूठन खाने के लिए मजबूर किया गया। मनुस्मृति में दलितों को कैसा होना चाहिए उसके बारे में लिखा है कि, “किसी भी शूद्र को संपत्ति का

²²² नील, नीले रंग के-हेमलता माहिश्वर, पृ-91

संग्रह नहीं करना चाहिए। चाहे वह इसके लिए कितना भी समर्थ क्यों न हो, क्योंकि जो शूद्र धन का संग्रह कर लेता है वह ब्राह्मणों को कष्ट देता है। खाने से बचा हुआ अन्न तथा पुराने वस्त्र, बचा हुआ अनाज और गृहस्थी का पुराना सामान उसे अवश्य दिया जाए।”²²³

दलित समर्थ रहने के बावजूद धन इकट्ठा नहीं कर सकता था और न धन कमा सकता था। जाति व्यवस्था ने दलितों को अपाहिज बना दिया। डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि, यह व्यवस्था बहुत ही दोषपूर्ण व्यवस्था है, जिसमें दलितों को विद्या का संवर्धन नहीं करने दिया। उन्हें पूरी तरह से तीनों वर्णों पर आश्रित रहने पर बाध्य किया। जिससे वह हर एक चीज के लिए उन पर आधारित हो ऐसी व्यवस्था की गई।

रजनी तिलक ‘मीठी अनुभूतियों को’ कविता में श्रम के बदले मिलने वाले फलों को व्यक्त करती हैं-

“हमारे लहू के एक-एक कतरे ने
तुम्हारे खेत की बंजर भूमि को सींचा है
हमारे पसीने की एक-एक बूंद
तुम्हारे खानों की गहराई में टपका है
हमने तुम्हारे खेत उपजाए
तुमने हमारे पेट पुलों से ढांप दिये।”²²⁴

खेती-किसानी, कारखाना-फैक्ट्री और सफाई कार्यों से मजदूर-मालिक का गहरा नाता रहा है। पूँजी, बाजार, तकनीकी आदि के रूप में अवतरित नयी शक्तियों पर नव ब्राह्मणों का कब्जा होता जा रहा है, जो बाजार की ताकत के आधार पर पूरी व्यवस्था को अपने हित में खड़ा करने की ताकत रखते हैं। यह नवकुलीन वर्ग अपने से नीचों को गटकने वाला रहा है।

²²³ बाबासाहेब संपूर्ण वाङ्मय, भाग-9, पृ-116-117

²²⁴ हवा से बेचैन युवतियाँ – रजनी तिलक, पृ-69

विवेकानंद ने भारत के दलितों, गरीबों को कहा था कि, “ये तथाकथित कुलीन लोग जिंदा लाशें हैं, अजगर हैं, देश और सभ्यता का बोझ हैं वे आवाम पर जुल्म ढाने को ही सबसे बड़ा जीवन-धर्म समझते हैं।”²²⁵

4.1.4. आर्थिक विपन्नता

आर्थिक शोषण भारतीय ग्राम-व्यवस्था का हिस्सा हमेशा से रहा है। आज प्रजातंत्र के युग में भी सामंती व्यवस्था का खुला नृत्य गाँव-कस्बों में होता है। इन सबसे भाग कर दलित नगरों में आते रहे हैं, जहाँ उन्हें सुरक्षा और रोजी-रोटी की गुंजाइश ज्यादा दिखाई पड़ती थी। कल-कारखानों में मजदूर बनकर दलितों ने एक नया जीवन शुरू किया। दलित स्त्रियों ने आर्थिक विपन्नता के कारण उनके जीवन से जुड़ी कई कविताओं की रचना की जो, हमें उनके दुःखों के साथ जोड़ती हैं। रजनी तिलक ‘कहूँ क्या?’ कविता में लिखती हैं,

“मैं कह रही हूँ सालों से
मैं हूँ, मैं भी हूँ, मैं यहाँ दुःखी हूँ।
मैं जहाँ रहती हूँ वहाँ शौचालय नहीं
पीने को पानी नहीं
सरकारी अहसान मेरे लिये नहीं
मेरी बस्तियाँ अथाह गंदगी में है
बुझे हुए बस्तियाँ अथाह गंदगी में है
बुझे हुए माहौल में
चुराई छुपाई बिजली के नंगे तार है।”²²⁶

²²⁵ आदिवासी दुनिया-हरिराम मीणा, प्र-136

²²⁶ हवा सी बेचैन युवतियाँ –रजनी तिलक, पृ-27

कविता में कवयित्री मन में चल रही द्वंद्व को कैसे व्यक्त करें? अपने दुःखों-कष्टों को किस-किस को बताए। वह सदियों से बोल रही है, परंतु उसकी आवाज़ सुनने वाला कोई नहीं है। वह अपने हालात से रु-ब-रु करना चाहती है। पर न समाज, न सरकार कोई भी नहीं है, जो यह सब देख और समझ सके। डॉ. अम्बेडकर ने यह स्पष्ट किया था कि आर्थिक समानता लाने के लिए जाति-व्यवस्था का उन्मूलन करना आवश्यक है, जाति उन्मूलन के बिना इस देश में किसी प्रकार की आर्थिक समानता का सपना सोचना व्यर्थ ही होगा। इस महान देश में जाति उन्मूलन की क्रांति के बिना दूसरा मार्ग सम्भव नहीं है। जाति मुक्ति पर ही गरीबी से मुक्ति, गुलामी से मुक्ति तथा आर्थिक समानता ला सकते हैं। “सामाजिक तथा आर्थिक पुनर्निर्माण के आमूल परिवर्तनवादी कार्यक्रम के बिना अस्पृश्यता कभी भी अपनी दशा में सुधार नहीं कर सकते।”²²⁷

सुशीला टाकभौरे की ‘मँहगाई’ कविता में भूमंडलीकरण के चलते बाजार की आर्थिक स्थिति से गुजरते दलितों के जीवन की समस्या को व्यक्त किया है। बढ़ती मँहगाई के चलते गरीब लोगों को रोटी-कपड़ों के लिए तरस जाते हैं। “सुशीला अपनी कविताओं के माध्यम से दलित समाज की तो बात करती ही हैं, किंतु उस दलित समाज में और ज्यादा दलित यानि दलित स्त्री उनकी कविताओं में प्रमुख रूप से आती हैं। इसका सीधा सा कारण हो सकता है- स्वानुभूति की प्रामाणिकता स्त्री होने के नाते वे स्त्रियों के दर्द को ज्यादा अच्छी तरह महसूस कर पाती हैं।”²²⁸

आर्थिक असमानता विश्व पूँजीवाद का संकट है। लेकिन यहाँ सामाजिक असमानता की ओर दलित कवयित्रियों का ध्यान विशेष रहता है। आज़ाद भारत में मालिक, दास या वरिष्ठ-कनिष्ठ के अन्तर की खाई कोई भी कविता पाटने में प्रत्यक्ष रूप से समर्थ नहीं। हाँ, इस

²²⁷ बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय-खंड-12, उमराव सिंह, पृ-298

²²⁸ समकालीन परिदृश्य में स्त्रीवादी कविता-ओमलता, प्र-38

परिवर्तनीय कुव्यवस्था के प्रति विद्रोह का अहसास समाजोन्मुख कविता जरूर पैदा करती है। दलित कविता भी इस दिशा में कारगर कोशिश है। ‘बदलाव’ कविता में हेमलता माहिश्वर लिखती हैं-

“आती हूँ रोज
तुम्हारा पाखाना
साफ करती हूँ
इस सड़ांध को
धो जाती हूँ
आती हूँ
तुम्हारे घर के पीछे
करारी-सी झाड़ू लेकर
टीन-टप्पर लेकर
झिरीवाले टोकरे में
उठाती हूँ तुम्हारा
रिसता हुआ पाखाना
जिसमें मैं नहा-नहा जाती हूँ”²²⁹

कवयित्री अपनी कविता में सामाजिक अन्याय, अत्याचार व्यक्त तो करती है पर फिर भी आक्रामक नहीं है। इनके विरुद्ध अतिशय संयम, संयत और समर्थ शब्दों के साथ वे अपना निषेध दर्ज करती हैं। अतिशय और सहज शब्दों के साथ उनकी कविता परिणामात्मक और करने वाला भाष्य वह करती हैं। ‘बदलाव’ कविता में एक ऐसी स्त्री के बारे में व्यक्त कर रही है

²²⁹ नील, नीले रंग के-हेमलता माहिश्वर, पृ-80

जो सवर्णों के घर काम करती है। उसे संडास का काम नहीं करना है, परंतु इस व्यवस्था के चलते वह मजबूर है। न चाहते हुए भी उसे सवर्णों के घर पाखाना साफ करना पड़ता है।

आर्थिक विपन्नता अपने-आप में उतना नहीं अखरती जितना कटु समान-स्वाभिमान पर आघात है। दलित स्त्री कविताओं में उस विमर्श की पूर्व पीठिका तैयार करती है, जिसमें वैज्ञानिक और लोकतांत्रिक तरीके से दलित अधिकारों के सवाल सक्रिय हैं। सवालों का एक ध्रुव पूँजीवाद से दलित अधिकारों के सवाल सक्रिय हैं। सवालों का एक ध्रुव पूँजीवाद से भी टंटा लिये हुए है जो कि ब्राह्मणीय चिंतन का नव रूप ही है। डॉ. अम्बेडकर ने बड़े साफ तौर पर कहा था कि जाति और वर्गहीन समाज का निर्माण बिना स्वराज सार्थक हो ही नहीं सकता। सभ्य-सुसंस्कृत परिभाषित किये जाने वाले समाज में सबको साथ लेकर चलने की बजाय अमानुषी भाव पूरी मानवता पर कोढ़-खाज है।

4.1.5. बाल श्रम

बचपन, इंसान की जिंदगी का सबसे हसीन पल है। न किसी बात की चिंता और न ही कोई जिम्मेदारी। बस हर समय अपनी मस्तियों में खोए रहना, खेलना-कूदना और पढ़ना। लेकिन सभी का बचपन ऐसा हो यह जरूरी नहीं है। बाल मजदूरी की समस्या से पूरा देश वाकिफ है। कोई भी ऐसा बच्चा जिसकी उम्र 14 वर्ष से कम हो और वह जीविका के लिए काम करे, बाल मजदूर कहलाता है। गरीबी, लाचारी और माता-पिता की प्रताड़ना के चलते ये बच्चे बाल मजदूरी के इस दलदल में धंसते चले जाते हैं।

स्त्री मुक्ति संदर्भ में बच्चों को शोषण महत्वपूर्ण विषय है। हमारे समाज में बच्चा-माँ का हिस्सा है। कितने निरीह बच्चे इस कारण से अपराधियों के साथ जेल काटते हैं। यू.एन.रपट के अनुसार, इस दुनिया में हर मिनट में एक बच्चा भूख से मरता है। जेल के भीतर के मानव अधिकार का ध्वंस जितना कुप्रसिद्ध है उतना सार्वजनिक जगह में बाल लिंग शोषण

की दर्दभरी घटनाएँ हृदयविदारक हैं। अनिता भारती अपनी कविता ‘तुम्हारे लिए’ में बाल मजदूरी की गाथा व्यक्त करती है-

“समाज के इन सारे छोटुओं की
पहचान बस इत्ती भर है
कि ये अक्सर चाय ढाबों पर
कालीन बुनते हुए
होटलों में बर्तन धोते हुए
गाड़ी के काले धुएँ रंगे हिस्से का
कालापन छुड़ाते हुए
कागज-पन्नी बीनते हुए
कचरे के ढेर से खाना ढूँढते हुए”²³⁰

कवयित्री इन पंक्तियों में समाज में चल रही बाल श्रम से पीड़ित उन बच्चों के बारे में व्यक्त कर रही हैं जो छोटी-उम्र में हमें कई दुकानों में मजदूरी करते हुए दिखाई देते हैं। ये बच्चे या तो अनाथ होते हैं, या फिर परिवार में आर्थिक तंगी के चलते माँ-बाप स्वयं उन्हें मजदूरी करने के लिए भेज देते हैं। जिस उम्र में उन्हें स्कूल जाकर पढ़ना-लिखना चाहिए, उसी उम्र में ये बच्चे सड़कों में कूड़ा उठाते, दुकानों में, ढाबों आदि में नज़र आते हैं। दलित विमर्श की भूमिका में केवल भारती लिखते हैं कि “आर्थिक रूप से दलित सर्वाधिक शोषित है, सर्वाधिक गरीब है, इसमें संदेह नहीं। वे मजदूर भी हैं, और अपने जन्म के साथ ही मजदूर हो जाते हैं। सही मायने में यदि कोई श्रमिक वर्ग है, तो वह दलित वर्ग ही है।”²³¹ रनजी अनुरागी ‘सदियों की सूबह दो’ कविता में लिखती हैं कि,

²³⁰ रूखसाना का घर-अनिता भारती, पृ-13

²³¹ दलित विमर्श की भूमिका-केवल भारती, पृ-23

“ठीक उसी सुबह उसी समय
 गली में दिखाई देते हैं अनगिनत बच्चे
 कूड़ा बीनते हुए
 ठंड से ठिठुरते हुए
 काँपते हाथ, जेबड़ी बने बाल,
 सर्द चेहरे, पिचके खाली पेट..
 फटे कपड़े, बेहद चिक्कट... बदहाल
 बीनते हैं कूड़े से ‘उपयोगी’ सामान
 समलन कागज़, काँच, गत्ते, प्लास्टिक, सूखी ब्रेड, बासी भाता।”²³²

इन पंक्तियों को पढ़ कर यह संवेदना जागती है कि यह किस तरह का समाज है जहाँ एक तरह उसी उम्र के बच्चे उसी वक्त स्कूल जाने के लिए तैयार होते हैं वहीं दूसरी तरह दलितों के बच्चे कूड़ा-कचड़ा उठाने के लिए बाल-मजदूरी के काम पर निकलते हैं। कवयित्री ने ‘सर्दियों की सुबह एक’ में सवर्णों के उन बच्चों के बारे में लिखा है। जो ममता के आँचल में पलते हैं, जिन पर दुःख की छाया भी नहीं पड़ती है। जिनके खाने-पीने का पूरा ख्याल रखा जाता है। जो अपनी इस छोटी-सी उम्र में श्रम कर चार पैसा कमाते हैं। अपनी रोजी-रोटी के लिए दर-दर की ठोकें खाते लावारिस की तरह जीवन जीते हैं। उनके आँखों में कई सपने सजते हैं। वे भी दूसरे बच्चों की तरह स्कूल जाने का सपना देखते हैं। क्या कभी इन बाल-मजदूरों का सपना पूरा हो पायेगा? क्या कभी ये सर्दियों के दिनों में कूड़ा-कचड़ा उठाने नहीं बल्कि स्कूल जा पायेंगे? डॉ. प्रमीला के.पी. लिखती हैं “बेजुबान बच्चे के शोषण का जिम्मेदार उसके परिसर में जीवित सभी बुजुर्ग हैं। लिंगशोषण को लेकर यह बताया गया कि बच्चों तथा बच्चियों पर अत्याचार के मामलों में पयार्थ ध्यान नहीं दिया जाता। इस कारण से

²³² दलित महिला लेखन-2015, खंड-2, सं. रजनी तिलक, पृ-235

शोषण होता है। घर के अंदर भी रिश्तेदारों द्वारा बच्चों का लिंगशोषण किया जाता है। इसके अपराधी सामान्य मनुष्य है, न कोई पागल, न कोई मेनियाक। इन लोगों को लेकर ऐसी प्रतिक्रिया उन्हें बचाने का चारा बन जाता है। मतलब बच्चों की निरीहता का लाभ उठानेवाले अपराधी हैं।”²³³ कवयित्री कुसुम मेघवाल ‘बदल सकती हो तुम भाग्य अपना’ में लिखती हैं-

“खोद रही थी खेत-खलिहान

बच्चे भी थे मेरे साथ।

उस समय कहा था सभी ने

नहीं लिखा है तुम्हारे भाग्य में

शिक्षा-पैसा और वैभव।”²³⁴

कविता में अपने भाग्य से लड़कर दलित स्त्री स्वयं अपनी किस्मत बना सकती है। दलितों के भाग्य में शिक्षा, पैसा, वैभव, सम्मान आदि सब जीवन में नहीं हैं। उनके जीवन में अशिक्षा, दरिद्रता, दुःख और अत्याचार ही लिखा है। कवयित्री इस कविता के द्वारा यहाँ समझाना चाहती है कि, वह अपना और अपने बच्चों का भाग्य स्वयं बदल सकती है। अपने बच्चों को बाल मजदूर नहीं बल्कि, नौकरी करते हुए देखना चाहती है। सवर्णों की बच्चों की तरह उसके बच्चें भी स्कूल जा कर भविष्य में अपना नाम करेंगे।

‘भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर’ की भूमिका में डॉ. विमल थोरात का कहना है “दलित वर्ग के पास यातना और वेदना के अनुभवों का उफनता हुआ समुंदर है। जीवन के किनारे को छूती हुई पीड़ा की एक दर्द भरी कहानी है। इन विशिष्ट त्रासद अनुभवों की अभिव्यक्ति ने मानव जीवन के छिपे हुए सत्य को उजागर कर दिया।”²³⁵ दलित स्त्री एवं बच्चे का जीवन-संदर्भ इनसे बदतर है। जाति और वर्ग से पीड़ित होकर उनकी मानवीय

²³³ स्त्री-मुक्ति और कविता- सं. डॉ. प्रमीला के.पी. पृ. 120

²³⁴ दलित स्त्री लेखन-2015, खंड-2, सं. रजनी तिलक, पृ-203

²³⁵ दलित हिंदी कविता का वैचारिक पक्ष-श्यामबाबू शर्मा, पृ-191

पहचान कभी नहीं होती। सामाजिक उपेक्षा और अपने घर के भीतर का पुरुषवर्चस्व दोनों की ये शिकार होती है। पूनम तुषामड़ अपनी कविता ‘रंग’ के अंतिम पंक्तियों में लिखती हैं कि,

“‘जाति’ का डर

उसे इस कदम सताता है

कि एक दिन वह बालक स्कूल के

नाम से कतराता है।

और इस तरह न जाने

कितने बचपन नष्ट हो जाते हैं

उनके जीवन के स्वाभाविक रंग

मिट जाते हैं।”²³⁶

कवयित्री जीवन के अनेक रंगों से परिचय कराते हुए लिखती है कि बचपन के रंग भिन्न-भिन्न होते हैं। दलित बच्चों के जीवन का रंग सवर्णों के बच्चों के रंग से भिन्न है। इन बच्चों के रंग में खुशी नहीं बल्कि दुःख, ग्लानि, घृणा, अपमान, तिरस्कार भरा हुआ है। आज पूरे दुनिया भर में 215 करोड़ ऐसे बच्चे हैं, जिनकी उम्र 14 वर्ष से कम है और इन बच्चों का समय स्कूल में कॉपी-किताबों और दोस्तों के बीच नहीं बल्कि होटलों, घरों, उद्योगों में बर्तनों, झाड़ू-पोछे और औजारों के बीच बीतता है। भारत में यह स्थिति बहुत ही भयावह हो चली है और दुनिया में सबसे ज्यादा बाल मजदूर भारत में ही हैं। 1991 की जनगणना के हिसाब से बाल मजदूरों का आँकड़ा 11.3 मिलियन था। 2001 में यह आँकड़ा बढ़कर 12.7 मिलियन पहुँच गया। “बालश्रमिकों की दयनीय स्थिति और उनका अमानवीय ढंग से इस्तेमाल समस्त मानव अधिकारों की निष्क्रियता का प्रमाण है। बचपन को आजीविका के लिए आहुति करके ये खतरनाक कामों में व्यस्त होते हैं। शिक्षा-दीक्षा की बात कहाँ, सामान्य नागरिक के तमाम

²³⁶ दलित महिला लेखन-2011(खंड-1)- सं. रजनी तिलक, पृ-48

बुनियादी हकों से ये वंचित एवं उपेक्षित हैं। जाति-धर्म के हैवानियत में स्त्रियों व बच्चों को जलाना, हड़पना, बलात्कार करना, कोख चीर कर मार डालना इत्यादि कार्यों से वे कहर की अथाह में धँस जाते हैं। स्त्रियों व बच्चों को धार्मिकता के विभाजन में शिकार बनाए जाते हैं।”²³⁷

कविता में यह बताया गया है कि किस तरह दलित बच्चों के साथ स्कूल में दलित होने के कारण शोषण किया जाता है। यह शोषण मानसिक और शारीरिक दोनों रूप से किया जाता है। जिसके चलते अगर दलित छात्र स्कूल में पढ़ने भी जाए तो अध्यापकों के शोषण से डर कर स्कूल छोड़ना पड़ता है। विभिन्न कारणों में यह भी एक कारण है। जिसकी वजह से उसे बाल मजदूर बनने के लिए विवश होना पड़ता है।

4.1.6. आर्थिक अस्मिता

स्त्रियों की एक ओर सामाजिक व्यवस्थाओं ने स्त्री को अधिकार देने में पुरुष की सुविधा का विशेष ध्यान रखा है, दूसरी ओर उसकी आर्थिक स्थिति भी परावलम्बन से रहित नहीं रही। दलित स्त्री के संबंध में पुरुष का स्पष्ट करें नाम जितना यथार्थ है, उतना संभवतः और कोई नाम नहीं। स्त्री, पुत्री, पत्नी, माता आदि सभी रूपों में आर्थिक दृष्टि से कितनी परमुखापेक्षिणी रहती हैं, यह कौन नहीं जानता? इस आर्थिक विषमता के पक्ष और विपक्ष दोनों ही में बहुत कुछ कहा जा सकता है और कहा जाता रहा है। पूनम तुषामड़ अपनी कविता ‘अम्मा’ में लिखती हैं-

“कभी सोचा है?

बरसों से खंडहर हो गई

इस देह से जुड़े काँधे

²³⁷ स्त्री-मुक्ति और कविता- सं. डॉ. प्रमीला के.पी. पृ. 121

कैसे उठा पा
चार-चार संतानों
शवों का बोझ
जो एक-एक कर चढ़ गए
तुम्हारी व्यवस्थाजनित
भूख, बिमारी, गरीबी और
बेकारी की बलि।”²³⁸

‘अम्मा’ एक सफाई कर्मचारी दलित स्त्री का रेखाचित्र प्रस्तुत करती है। मनुस्मृति ने जाति-व्यवस्था की जो बेड़ियाँ दलितों के पैरों में बाँधी है। उसे तोड़ना मुश्किल है। न जाने इस व्यवस्था के कारण कितने दलित भूख, बीमारी, गरीबी और बेकारी की बलि चढ़ गये। अम्मा ने आर्थिक विषमता के चलते अपने चार बच्चों को खो चुकी हैं। झाड़ू लगाकर अपना गुजारा नहीं कर पाती है। वह लाचार अपने आँखों में शोक लिए झाड़ू लगाती है।

महादेवी वर्मा समाज में आर्थिक समस्या से जूझती स्त्रियों के बारे में लिखती हैं “आर्थिक दृष्टि से स्त्री की जो स्थिति प्राचीन समाज में थी, उसमें अब तक परिवर्तन नहीं हो सका, यह विचित्र सत्य है।”²³⁹

भारतीय समाज में दलित स्त्रियों की आर्थिक स्थिति को दर्शाता है। प्राचीन वर्ण व्यवस्था से लेकर आज तक दलित स्त्रियों का जो आर्थिक शोषण हुआ है, उसकी भरपाई कर समाज में इन्हें समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए। इनका सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक व साथ ही आर्थिक शोषण बंद हो और इन्हें सभी रूपों में समता व बंधुता का अधिकार मिले डॉ.अम्बेडकर का यही सपना था।

²³⁸ दलित महिला लेखन : 2011 (खंड-1) सं. रजनी तिलक, पृ-46

²³⁹ श्रृंखला की कड़ियाँ-महादेवी वर्मा, पृ-87

कुसुम मेहवाल अपनी कविता 'दलित नारी की पहचान' में लिखती हैं कि,

“बोलते हैं दिन उसके
खेतों और खलिहानों में
आकाश की छत तले।
आंधी हो या तूफान
टकराती है, वह दोनों से
नहीं जानती वह रुकना
नहीं जानती वह डरना
लगी रहती है आठों पहर
अपने परिवार के पोषण में।”²⁴⁰

दलित स्त्री अब हार मान कर समाज में जीना नहीं चाहती। आर्थिक दृष्टि से पीड़ित होने के बावजूद भी वह अपने घर परिवार के लिए समाज से लड़ने के लिए तैयार है। चाहे वह खेत पर काम करें, या सवणों के घरों पर झाड़ू-पोछा करें, हर स्थिति में वह अपने बच्चों का पेट-पालना चाहती है। तमाम आर्थिक अवसादों, विभिन्नताओं के बावजूद दलित स्त्रियों ने समाज को अज्ञानता, दरिद्रता, हीनता से लड़ने की अदम्य इच्छा रखते हुए साहित्य का सृजन कर रही हैं। उसके अनुभव ही उसकी अभिव्यक्ति हैं और जीवन के कठोरतम क्षणों में सृजित शब्द उसके लिए महत्वपूर्ण हैं। मानवीय सरोकारों से जुड़े तमाम विचार उसे मान्य हैं। वे विचार जो मनुष्य को सम्मान से जीना सिखाते हैं।

दलित लेखक संघ की अध्यक्ष डॉ. विमल थोरात लिखती हैं “मर्दवादी ताकतों के एकत्र होने से पहले नारीवादी ताकतों को इस खतरे को भाँप लेना चाहिए। एकजुट होकर संघर्ष करने की जरूरत बड़ी शिद्दत से महसूस होने लगी है। अपनी लेखनी में सौ-सौ मिसाइलों

²⁴⁰ दलित महिला लेखन-2015, खंड-2, सं. रजनी तिलक, पृ-202

की मारक शक्ति भरकर लिंग-पिचाशों पर हमला बोलने का समय आ गया है। नारीवादी, समतावादी, स्वतंत्रचेतना मुक्तिकांक्षी समूहों के लिए यह एक चेतावनी की घड़ी है।”²⁴¹

सुशीला टाकभौर की कविता ‘यह तो शर्म की बात है’ में कवयित्री दलित स्त्रियों को अपने अस्मिता, अस्तित्व की पहचान कराती हुई लिखती हैं-

“माँ-बहन गुलामी करें
कठोर श्रम के बदले पायें
जूठन और उतरना
सदा सिर झुका रहे,
जाति व्यवस्था के अनुसार
मूल्यांकन हो समाज का,
उपेक्षा और ग्लानि के आधार पर।”²⁴²

स्त्री का सहनशील होना उसकी कमजोरी का प्रतीक नहीं है। सहनशील होने के लिए हौसला और ताकत अपेक्षित है। स्त्री झुककर अपने घर-परिवार के लिए खुशियाँ बटोरना चाहती है। सब कुछ सहकर पुरुष के बदलने की आस मन में संजोए रखती है। सुशीला टाकभौर दलित स्त्रियों की इस मानसिकता को बदलने के लिए प्रतिबद्ध हैं। शोषण सहकर स्त्रियों ने बहुत कुछ खोया है। फलतः अब सहनशील होने से काम नहीं चलेगा। अब औरत को अपनी वास्तविक शक्ति को पहचान कर अपने हक और अधिकार के लिए मार्ग प्रशस्त करना पड़ेगा।

आलोचक श्यामबाबू शर्मा कहते हैं “दलित स्त्रियाँ सवर्ण पुरुषों द्वारा यौन-शोषण का शिकार होने से अपने को बचा नहीं पाती। एक तो आर्थिक रूप से वे इसी सवर्ण समाज पर

²⁴¹ स्त्री नैतिकता का तालिबानीकरण, सं. रमणिका गुप्ता, विमल थोरात, पृ-155

²⁴² यह तुम भी जानो, तुमने उसे कब पहचाना –सुशीला टाकभौर, पृ-45

निर्भर हैं। खेतों खलिहानों, जंगलों व घरों में काम करते वक्त वह सामाजिक रूप से सुरक्षित नहीं। उसके प्रति सवर्ण पुरुषों का रवैया विकृति की स्थिति तक पहुँचता है। उसे केवल भोग की वस्तु समझा जाता है। समाज में निम्न मानी गयी श्रेणी के कारण सुरक्षा के उन सभी कवचों से दलित स्त्री वंचित है। वह हर समय असुरक्षित स्थितियों में ही काम करती है। पेट में समस्या पेट, धँसी आँखें और चिंताओं की सिलवटों का चेहरा क्रूर शोषकों को ताजा गोشت लगता है।”²⁴³ हेमलता माहिश्वर की कविता ‘नील, नीले रंग के-1’ में लिखती हैं-

“थाद है न
गर्दन में लटकती
हंडी और
कमर में बंधी
झाड़ू की रस्सी से
छलछला उठते
रक्त बिंदु।”²⁴⁴

कवयित्री की यह कविता इस सामाजिक परिवर्तनशील, संवेदनशीलता और सामाजिक चेतना संपन्न है। यह कविता एक स्वर और इकहरेपन का धोखा देती है पर ऐसा है नहीं। कविता में निश्चित तौर पर दलित, शोषित, पीड़ितों के पक्ष में तो खड़ी होती है पर प्रतिशोधवादी नहीं है। ये सहिष्णु, सकारात्मक और संवादधर्मी हैं।

4.2. अफ़्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में आर्थिक मजबूरी

मतदान और अन्य तमाम नागरिक अधिकारों के बावजूद आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में स्त्री की स्वतंत्रता सिर्फ अमूर्त और सैद्धांतिक रह जाती है। पुरुष पर अपनी आर्थिक

²⁴³ दलित हिंदी कविता का वैचारिक पक्ष- श्यामबाबू शर्मा, पृ-116-117

²⁴⁴ नील, नीले रंग के- हेमलता माहिश्वर, पृ-40

निर्भरता की स्थिति में स्त्री अपनी किसी भी भूमिका-पत्नी, प्रेमिका या रखैल में स्वावलंबी नहीं हो पाती। अर्थ ही व्यक्ति को वह अधिकार देता है, जिसके द्वारा वह अपनी परियोजनाएँ पूरी कर सके। अनेक स्त्रियाँ, चाहे वे बहुत साधारण अवस्था में ही क्यों न हों, आर्थिक अधिकारों से मिलने वाली सुविधाओं का महत्व जानती हैं।

अफ्रो-अमेरिकन कवियत्रियों ने आर्थिक समस्या और मजबूरी को विषय पर लिखा है। समाज से जुड़ी हर समस्या के साथ आर्थिक परेशानी भी मुख्य रूप है, जो जीवन के संघर्ष में आगे आता है। ‘रूसों की ‘सोशियल कॉन्ट्रैक्ट’, मार्क्स की ‘कम्युनिस्ट मेनोफेस्टो’, पोप तेरहवे लुई की ‘मजदूरों की स्थिति’ और जॉन स्टुअर्ट मिल की ‘लिबर्टी, समाज-रचना के संबंध में चार मूल किताबें मजदूरों को अवश्य पढ़नी चाहिए।’²⁴⁵

4.2.1. आर्थिक विपन्नता

पुरुष और स्त्री, चाहे वे मजदूरी करने वाले हों या फिर खेत-खलिहान या दफ्तर में काम करने वाले। दिन भर साथ-साथ और बराबर काम करने के बाद घर लौटते हैं। पुरुष हाथ-मुँह धोकर आराम करता है और खाना खाकर सो जाता है। परंतु स्त्री घर के काम में जुट जाती है और देर रात तक जुड़ी रहती है। यह हमारे समाज का नियम है। जो पुरुषों को श्रेष्ठ और स्त्री को गुलाम समझता है।

आर्थिक रूप से पीछे रहने के कारण भी उसे पुरुषों पर अपनी हर चीज़ के लिए निर्भर रहना पड़ता है। पुरुषों के समक्ष हाथ फैलकर पैसों की भीख मांगनी पड़ती है। पुरुषवादी समाज या सोच के चलते स्त्रियाँ दुनिया के चाहे किसी भी कोने में क्यों न हो? उसको लगभग बराबर स्थिति है। यही कारण है कि उसे अपने जीवन के हर पहलू पर लेखनी चलाने की

²⁴⁵ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा... खंड 3- सं. एल.जी.मेश्राम ‘विमलकीर्ति’, पृ-344

जरूरत पड़ी। आर्थिक विपन्नता के चलते अफ्रो-अमेरिकन समाज की स्थिति को व्यक्त करती हुई। कवयित्री एलिस वॉकर अपनी कविता 'Gift' (उपहार) में लिखती हैं-

“for I am rich,
No cheap and ragged
Beggar
But a queen
To rouse the king
I need in you.”²⁴⁶

सदियों की गुलामी और आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण अफ्रो-अमेरिकन स्त्री और पुरुष को अमेरिकन की गुलामी करनी पड़ी। बर्नार्ड शॉ लिखते हैं “गोरी चमड़ी वाले अमेरिकन काले नीग्रो को जूता पालिश करने वाले लड़के के दर्जे में उतार लेते हैं और इसके बाद वे यह निर्णय देते हैं कि, काला आदमी सिवाय जूता पालिश के और कुछ नहीं कर सकता।”²⁴⁷

स्त्रियाँ पुरुषों की दी हुई आर्थिक सुविधाओं को भोगती हुई उसी के सामाजिक स्तर से अपना तादात्म्य स्थापित करती हैं। पुरुष उसके आस पास कभी पिता, कभी भाई तो कभी पुत्र के रूप में रहता है। बुर्जुवा वर्ग की स्त्री समस्वरता अपने ही वर्ग के पुरुषों के साथ है। वह सर्वहारा स्त्रियों के साथ एक प्राण नहीं हो सकती। श्वेत स्त्रियाँ कभी-कभी अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों के साथ बहनापा स्थापित नहीं करती। सर्वहारा वर्ग, सत्ताधारी वर्ग के पूरे खात्मे का निर्णय ले सकता है। अत्यंत पीड़ित अश्वेत अपनी दमित अवस्था में पूरी मानव-जाति को

²⁴⁶ Her blue body everything we know- alice walker, p-221

²⁴⁷ सीमोन द बोउवार-स्त्री उपेक्षिता, पृ-28

काले रंग देने के साधन की कल्पना कर सकता है लेकिन औरत पुरुष को खत्म कर देने की कल्पना नहीं कर सकती।

कवयित्री माया एंजेलो को कविता 'women me' में लिखती हैं-

“deafening revolutions nestle in the

Cleavage of

Your breasts

Beggar-kings and red-ringed priests

Seek glory at the meeting

Of your things.”²⁴⁸

आज के तथाकथित शालीन और आधुनिक युग में जब दलितों और अल्पसंख्यकों का जीवन स्याह बना हुआ है, तब माया एंजेलो के समय में इसका क्या स्वरूप रहा होगा? इस बात का अंदाजा लगाना कठिन नहीं है। वह अपने माता-पिता की छत्रछाया में केवल तीन साल ही रहीं, क्योंकि बाद में उन दोनों का तलाक़ हो गया। माता-पिता ने माया को उनकी दादी के पास भेज दिया। माया एंजेलो के आगे का जीवन बेहद संघर्षमय रहा, जो उन्होंने अपने बूते जिया। उनका जीवन कई विषम घटनाओं से प्रभावित भी रहा। इन दुर्घटनाओं के चलते उनके जीवन को एक नया आयाम दिया। होश संभालने के बाद उन्होंने अपनी व्यक्तिगत सत्ता को ज़ोरदार तरीके से पेश करते हुए कई बड़े काम किए।

प्रभा खेतान 'स्त्री: उपेक्षिता' में लिखती हैं, “नित्य कई तकनीकों से पुरुष नई एवं असीम सम्भावनाओं को खोल रहा था। उसने दास-प्रथा का अन्वेषित किया, जिससे श्रम को उत्पादन में लगाया जा सके। औरत से अधिक काम गुलाम कर सकते थे। अतः धीरे-धीरे

²⁴⁸ Oh pray my wings are gonna fit me well-maya angelou, p-51

उसकी आर्थिक भूमिका भी फीकी पड़ने लगी। चूंकि औरत के ऊपर पुरुष को सीमित अधिकार था, अंतः गुलाम से सम्बंधित होकर मालिक को अपनी सर्वोच्च सत्ता का ज्यादा दृढ़ीकरण महसूस हुआ। औरत पर कहीं उसकी निर्भरता थी, क्योंकि वह स्वयं संतानोत्पत्ति नहीं कर सकता था। स्त्री कुछ नहीं, बस सेवा के लिए बनी थी। पुरुष से भिन्न नहीं, बल्कि पुरुष की होकर भी उससे हीन थी।”²⁴⁹ कवयित्री रीटा डॉव अपनी कविता ‘His shirt’ में लिखती हैं कि,

“in candle light at turns

a penitent’s

scarf or beggar’s

fleece, his shirt is

in approachable

it is the very shape.”²⁵⁰

आर्थिक विपन्नता कहें या गरीबी, अभाव या मजबूरी इन सभी परिस्थितियों में अफ़्रो-अमेरिकन स्त्री अपने आर्थिक समस्या का सामना स्वयं किया है। कविता में कवयित्री कमीज़ का उदाहरण देकर अपनी बात कह रही है। आर्थिक परिस्थितियों का सामना करके इस तरह वह जीवन की जरूरतों को पूरा कर रही है।

4.2.2. आर्थिक अस्मिता

स्त्री की पहचान, अस्मिता और अधिकार के प्रश्नों के समीकरण खोजती हुई स्त्रियों से यह आग्रह भी है कि वह अपने आर्थिक अस्मिता के लिए स्वयं आगे आए। अपने दूसरे अधिकारों को धीरे-धीरे पहचानने के बावजूद वह इस बात से परे है कि आर्थिक रूप से भी

²⁴⁹ स्त्री उपेक्षिता- प्रभा खेतान, पृ-57

²⁵⁰ Selected poems- rita dove, p-60

उन्हें उनका ही सशक्त होना पड़ेगा। जितना राजनीति या सामाजिक रूप से। “मूल्य निर्धारण के लिए हम सभी को श्रेणियों में बांटा गया। मर्द और औरतें, बूढ़े और जवान, शादीशुदा और कुंवारे, सबको घोड़ों, भेड़ों और सुअरों के साथ श्रेणी में बांटा गया। वहां घोड़ा और आदमियों गाय बैल और औरतों स्वर और बच्चों की श्रेणियां थीं। इन सबको एक ही पैमाने पर मापा गया था और वहां भी सब का नजदीकी परीक्षण होना था दासों और दास स्वामियों दोनों पर दास प्रथा की क्रूरता का प्रभाव मैंने उस समय सर्वाधिक स्पष्ट रूप में देखा।”²⁵¹

उनके दर्द अनुभूतियों के स्तर पर मापें। क्योंकि अक्सर देखा जाता है कि समाज में नारी स्वातंत्र्य और अधिकार की लड़ाई लड़ने का झंडा उठाती स्त्रियाँ अपनी विशिष्टता एवं वर्ग चरित्र के कारण अपने को आम स्त्रियों से अलग-सा महसूस करती हैं। स्त्री चाहे श्वेत समाज की हो या अश्वेत, यदि उसकी स्थिति हाशिये पर ही बनी रहती है तो केवल स्त्री समाज की ही नहीं, बल्कि पूरे समाज और राष्ट्र की हानि होती रहेगी। कारण, स्त्रियाँ मानव जाति का आधा हिस्सा हैं। कवयित्री एलिस वॉकर अपनी कविता ‘Remember?’ में लिखती हैं-

“I am the girl
Holding their babies
Cooking their meals
Sweeping their yards
Washing their clothes
Dark and rotting
And wounded, wounded.”²⁵²

²⁵¹ एक अमेरिकी गुलाम- फ्रेडरिक डगलस-अनु. ब्रज किशोर वशिष्ठ, पृ. 48

²⁵² Her blue body everything we know- alice walker, p-317

कवयित्री यहाँ पर स्वयं का अस्तित्व लोगों को याद दिलाती हुई लिख रही हैं कि मैं वह लड़की हूँ जो, दूसरे बच्चों को संभालती है। खाना बनाती है, आंगन और कपड़ों की सफाई करती है।

मेरा जीवन और मेरी पहचान बस यही है कि मैं आपकी गुलाम हूँ। सालों से मैं एक ऐसी नौकरी कर रही हूँ, जिसके लिए वेतन नहीं दिया जाता। गरिमा श्रीवास्तव 'स्त्रीकाल' पत्रिका में हैरियट जैकोब्स की बारे में लिखती हैं कि "दास होते हुए उसके अपने बच्चों को पालने में स्त्रीत्व की सार्थकता पाया, 'मेरे बच्चे आयरलैंड की गरीबी में रहे, वह अमेरिकी दास-प्रथा में रहने से हजार गुना बेहतर होगा। एक ईर्ष्यालु मालकिन और अशिष्ट मालिक के साथ रहने से बेहतर है, कपास के खेत पर जी जान से मजदूरी करते हुए मर जाना।"²⁵³

"I've got the children to tend

The clothes to mend

The floor to mop

The food to shop

Then the chicken to fry

The baby to dry

I got company to feed

Then garden to weed."²⁵⁴

'Women work' कविता में माया एंजेलो औरतों के काम के बारे में बता रही हैं। औरत घर को हर एक काम करती है, परंतु पुरुषों के नज़र में हीन ही समझी जाती है। इसका मुख्य कारण ही अर्थ से जुड़ा हुआ है। अगर स्त्री आर्थिक रूप से पुरुषों से श्रेष्ठ हो, तो पुरुष भी

²⁵³ स्त्रीकाल- सं. संजीव चंदन, पृ-97

²⁵⁴ And still I rise- maya angelou, p-31

उसे सलाम करता है। गुलामों को मालिकों ने आर्थिक रूप से कभी विकसित होने ही नहीं दिया। श्वेत समाज को यह ज्ञात था कि अश्वेत गुलाम आर्थिक दृष्टि से उन्नति करने पर विद्रोह करने लगेंगे। इसी के चलते श्वेत लोगों ने चारों ओर से उन्हें निर्बल कर दिया। ताकि, वह अपनी आवाज़ कभी उठा न सके।

विजय शर्मा लिखती हैं “गुलामी समाप्त होने के काफी समय बाद तक अश्वेत लोग श्वेत मूल्यों के आधार पर खुद को जाँचते-परखते रहे और खुद को हीन मानते रहे। अमेरिका के अश्वेतों ने श्वेत लोगों के नजरिये को आत्मसात किया हुआ था। इसीलिए माया एंजेलो बताती हैं कि, जब उनके आसपास के सब लोगों का स्वप्न गोरी गुड़िया हो तो वे भला इससे कैसे बचतीं।”²⁵⁵

गुलामी समाप्त के बाद ही अश्वेत लोगों के मन से सालों की गुलामी का असर कम नहीं हुआ। स्वतंत्र होने के बाद ही मन में कई द्वंद्व चल रहे थे। अपने आप को श्वेत लोगों के बीच एक नई पहचान देने का सवाल सबसे बड़ा था। हर क्षेत्र में श्वेत लोगों से अपनी तुलना करना और उनसे बेहतर जीवन का स्वप्न था। कवयित्री ओड्रे लोर्डे अपनी कविता ‘What my child learns of the sea’ में लिखती हैं कि,

“This is why

More than blood

Or the milk I have given her

One day a strange girl will step

To the back of a mirror

Cutting my ropes

²⁵⁵ अफ्रो-अमेरिकन साहित्य स्त्री स्वर – विजय शर्मा, पृ-155

Of sea and thunder and sun.”²⁵⁶

आलोचक एस.डी.कपूर अपनी पुस्तक ‘Dalits and African-Americans’ में लिखते हैं, “Toni Morrison emphasizes other aspects of their experience. She says that the past should be accepted not only with its pain and suffering but also with qualities of endurance, resilience and acceptance which the people developed during the period of slavery. The whole problem of dealing with the past, according to Toni Morrison, has to do with two things. To live for something and also to sabotage yourself.”²⁵⁷ अर्थात् टोनी मॉरिसन ने अपने अनुभव के अन्य पहलुओं पर जोर दिया। वह कहती है कि अतीत को न केवल अपने दर्द और पीड़ा के साथ बल्कि धीरज, लचीलापन और स्वीकृति के गुणों के साथ स्वीकार किया जाना चाहिए। जो कि गुलामी की अवधि के दौरान लोगों का विकास होता है। टोनी मॉरिसन के अनुसार, अतीत से निपटने की पूरी समस्या दो चीजों के साथ रहता है, कुछ के लिए जीना और खुद को तोड़फोड़ करना।

अमेरिका में अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों की गुलामी का सवाल हो या उनके आर्थिक अस्मिता का सवाल हो, उनको समाज में अधिकारों से और सभी प्रकार के मानवी अधिकारों से वंचित रखने की बात हो। इन सब का कारण रंग और नस्ल को हथियार बनाया गया है। अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों को आर्थिक अस्मिता की पहचान अब बहुत आवश्यक हो चुका है। ताकि आर्थिक स्तर पर अपने पैरों पर खड़े हो सके।

²⁵⁶ द पोएट्री ऑफ़ ब्लैक अमेरिकन-आनॉल्ड एंडोफ, पृ-247-248

²⁵⁷ दलित्स एंड अफ्रीकन अमेरिकंस- एस.डी. कपूर पृ-177

4.2.3. दरिद्रता

अफ्रो-अमेरिकन लोगों का जीवन दरिद्रता की रेखा में गुजरा है। एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति पर शासन करने की भावना से हर तरह की गुलामी का उदय होता है। इसका अनुभव हम सब अपने जीवन में कभी न कभी अवश्य करते हैं। दूसरे पर शासन करने की इच्छा का तात्पर्य है कि, वह व्यक्ति हमारी इच्छाओं, जरूरतों की पूर्ति का साधन बन जाए। आदर्श रूप में एक गुलाम अपने मालिक अथवा मालकिन को खुश करने की या खुशामद करने की इच्छा को आत्मसात कर लेता है, ठीक वैसे ही जैसे कि एक पालतू जानवर करना चाहता है। “विश्व बाज़ार की अन्य पण्य वस्तुओं के समान स्त्रियों का भी ग्लोबलैसेशन हो रहा है। तीसरी दुनिया की स्त्रियों के राजमर्जी जीवन और जिजीविषा के संकल्पों को इसने गहरी चोट लगा दी है। उन्नीस सौ पचानब्बे की विश्व स्वास्थ्य संगठन की रपट में पूरी मानव राशि के पांच का एक हिस्सा, इनकी संख्या तकरीबन एक दशमलव एक बिलियन होगी, अब भी गरीबी के संकट में त्रस्त बताया गया है।”²⁵⁸ कवयित्री लूसी क्लिफ्टन अपनी कविता ‘Good Times’(अच्छा समय) में लिखती हैं-

“My daddy has paid the rent
And the insurance man is gone
And the lights is back on
And my uncle brud has hit
For one dollar straight
And they is good times
Good times

²⁵⁸ औरत की अभिव्यक्ति एवं आदमी का अधिकार- डॉ. प्रोमिला के.पी. पृ.58

Good times.”²⁵⁹

कवयित्री अपने बच्चों को सहानुभूति दिलाते हुए अपने पुराने दिनों के कुछ अच्छे पलों को याद करती हैं। जब वह स्वयं एक बच्ची थी। उनके माता-पिता ने खाने-पीने और रहने के लिए काफी संघर्ष किया। अपने अच्छे यादों के सहारे अपने दरिद्र जीवन को काटने की हिम्मत मिलती है। पैसों का मूल्य जीवन में खुशी लाने का काम करता है। पैसों से रहने के लिए घर, खाने के लिए भोजन मिलता है परंतु गुलाम लोगों के लिए हर सपने एक अंधकार गोले के तरह है जो धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। विजय शर्मा लुसिल क्लिफ्टन के बारे में लिखती हैं “जल्द ही ये श्वेत जीवन से अश्वेत जीवन मूल्यों की ओर मुड़ गयीं। इस तरह ये अपनी जड़ों से जुड़ कर अपने धार्मिक और नस्लीय विरासत का उत्सव मनाने लगीं। ‘गुड न्यूज अब एंड ए मेमोयर’, ‘द बुक ऑफ लाइट: पोयम्स’, ‘ब्लेसिंग द बोट्स’, ‘न्यू एंड सेलेक्टेड पोयेम्स’ आदि इनके काव्य संग्रह हैं। कवि अक्सर बच्चों के लिए नहीं लिखते हैं, मगर इन्होंने कविता संग्रह के साथ-साथ सफलतापूर्वक बच्चों के लिए भी लिखा। यहाँ भी ये अश्वेत अस्मिता, मूल्य और गर्व की बात करती हैं।”²⁶⁰ कवयित्री एलिस वॉक्स अपने कविता ‘Talking to my grandmother who died poor’ में लिखती हैं-

“no doubt I will end my life as poor as you

Without the wide veranda of your dream

On which to sit and fan myself slowly

Without the tall drinks to cool my bored

Un thirsty throad.

You will think: oh, my grand daughter failed

To make something of herself

²⁵⁹ The poetry of black American- Arnold adoff, p-306

²⁶⁰ अफ्रो-अमेरिकन साहित्य स्त्री स्वर – विजय शर्मा, पृ-319

In the white man's world!"²⁶¹

कविता में कवयित्री ने अपनी दादी माँ की गरीबी के कारण मृत्यु की घटना को व्यक्त किया है। जीवन भर गरीबी का दुःख देखा और इसी दुःख में मर भी गईं। गुलामी को प्रथा अपने आप में एक घिनौनी संस्था है। एक समय अमेरिका में इस संस्था को धार्मिक, सामाजिक और कानूनी मान्यता प्राप्त थी। बाकायदा मनुष्यों की खरीद-बिक्री होती थी। यह प्रथा एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के शरीर पर पूरा अधिकार दे देती थी। वह जैसा चाहे अपने गुलाम के साथ व्यवहार करे। स्त्री उपेक्षिता में लिखा है “पुरुष की तुलना में औरत को पगार कम मिलती है। अतः बराबर काम करते हुए भी वह आर्थिक शोषण की शिकार है। चूँकि पुरुष के कार्यक्षेत्र में वह नवागता है, इसलिए सफलता के संयोग उसके लिए कम हैं। पुरुष हो या स्त्री, कोई भी हुकूमत में रहना पसंद नहीं करता। उनको पुरुष पर ज्यादा विश्वास रहता है। ऐसी स्थिति में औरत होना गुनाह न भी हो, तो अजीबोगरीब जरूर है। चूँकि पुरुष को सुविधापूर्ण स्थिति मिली हुई है, अतः यह सिद्ध हो जाता है कि, आर्थिक रूप से स्त्री और पुरुष दो भिन्न जाति हैं।”²⁶²

“This is where poor percy died,

Short of the age of one.

His brother brucie, with a grin,

Burned him up for fun.”²⁶³

‘द मर्डर’ कविता में कवयित्री उस हत्या की व्याख्या कर रही है जो गरीबी, दुःख और दरिद्रता के कारण हुई है। अश्वेत लोगों को जहाँ सारे अधिकार प्राप्त थे। दूसरी ओर अश्वेत लोगों को कोई अधिकार नहीं था। न सामाजिक, न आर्थिक और न ही कानूनी। मनुष्य होने के

²⁶¹ Her blue body everything we know- alice walker, p-300

²⁶² स्त्री उपेक्षिता- प्रभा खेतान, पृ-71

²⁶³ The world of Gwendolyn brooks- Gwendolyn books, p-22

नाते मिलने वाले प्राकृतिक अधिकार भी उसे सुलभ न थे। वह न तो अपनी मर्जी से सो सकता था, न जाग सकता था, मन चाहा खाना-पीना तो दूर की बात है। मन पसंद साथी नहीं चुन सकता था। वह शादी-विवाह नहीं कर सकता था, गुलामों का अपना परिवार नहीं हो सकता था। “आज हम सांस्कृति और वैश्विक गरिमा पर बोल रहे हैं, सूचना विज्ञान के माध्यम से पूरे विश्व को सजा रहे हैं, पर अभी तक यह नहीं सोचा कि गरीबी के इस तित्त यथार्थ से कैसे छुटकारा पाया जाय। मनुष्यों को, उसकी दीनताओं से कैसे मुक्त कराया जाय। अतिजीवन के लिए तड़पनेवाली मामूली औरत के लिए सब कुछ महंगा है, सिवाय उनके श्रम और शरीर छोड़कर।”²⁶⁴ फ्रेडरिक डगलस अपनी आत्मकथा में लिखते हैं-

"जाओ, जाओ, बिको और जाओ
 धान की दलदलों से और एकाकी,
 जहाँ गुलाम पीटे जाते हैं लगातार
 जहाँ बदबूदार कीड़े हैं डसते,
 जहाँ ज्वर-पिशाच का है साम्राज्य
 ओस की बूंदों में बरसता है ज़हर
 जहां की गर्म और कोहरेदार हवा में
 बीमार सूरज की किरणें है चिलचिलाती
 जाओ, जाओ, बिको और जाओ
 धन की दल दलों से और एकाकी
 वर्जिनिया के पहाड़ों और झरनों से
 मैं उदासी हूँ, मेरी चुराई हुई बेटियों।"²⁶⁵

²⁶⁴ औरत की अभिव्यक्ति एवं आदमी का अधिकार- डॉ. प्रोमिला के.पी. पृ.58

²⁶⁵ एक अमरीकी गुलाम- फ्रेडरिक डगलस- अनु. बृज किशोर वशिष्ठ, पृ.50

फ्रेडरिक डगलस ने अपनी आत्मकथा में उस समय के यथार्थ को व्यक्त किया। जो अमेरिका के समाज की वह तस्वीर प्रस्तुत करता है जिसे पढ़कर गुलामी की दरिद्रता सामने आ जाती है। कविता की इन पक्तियों में भी लेखक ने अफ्रो-अमेरिकन लोगों की आर्थिक मजबूरी को बताया है।

4.2.4. भुखमरी

संसार में मनुष्य हो या पशु भूख से कोई बच नहीं सका। पेट की आग बुझाने के लिए मनुष्य कोई भी कार्य करने के लिए तैयार हो जाता है। अश्वेत समाज में भुखमरी बड़ी समस्या के रूप में सामने आई। गुलामों को जानवरों की तरह काम कराने के बाद भी उन्हें खाने के लिए कुछ नहीं देते थे। गुलामी का मुख्य कारण श्रम था। अमेरिका में विशाल खनिज भंडार था। सोने और अन्य खदानों में काम करने के लिए कठोर श्रम में सक्षम लोग चाहिए थे। अमेरिका के मूल निवासी बहुत स्वतंत्र प्रवृत्ति के लोग थे। वे इन कामों के लिए नहीं रखे जा सकते थे। वे उग्र भी थे, बराबरी से लड़ने के लिए तत्पर रहने वाले लोग। यह उनका अपना देश था, वे इसके हर चप्पे से परिचित थे। एक समय ऐसा था कि अमेरिका की आबादी के 90 प्रतिशत लोग अश्वेत गुलाम थे।

कवयित्री एलिस वॉकर की कविता 'A few sirens' में लिखती हैं-

“In the world, people die

Of hunger.

On my block we lose

Jobs, housing and breasts.

But in the world

Children are lost

Whole countries of children

Starved to death

Before the age of five

Each year.”²⁶⁶

दिमाग में हर वक्त एक आवाज़ सी चलती रहती है। आज कवयित्री के पास चाहे सब कुछ हो, परंतु वह चिंतित है, उन बच्चों के लिए जो भूखमरी का शिकार हो रहे हैं। खाना न मिल पाने के लिए न जाने रोज़ दुनिया में कितने ही बच्चे अपना प्राण छोड़ रहे हैं। छोटी उम्र यहाँ पाँच साल के बच्चों का उदाहरण दिया गया है कि इस उम्र के बच्चे पूरी दुनिया में रोज़ मरते हैं। कवयित्री यहाँ किसी निर्धारित वर्ग या नस्ल की बात नहीं, बल्कि पूरे संसार में आर्थिक मजबूरी के शिकार हो रहे छोटे बच्चों की कल्पना कर रही हैं। एलिस वॉकर की प्रसिद्ध उपन्यास ‘द कलर पर्पर’ के बारे में इंदिरा भट्ट लिखती हैं “The black women has her own experiences of exploitations- political, racial, sexual and emotional; she must openly find them mirrored in literature so as to enable her to be recongnized in her own person and realize that there is nothing shameful or abnormal in there experiences.”²⁶⁷ अर्थात् अफ़्रो-अमेरिकन स्त्रियों के शोषण के अपने अनुभव हैं- राजनीतिक, नस्लीय, यौन और भावनात्मक। उसे खुले तौर पर साहित्य में प्रतिबिंबित होना चाहिए ताकि उसे अपने समुदाय में पहचाना जा सके और यह महसूस किया जा सके कि इन अनुभवों में कुछ भी शर्मनाक या असामान्य नहीं है।

कवयित्री गैडोलिन ब्रूक्स कविता ‘my dreams, my works, must wait till after hell’ में लिखती हैं-

²⁶⁶ Her blue body everything we know- alice walker, p-348

²⁶⁷ Feminism and American literature- r.k.dhawan, p-79

“I hold my honey and I store my bread

In little jars and cabinets of my will.

I label clearly, and each latch and lid

I bid, be firm till I return from hell.

I am very hungry. I am incomplete.”²⁶⁸

कवयित्री अपने सपने, अपने काम को रोक रही है, जब तक कि वह नरक न पहुँच जाए। अफ्रो-अमेरिकन स्त्री होने के नाते, उन्हें न जाने अपने जीवन हर सपने को त्याग करना पड़ा है। फिर भी अपनी रचना शैली के लिए वह पहली अश्वेत महिला है, जिन्हें कविता का पुलित्जर सम्मान प्राप्त हुआ। बचपन से उन्हें पढ़ने लिखने में काफी रुचि थी। इसलिए लेखक जॉनसन ने उन्हें मॉडर्न रचनाकारों जैसे टी.एस. इलियट, एजरा पाउंड और ई. ई. कमिंग्स को पढ़ने की सलाह दी। इन कवियों का प्रभाव ब्रूक्स के लेखन पर पड़ा। ब्रूक्स की क्लासिक्स जागरूकता और बोध इसी आलमारी से आयी। अपनी आत्मकथा में वे लिखती हैं- वे कभी नहीं भूल सकती हैं कि कैसे गहरे हरे रंग की सुनहरे अक्षर वाली किताब में खोयी रहती थी। ‘नाइन ग्रीक ड्रामाज’ यह इनका श्वेत खजाना था, जो इन्होंने अपनी विरासत के रूप में पाया था। नतीजा गैडोलिन ब्रूक्स का लेखन आम आदमी जो आर्थिक परिस्थितियों से जुझ रहा है उसे ताकत और मजबूती प्रदान करता है। “she was at the fisk university writers conference of 1967 when the new generation of radical activist writers, proponents of the black power movement, declared that her brand of modernist cultural introspection and formal innovation did not go far enough to serve the interests of the black community.”²⁶⁹ अर्थात् वह 1967 के फ़िस्क विश्वविद्यालय के लेखकों के सम्मेलन में थे, जब नई पीढ़ी के कट्टरपंथी लेखक, अश्वेत

²⁶⁸ The world of Gwendolyn brooks - Gwendolyn brooks, p-50

²⁶⁹ African-american women's literature - angelyn Mitchell, p-179

शक्ति आंफोलन के प्रवर्तक ने घोषणा की, कि वह आधुनिकतावादी सांस्कृतिक आत्मनिरीक्षण और औपचारिक नवाचार ने अश्वेत समुदाय के हित की सेवा के लिए बहुत दूर नहीं जाना पड़ेगा।

“no spells bring forth peace

And I am still fruitless and hungry

This summer

The peaches are flinty and juiceless

And cry sour worms.”²⁷⁰

कवयित्री ओड्रे लोर्ड की कविता ‘Summer Oracle’ में आर्थिक मजबूरी का सामना करती। अफ्रो-अमेरिकन स्त्री होने के कारण उसका जीवन हमेशा संघर्षमय रहा है। पिछली सदी के सत्तर के दशक में जब अफ्रो-अमेरिकन चेतना जाग रही थी। तब अफ्रो-अमेरिकन स्त्री अपनी अस्मिता के लिए सिर उठा रही थी। अपनी आर्थिक मजबूरी से जूझकर आर्थिक अस्मिता की पहचान की ओर कदम बढ़ा रही है।

²⁷⁰ The poetry of black American- Arnold adoff, p-245

4.3. निष्कर्ष

आधुनिक युग में 'अर्थ' यानी 'पैसा' समाज की रीढ़ की हड्डी बन गया है। इसी हड्डी पर आज का समाज खड़ा है। इक्कीसवीं सदी को स्त्री जागरण का युग कहा जाता है। स्त्रियों के संगठित आंदोलन हर दिशा में हुए और साथ ही अपने अधिकारों के लिए वह लड़ रही है। समाज और परिवार में स्त्री की आर्थिक सुरक्षा के लिए कानून पास करवाए गये हैं। इन सब के बावजूद भी दलित और अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों की स्थिति में कहाँ तक परिवर्तन आया है, यह कविताओं के माध्यम से देख चुके हैं। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय समस्याओं को कहीं-न-कहीं मुख्य रूप से अर्थ प्रभावित करता है। अमेरिका जैसे राष्ट्र में स्त्री की नैतिकता का नये तरीके से शोषण होता है। बाजारवाद की चपेट में अफ्रो-अमेरिकन स्त्री को एक इंसान के रूप में नहीं बल्कि एक वस्तु के रूप में समझा गया है। इस बाजारवाद की आँधी में स्त्रियों का नैतिक शोषण हो रहा है।

आज दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री ने इस व्यवस्था में भी पुरुष को सहयोग दिया है। पुरुष की तुलना में कहीं अधिक आर्थिक स्थिति को सुधारने का काम अब स्त्रियों के कंधे पर है। वह परिवार का पालन-पोषण अपनी संवेदनाओं व भावनाओं का गला घोट कर, चुनौती के रूप में जीवन भर करती है। देश की आर्थिक राजनीति का रूख आर्थिक विषमता को बढ़ाने की ओर अधिक आर्थिक समानता के प्रति कम है। अतः आर्थिक विषमता बढ़ाने वाली संस्थाएँ अधिक मजबूत होती जा रही हैं। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों के समक्ष आर्थिक रूप से कई चुनौतियाँ हैं। जो मानसिक और शारीरिक तौर पर उन्हें कमजोर बनाती हैं। इसके बाद भी उन्होंने आर्थिक रूप से स्वावलंबी होकर अपने आत्मविश्वास को बढ़ाया है। दोनों साहित्य के आर्थिक मजबूरी को अध्ययन करने के बाद एक बात साफ तौर से कहा जा सकता है कि दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों ने अपने हर शोषण का सामना करती हुई। आज समाज में अपनी एक अलग पहचान बनाने में पूरी तरह से सफल हुई है।

पंचम् अध्याय

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ : राजनीतिक संदर्भ

5.0. प्रस्तावना

समाज में स्त्री अधिकारों की, पुरुष के साथ उसकी समानता की और मनुष्य समाज के हर क्षेत्र में उसकी भागीदारी के विश्वव्यापी चेतना के स्फुरण ने दुनिया के सभी समाजों पर यह दबाव बनाया है कि, वह इस दिशा में सक्रिया हों। सदियों से समाज में स्त्री की स्थिति हमेशा दूसरे स्थान पर रही है। पुरुष प्रधान समाज में नारी को पुरुषों के सामने हमेशा नगण्य माना गया है। केवल घर और परिवार की नौकरी करना ही स्त्री का कर्तव्य है। स्त्री के प्रति ऐसी सामाजिक मानसिकता स्त्री को कभी भी आगे बढ़ने की प्रेरणा नहीं दे सकी। स्वयं स्त्री भी कभी यह नहीं समझ सकी कि सदियों से चली आ रही परंपरा से हटकर भी वे कुछ कर सकती हैं। संपूर्ण नारी समाज चाहे भारत हो या अमेरिका की यही स्थिति रही है, फिर भी उच्च वर्ग की महिलाओं की अपेक्षा दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन वर्ग की स्त्रियों की समस्याएँ अधिक हैं। “सामाजिक और आर्थिक समानता न हो तो केवल राजनीतिक समानता का कोई उपयोग नहीं है।”²⁷¹

साहित्य का संबंध तत्कालीन राजनीति से जुड़ा रहता है। जिस वर्ग की सत्ता बनी रहती है, वह वर्ग सांस्कृतिक, सामाजिक और बौद्धिक योग्यता को विरासत में पाता है। तत्कालीन कवयित्री के मन पर पड़ने वाले संस्कार और संवेदनाओं को ही अपने लेख में व्यक्त करता है। जिस प्रकार राजनीति वर्ग का वर्चस्व रहेगा उसी प्रकार साहित्य में भी उसका असर देखने को मिलता है। साहित्य में राजनीति से लेकर जीवन के सभी अंगों का समावेश

²⁷¹ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा.. खंड 3- सं. एल.जी.मेश्राम ‘विमलकीर्ति’, पृ-312

होता है। जिस प्रकार भारतीय और अमेरिकन समाज की जो सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्थिति है। उसे ही इन दोनों साहित्य में प्रकट किया गया है।

5.1. दलित स्त्री कविताओं में राजनीतिक षड्यंत्र

भारत के एक प्रजातांत्रिक देश होने के कारण राजनीतिक व्यवस्था का सूत्र भारतीय संविधान है। संविधान के अनुसार सभी को सामाजिक न्याय, आत्मोन्नति व समाजोन्नति करने के समान अवसर दिए जाते हैं। भारत के संविधान में सभी नागरिकों को समान बुनियादी अधिकार देने का प्रावधान किया गया। संविधान खण्ड 14-18 में समानता का, खण्ड 19-23 में स्वातंत्र्य का, खण्ड 23-24 में शोषण के विरोध का, खण्ड 25-28 में धार्मिक विश्वास का, खण्ड 29-30 में सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक सुविधा का अधिकार देने की बात है। सभी नागरिकों को उनकी प्रशासनिक समस्याओं के निवारण हेतु संविधान की सुरक्षा के दावे हैं।

इसके अलावा स्त्री-पुरुष के समान सामाजिक हैसियत को बरकरार रखने के लिए खण्ड 15 में पुनः बताया गया है कि धर्म, वर्ग, जाति, लिंग, जन्मस्थान इत्यादि के आधार पर किसी भी नागरिक का विवेचन नहीं हो। डॉ. अम्बेडकर का कहना है कि “लोगों में जागृति पैदा करना, उन्हें संगठित करना, यह बहुत महत्वपूर्ण काम है। उस काम को हर नेता को करना चाहिए। जिनके पास हिम्मत नहीं वे नेता नहीं हो सकते। जो मनुष्य मरने के लिए तैयार रहता है वह कभी नहीं मरता। और जो मरने से डरता है वह पहले ही मर जाता है, यह समझिए। इस देश के हिंदू लोग हमें अधिक सताएँगे। अपने रास्ते में कई रूकावटें पैदा करेंगे। लेकिन कुछ भी क्यों न हो, हम लोगों ने जो रास्ता, अपनाया है, जिसे हम इनसानियत कहते हैं, मनुष्यता कहते हैं, उसे प्राप्त करने का रास्ता हम लोगों को कभी छोड़ना नहीं चाहिए।”²⁷²

²⁷² और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा... खंड 5- सं. एल. जी. मेथ्राम 'विमलकीर्ति' पृ-152

देश स्वतंत्र हुआ परंतु दलित सामाजिक बंधनों से मुक्त नहीं हुआ। इन विचारों को व्यक्त करते हुए कवयित्री का हृदय कांप उठता है। हमारा जीवन एक फकीर की तरह है। स्वतंत्र होते हुए भी मुक्ति रहित अंधेरे कैदी के समान। सामाजिक अंधेरे में फंसे हुए दलितों का जीवन गुलामी में ही बीत रहा है। इस सामाजिक व्यवस्था तथा राजनीतिक तांडव का विरोध कवयित्रियों ने असंतोष प्रकट किया है। हमारा, तुम्हारा रक्त का रंग एक, अंग-अंग समान, हर क्षेत्र में तुमसे आगे, रखा गया हमें ही समाज में सबसे पीछे। दलितों के अधिकार की लड़ाई में महात्मा ज्योतिबा फूले और डॉ. अम्बेडकर ने मुख्य रूप से योगदान दिया। दलित कवयित्रियों ने इन्हीं की प्रेरणा से अपनी कविताओं में राजनीतिक संघर्ष को दिखाया है।

5.1.1. दलित राजनीतिक आंदोलन

भारत को स्वतंत्रता मिलने से पूर्व की राजनीतिक स्थितियाँ और स्वतंत्रता मिलने के साथ प्राप्त हुए संवैधानिक अधिकार, अवसरों की समानता और आरक्षण जैसी राहें राजनीतिक स्तर पर ही निर्धारित की गई थीं। दलितों की शैक्षिक, सामाजिक और साहित्यिक हितों, अधिकारों, अस्मिताबोध, आत्मसम्मान, महत्वाकांक्षाओं से संबंधित सवालों और दायित्वों को लेकर बढ़ती जागरूकता उन्हें सृजनात्मक ऊर्जा प्रदान कर रही है। डॉ. अम्बेडकर की प्रेरणा से राजनीतिक जागरूकता की परंपरा को आगे बढ़ाया है। “अपने समाज के हर कार्यकर्ता को राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक सवालों का अच्छी तरह से अध्ययन करना चाहिए। जिन्हें नेता बनना है, उन्हें नेताओं का कर्तव्य, उनकी जिम्मेदारी क्या है, इस बात की अच्छी जानकारी होनी चाहिए। क्योंकि अपने समाज के नेताओं पर सबसे बड़ी जिम्मेदारी है।”²⁷³ सुशीला टाकभौरे ‘अभावों की दुनिया में’ लिखती हैं-

“सदियों से अशिक्षित ये लोग

²⁷³ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा...खंड 5- सं. एल.जी.मेश्राम ‘विमलकीर्ति’ पृ-151

नहीं समझ पाते दुश्मनों की कूटनीति की चाल

बेबस रखकर उन्हें,

नकारना चाहते हैं वे

दलित आंदोलन का संघर्ष।

उनकी मेहनत का पसीना पीड़ाओं के आँसू

चेतना जागृति, आंदोलन की व्यापकता

व्यर्थ नहीं हो सकते।”²⁷⁴

कवयित्री ने कविता के आरंभ में यह बताया है कि लोग अभावों की दुनिया में किस तरह जीने के संघर्ष कर रहे हैं। दलितों के साथ जो कूटनीति सवर्णों ने अपनाई उसे तोड़ने का प्रयास डॉ. अम्बेडकर की प्रेरणा से सफल हो पाया है। दलितों में अधिकार ने डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा को अपनाया है। वे प्रगति के मार्ग पर बहुत आगे बढ़ गये हैं। स्वतंत्रता के बाद, देश की समाजव्यवस्था और शासनव्यवस्था में परिवर्तन आया है। स्वतंत्रता भारत के समतावादी संविधान में दिये अधिकारों से देश के शूद्र, अछूत, दलितों की स्थिति में भी परिवर्तन आया है। डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे लिखते हैं “वे एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था चाह रहे थे, जिसमें धर्म, राज्य, सत्ता, पूँजीवाद, पौराहित्यवाद आदि द्वारा स्त्री और पुरुष का शोषण समाप्त हो जाये। उनके समग्र राजनीतिक विचारों के केंद्र में ‘मनुष्य’ है। इस मनुष्य की स्वतंत्रता को नष्ट करने वाले आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक बंधनों के विरोध में वे अपने विचार प्रस्तुत करते हैं। उनका राजनीतिक दर्शन व्यक्ति और समाज के परस्पर संबंधों से, परस्पर अनुभव और एहसास के साथ जुड़ा हुआ है।”²⁷⁵

“आंदोलन नामांतरण का

विलास घोगरे की आत्महत्या

²⁷⁴ स्वाति बूंद और खारे मोती, हमारे हिस्से का सूरज-सुशीला टाकभौरे, पृ-148-149

²⁷⁵ (डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर – डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, पृ-91)

गोहाना, खैरलांजी और मिर्चपुर

या फिर चाहे

गैर दलित बस्ती की कुतिया

ठग जाती हमको

गणतंत्र की यह कैसी दुनिया।”²⁷⁶

हेमलता महिश्वर ‘नील, नीले रंग के-2’ कविता में कहती है कि, सामाजिक कटु यथार्थ की भीषणता का दाहक चित्र निर्मित करती है। आज भी इतने वर्षों के बाद भी गोहाना, खैरलांजी, मिर्चपुर में दलितों के अमानुषिक हत्याकांड होते हैं। मराठवाड़ा विश्वविद्यालय को डॉ. अम्बेडकर का नाम देने के लिए पंद्रह वर्षों का आंदोलन करना पड़ता है और पाँच जानों की बलि देना पड़ता है। “डॉ. अम्बेडकर ने दलितों में चेतना जगाकर उन्हें मुक्ति संघर्ष से जोड़ा। वर्ण-व्यवस्था ने जो उन पर गुलामी के बंधन कसे थे, उन्हें तोड़ने में डॉ. अम्बेडकर का आंदोलन जहाँ एक ओर सामाजिक और वैचारिक आंदोलन था, वहीं वह राजनीतिक आंदोलन भी था। दलित साहित्य उसी संघर्षशील चेतना की अभिव्यक्ति है। दलित सदियों की दासता और शोषण, दमन, उत्पीड़न के कारण हीन भावना से ग्रसित थे। इसी हीन भावना को तोड़कर एक मनुष्य के रूप में उसकी पहचान और स्वाभिमान को स्थापित करना दलित साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है।”²⁷⁷

सन् 1920 में ‘मूकनायक’ पत्रिका के अंक-3 में डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट लिखा था कि स्वराज्य हो तो ऐसा जिसमें हमारा भी थोड़ा-बहुत राज्य हो। उन्हें संदेह था कि हिंदू आजादी मिलने के बाद अछूतों को कुछ भी नहीं देंगे। उनकी चिंता थी कि, स्वराज्य मिलने पर उससे प्राप्त होने वाली स्वयं सत्ता सभी जातियों में कैसे विभाजित की जायेगी। जिसके चलते स्वराज्य ब्राह्मण राज्य न हो जाये। उन्हें आशा थी कि हिंदुस्तान का भावी राज्य एक सतात्मक

²⁷⁶ नील, नीले रंग के- हेमलता महिश्वर, पृ-42

²⁷⁷ दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र-ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ-65

या प्रज्ञा सत्तात्मक न होकर प्रज्ञा प्रतिनिधि सत्तात्मक राज्य होने जा रहा है। कवयित्री रजनी तिलक 'वजूद है' में लिखती है कि,

“तब भी मुर्दों से अछूतों में
स्वाभिमान की चिंगारी
फूटती थी
चिथड़ों से लिपटे कंकालों ने
तुम्हारे-हमारे लिए दो गज जमीन
स्वाभिमान और आज़ादी
की जंग जीती थी।”²⁷⁸

कवयित्री रजनी तिलक लेखन और आंदोलन से समाज को जागृति का संदेश देने का कार्य सतत् रूप से कर रही हैं। दलित आंदोलन और स्त्री-मुक्ति आंदोलन में उपेक्षित दलित स्त्री की अभिव्यक्ति को दस्तक देती प्रतीत होती हैं। “18 जुलाई 1942 को नागपुर में पिछड़े दलित समाज की महिलाओं को डॉ. अम्बेडकर ने अपने भाषण में कहा था कि, किसी भी वर्ग की उन्नति का अनुसार उस वर्ग की महिलाओं की उन्नति को देखकर ही हो सकता है। शिक्षा, स्वच्छता, महत्वाकांक्षा, आत्मविश्वास, परिवार सीमित रखना और पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना तथा बराबरी का अधिकार मांगना नारी के विशेष कर्तव्य है।”²⁷⁹

आंदोलन से जुड़ी महिलाओं के समक्ष यह प्रश्न है कि प्रथम तो बेरोजगार महिलाओं को कैसे स्वावलंबी बनाएं- आर्थिक दृष्टि से उन्हें कैसे सबल बनाएँ। दूसरे नौकरी पेशा महिलाओं की निर्बल मानसिकता को कैसे सबल बनाया जाए कि वे अपनी धनराशि का उपयोग अपनी दृष्टि से उचित रूप में कर सकें। जब तक उनकी मानसिकता कमजोर रहेगी, तब

²⁷⁸ हवा सी बेचैन युवतियाँ-रजनी तिलक, पृ-39-40

²⁷⁹ दलित नारी : एक विमर्श-सं मंजू सुमन, पृ-66

तक वे पुरुषों के अधीन ही रहेगी और उनके आदेशों का पालन चुपचाप करती रहेंगी। वे अपने प्रति अन्याय को भी समझ नहीं सकेंगी और न ही कभी उनके प्रतिकार के विषय में सोच सकेंगी।

कवयित्री हेमलता महिश्वर 'सावधान' में लिखती हैं-

“मैंने तोड़ दी थी
चवदार तालाब का पानी छूकर
अपना पानी
बनाने निकली थी
जाना था अर्थ
स्वतंत्रता का जब
हजारों लोगों की मूक व्यथा
का गवाह बना
खड़ रहा कालाराम मंदिर।”²⁸⁰

कवयित्री ने इस कविता में डॉ.अम्बेडकर द्वारा किये गये आंदोलन का उल्लेख करती है। डॉ.अम्बेडकर ने कालाराम मंदिर प्रवेश का आंदोलन इसलिए किया था कि वे हिंदू होने के वैसे धार्मिक अधिकारों का उपयोग करना चाहते थे, जो स्पृश्य हिंदू करते थे। इन कविताओं को समझने से पहले मंदिर-प्रवेश की ऐतिहासिक राजनीतिक पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक है। 'पूना-पैक्ट' के बाद राजनीतिक निर्णयों के तहत जब अछूतों ने मंदिर प्रवेश के लिए सत्याग्रह आंदोलन किए, तब जाकर कुछ मंदिर खोले गए। गांधी के नेतृत्व में चल मंदिर-प्रवेश में डॉ.अम्बेडकर ने भाग नहीं लिया था, उन्होंने कहा था कि, अछूतों के लिए मंदिर-प्रवेश आंदोलन चलाया जाए। “मंदिरों के दरवाजे अछूतों के लिए खोलना, या न खोलना यह

²⁸⁰ नील, नीले रंग के-हेमलता महिश्वर, पृ-64

तुम्हारे विचार करने की बात है, मेरे आंदोलन करने की नहीं। यदि तुम समझ सकते हो कि किसी मानव-जाति की पवित्रता को अपमानित करना बुरी बात है तो अपने मंदिरों के दरवाजें खोलकर सभ्य भले आदमी बन जाओ, और यदि सभ्य भले आदमी बनने की अपेक्षा तुम 'हिंदू' बने रहना ज्यादा पसंद करते हो, तो अपने मंदिरों के दरवाजे बंद रखो। हमें तुम्हारे मंदिरों में जाने की आवश्यकता नहीं है।”²⁸¹

5.1.2. खोखला लोकतंत्र

आज हमारे देश का लोकतंत्र भी खोखला हो गया है। भारतीय संविधान ने महिला व पुरुष दोनों को समकक्ष रखकर, उनके विकास के लिए समान अवसरों की गारंटी दी। अनेक प्रावधानों द्वारा स्त्री को सुरक्षा तथा संरक्षण प्रदान करने की व्याख्या की गई। पर इन सबके बावजूद स्त्रियों की स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन नहीं आया, क्योंकि सामाजिक रवैये में बुनियादी बदलाव नहीं हुए। “लोकतंत्र हमेशा बदलनेवाली चीज है। ऑथेनियन लोकतंत्र आज के लोकतंत्र से अलग था। उसमें 50 प्रतिशत गुलाम और 50 प्रतिशत आजाद लगे थे। 1832 के बाद इंग्लैंड का लोकतंत्र भी बदला गया। इंग्लैंड के लोकतंत्र में राजा को अपने अधिकारों का इस्तेमाल कम करना पड़ता था। जनकल्याण करना ही आज के लोकतंत्र का उद्देश्य है।”²⁸²

समाज स्त्री के प्रति अपने दायित्व के निर्वहन में कभी भी सफल नहीं हुआ। फिर भी जब एक स्त्री अपनी लेखनी में केवल स्वयं के बारे में नहीं लिखती हैं। अपने सोच को विस्तार देते हुए संपूर्ण दलित समाज के प्रति हो रहे न्याय के लिए अपना कलम चलाती है। रजनी तिलक देश के खोखले लोकतंत्र पर अपनी बात रखती है-

“हमारे नेता डॉ. अम्बेडकर

²⁸¹ डॉ. अम्बेडकर के 15 व्याख्यान, अन, पं. चंद्रिका प्रसाद; जिज्ञासु, बहुजन कल्याण प्रकाशन, सआदत गंज, लखनऊ सं. 1990, पृ. 35-36

²⁸² और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा... खंड 5- सं. एल. जी. मेथ्राम 'विमलकीर्ति' पृ-225

जिसने सड़क पर लड़कर
हमें पानी पीने का अधिकार दिलाया
भारत में लोकतंत्र हेतु संविधान बनाया
संविधान ने हमें बराबरी दिलायी
परंतु समाज ने हमें अछूत ही रखा
अपनी शिक्षा, नौकरी भागीदारी हेतु।”²⁸³

‘अनकही कहानियाँ’ कविता में कवयित्री डॉ.अम्बेडकर के द्वारा दलित समाज के लिए किये गए काम को याद करती है। किस तरह डॉ.अम्बेडकर ने हर वह प्रयास किया परंतु समाज में उनकी पहचान ‘अछूत’ को मिटा नहीं पाए। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि “भारतीय लोकतंत्र का समूचा ढाँचा जातिवाद की गिरफ्त में है जिसे बनाए रखने में राजनीतिक दल तत्पर दिखाई पड़ते हैं, इनमें सिर्फ सामंती और ब्रह्मणवादी विचारधारा के ही राजनीतिक दल नहीं हैं, बल्कि वे दल भी हैं, जो तथाकथित वामपंथी और छद्म अम्बेडकरवादी हैं।”²⁸⁴

डॉ.अम्बेडकर के लेखन, भाषण और चेतना प्रसारण से दलित समाज में जन-जागृति आई है, लेकिन फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि, संपूर्ण दलित समाज जागृत हो गया है, चैतन्य हो गया है। स्थिति यह है कि अभी और अधिक चेतना प्रसार की जरूरत है। विशेषकर स्त्रियों के संदर्भ में यह आवश्यक है कि दलित समाज मनुवादी मानसिकता छोड़े। वे दलित महिलाओं को समानता का दर्जा दें, समान स्वतंत्रता दें और बराबर का साथी मानकर जीवन के हर क्षेत्र में साथ-साथ आगे बढ़ें। ‘हमारे हिस्से का सूरज’ कविता में कवयित्री सुशीला टाकभौर लिखती हैं-

²⁸³ हवा सी बेचैन युवतियाँ-रजनी तिलक, पृ-57

²⁸⁴ दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र-ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ-65

“कैसी स्वतंत्रता, कैसा लोकतंत्र?
जानते नहीं संविधान में मिले अधिकार
आज भी निश्चित, तुच्छ
पुश्तैनी रोजगार में लगे
अपमान और अभाव का जीवन जी रहे हैं
ये लोग!”²⁸⁵

भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुए 70 वर्ष हो चुका है परंतु क्या सही मायने में हम आज़ाद हो पाए हैं? देश की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक या राजनीति व्यवस्था पर नज़र डालने से ऐसा प्रतीत होता है कि हम अंदर से कितने खोखले हैं। दुनिया की बाकी देशों की तुलना में हम आज भी पिछड़ों में गिने जाते हैं। इसका सही कारण हमारे देश की राजनैतिक व्यवस्था जो अधिकार तो दिलाती है, परंतु उसी अधिकार को मानने से इंकार भी करती है। “नव-उदारवादी पूँजीवाद ने भूमंडलीकरण के जरिए लोकतंत्र के जिस नये रूप की रचना की है, उसके तहत दलितों जैसे हाशिए पर पड़े तबके लिए खतरा पैदा हो गया है। अब न केवल जाति-विरोधी जर्मनी संघर्षों को उत्तरोत्तर मजबूत किये जाने की जरूरत है, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय मोर्चाबंदी भी आवश्यक है।”²⁸⁶

डॉ.अम्बेडकर दलित समाज व नारी समाज को शोषण से बचा कर उन्हें सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अधिकार दिलाना चाहते थे। अपने जीवन काल में गहन-अध्ययन, चिंतन-मनन करके निष्कर्ष रूप में उन्होंने इस बात को समझ लिया था कि शिक्षा, संघर्ष और संगठन द्वारा ही दलित स्त्री और संपूर्ण दलित समाज अपना जीवन सम्मानपूर्वक जी सकेगा। वर्ण और जातियों पर आधारित हिंदू समाज व्यवस्था में शूद्रों को दलित और पद-दलित माना गया था। उनके साथ ऊँच-नीच भेदभाव पर आधारित छुआछूत का व्यवहार किया जाता था।

²⁸⁵ स्वाति बूंद और खारे मोती; हमारे हिस्से का सूरज-सुशीला टाकभौर, पृ-118

²⁸⁶ दलित राजनीति की समस्याएँ, सं-राजकिशोर, पृ-66

लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में महिला अधिकारिता राजनीतिक प्रक्रिया के विकास में एक अनिवार्य कदम है। इसका उद्देश्य महिलाओं को राजनीति की मुख्यधारा में लाना और उन्हें किसी भी प्रकार के प्रतिबंध व अलगाव से मुक्ति दिलाना है। महिलाओं को राजनीतिक अधिकार प्रदान किये जाने की परिकल्पना उनके उत्थान के लिए और लैंगिक असमानता तथा भेदभाव उन्मुलन में भारत का संविधान महिलाओं को समान राजनीतिक अधिकारों की गारंटी प्रदान करता है। डॉ.अम्बेडकर का कहना है कि “लोकतंत्र के लिए सामाजिक नैतिकता की भी जरूरत होती है। सामाजिक जीवन में कानून का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए, ऐसा लोगों को भी लगता है। अपने यहाँ सामाजिक नैतिकता पूरी तरह से खत्म हो चुकी है।”²⁸⁷

भारत के संविधान में इन उपबंधों के बावजूद हमारी राजनीति व्यवस्था में स्त्रियों की भागीदारी संतोषजनक नहीं है। एक तरफ संविधान में वर्णित उद्देश्यों, कानूनों, नीति-निर्माण और योजनाओं तथा दूसरी ओर हमारे देश में महिलाओं की यथार्थ स्थिति के बीच अब भी व्यापक अंतर विद्यमान है। हमारे सामाजिक ढाँचे, रीति-रिवाजों, परम्पराओं, महिलाओं में अत्यधिक निरक्षरता, उनमें अपने अधिकारों के संबंध में जानकारी का अभाव महिलाओं की राजनीति कम भागीदारी का कारण है।²⁸⁸ कवयित्री हेमलता महिश्वर ‘परिवर्तन’ कविता में लिखती हैं-

“लोकतंत्र में
अमर्त्य सेन के
आर्गुमेंटेरियन इंडियन
धमकाते नहीं हमारे हर तर्क
सुनने के पहले नकारने को अब

²⁸⁷ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा...खंड 5- सं. एल.जी.मेश्राम ‘विमलकीर्ति’ पृ-227

²⁸⁸ इक्कसवीं सदी की ओर-सं. सुमन कृष्णकांत, पृ-57

एक जुमला उछाल देते हैं

आप नहीं जानती हैं।”²⁸⁹

21वीं सदी की स्त्रियाँ आज हवाई जहाज, मुक्केबाजी और यहाँ तक की अंतरिक्ष तक पहुँच चुकी हैं। फिर भी क्यों उसे यह कहा जाता है कि तुम्हें कुछ भी नहीं आता। पुरुषों की मानसिकता स्त्रियों को स्वयं से आगे देख ही नहीं सकती है। लोकतंत्र के इस देश में जहाँ सब को समान अधिकार दिलाने की बात करती है, वहीं दूसरी ओर पुरुषों के लिए स्त्री केवल एक स्त्री ही रहेगी जो घर के कामकाज करती है। “स्वतंत्र देश के संविधान में स्त्रियों को संरक्षण के रूप में दिये गये अधिकारों ने पुरुष तानाशाही को तोड़ा है, पुरुष वर्चस्व को झकझोरा है उनके एकाधिकार को नकारा है। इससे क्षुब्ध होकर पुरुष निरंकुश रूप में नये-नये तरीके अपनाकर, नये-नये आरोप लगाकर स्त्रियों के अधिकारों का हनन करते हैं। इसके लिए वे बार-बार मुखौटे लगाते हैं, बार-बार अपना चेहरा बदलते हैं, स्त्रियों पर आरोप लगाकर उन्हें उनके मूलभूत अधिकारों से वंचित रखने की साजिश रचते हैं।”²⁹⁰ रजनी तिलक ‘मेरे भाई’ में पुरुषवादी मानसिकता के खिलाफ स्त्री अधिकार के बारे में बोलती है-

“हमने झेली

तुम्हारी वेदनाएँ, निराशाएँ

महत्वाकांक्षा और तिलमिलाहट

फिर यों हमसे

यूँ सामंती व्यवहार क्यों?

तुम्हें लोकतंत्र की दरकार

हमें नहीं?”²⁹¹

²⁸⁹ नील, नीले रंग के-हेमलता महिश्वर, पृ-70

²⁹⁰ स्त्री नैतिकता का तालिबानीकरण – सं. रमणिका गुप्ता, विमल थोरात, पृ-45

²⁹¹ हवा सी बेचैन युवतियाँ-रजनी तिलक, पृ-32

कवयित्री अपने कौमी भाईयों से पूछ रही हैं कि जो अधिकार, आरक्षण, नियम-कानून पुरुषों के लिए है, वह स्त्रियों के लिए क्यों नहीं है? जब हम अपनी जाति, वर्ग के लिए संघर्ष एक साथ कर रहे हैं तो क्यों उस आज़ादी का हक केवल पुरुषों को मिले। दलित स्त्री की बात तो समझ में आती है कि उसे अलग से आरक्षण मिलना चाहिए। क्योंकि संविधान में दलितों को संसदीय प्रणाली में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। उन्हें केवल नौकरी में आरक्षण प्राप्त है। ऐसे ये सभी मामले मिल-बैठकर तय किए जा सकते हैं।

5.1.3. भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था

यह एक ऐसा शब्द है जो दिन-प्रति-दिन हमारे समाज, राज्य और देश को खोखला बना रहा है। परंतु इसका एहसास न उच्च अधिकारियों को है और न ही नेताओं को। भ्रष्ट समाज की नींव भी इन्हीं लोगों ने रखी है। आज छोटे-से-छोटे काम के लिए भी रिश्वत ली जाती है। इससे किसी एक इंसान की तरक्की होती है साथ ही समाज उस अंधेरे की ओर बढ़ रहा है जिससे निकलना आसान नहीं। डॉ.अम्बेडकर का कहना है कि, “हम लोगों को अन्याय के खिलाफ लड़ने के लिए ताकत की जरूरत है। इसलिए हम लोगों को स्वाभिमान और आत्मनिर्भर होना चाहिए।”²⁹²

डॉ.अम्बेडकर ने दलितों के हित की रक्षा के लिए एक अलग मतदान प्रणाली की मांग की, क्योंकि उन्हें आशंका थी कि अंग्रेजों के जाने के बाद वे सवर्णों के जुल्म के शिकार होंगे। फलतः पूना पैक्ट हुआ। उसी के बदले दलितों के लिए आरक्षण व्यवस्था लागू की गई थी। डॉ.अम्बेडकर देश के हित में इस बात को मान भी गए थे। भले ही उनसे वायदा करने वाले नेता ईमानदार नहीं रहे और देश में दलितों पर जुल्म होते रहे। भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था

²⁹² और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा... खंड 4 - सं. एल.जी.मेश्राम 'विमलकीर्ति' पृ-83

के चलते दलितों को अधिकार मिलने के बाद भी उस पर अमल नहीं किया जा रहा है। रजनी तिलक अपनी कविता 'फिर से आज़ाद' में लिखती हैं-

“तुम्हारी ये उपेक्षित बच्चे
उनके मंशाओं को
चाक कर देंगे
अत्याचारियों को सलीब पर लटका देंगे
भ्रष्टाचार की दीवारों को
रक्त-रंजित कर ढा देंगे।”²⁹³

दलित स्त्री अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है, लेकिन फिर भी पुरुष सत्ता के सामने वह नगण्य बना दी जाती है। सामान्यतः समाज में औरतों की स्थिति इसी तरह की होती है। देश की आज़ादी पर प्रश्न उठाती, यह कविता संदेश देती है कि यह देश अभी भी कई समस्याओं से ग्रस्त है। इसे पूरी तरह आज़ाद करने का काम अब दलित बहुजन ही करेंगे। कंवल भारती लिखते हैं “रजनी की ये कविताएँ एक संघर्षशील नारी की कविताएँ हैं। उस नारी की, जो तमाम कठिन परिस्थितियों और समय की प्रतिकूलताओं में भी गतिशील हैं। कुछ करने की अदम्य क्षमता से भरी हुई और अपने में विप्लव की आग लिए अदम्य क्षमता से भरी हुई और अपने में विप्लव की आग लिए हुए हैं।”²⁹⁴

समाज अक्सर इस कूटनीति का प्रयोग करता है। जब किसी बात की ओर से समाज का ध्यान हटाना हो तो उस बात के समकक्ष कोई दूसरी बात का प्रचार शुरू कर दिया जाता है। तब लोगों का ध्यान प्रमुख बात से हटकर दूसरी बातों की ओर लग जाता है और पहली बात को लोगों के ध्यान से हटाने के लिए धीरे-धीरे नगण्य रूप में प्रस्तुत करते हुए खत्म कर दिया

²⁹³ पदचाप – रजनी तिलक, पृ-17-18

²⁹⁴ दलित महिला लेखक-2015(खंड-2)सं-रजनी तिलक, पृ-67

जाता है। यही काम सवर्ण समाज भ्रष्टाचार की नीति अपना रहा है। कवयित्री पुष्पा विवेक ‘फुटपाथ’ कविता में फुटपाथ में रहने वाले दलितों के जीवन से जुड़ी बातों को लिखती हैं कि,

“दिन बीतता भीख माँगते
रातें भ्रष्टाचार के धंधे में
कोई तस्करी की करता डील
कोई बेचे अपना शरीर
धंधे सफेदपोशों के
करते जीवन में कुर्बाना”²⁹⁵

कवयित्री यहाँ जिस भ्रष्टाचार की बात कर रही हैं, वह हालात से उत्पन्न है। फुटपाथ के जीवन में लोगों के दो वक्त की रोटी नसीब न होने के कारण वह मजबूर हो जाते हैं। चंद पैसों के लिए कुछ भी करने को। भ्रष्टाचार के वह धंधे हो जो उच्च पदों पर हमारे देश में आश्रित हैं। सफेदपोशों के नाम पर काले धंधे दलितों के हाथ से करवाते हैं। भ्रष्टाचार की बढ़ती आबादी में अब कोई भी इससे अछूता बच नहीं सका।

श्यामबाबू शर्मा लिखते हैं “राजनैतिक सत्ता की आधिकारिक लड़ाई प्रभु-वर्गों की राजनैतिक पार्टियों की ही लड़ाई है। उनकी लड़ाई छद्म रूप में राजनैतिक वर्चस्व के साथ-साथ सामाजिक प्रतिष्ठा, धन-धान्य सब कुछ अपने ही पास रखने की है। तीसरी शक्ति को जिस प्रकार से प्राचीन काल से सेवक के रूप में माना जाता रहा, आज भी उसी प्रकार ‘दो फाड़ करो-सेटिंग करो और राज भोगो, के चिंतनों के आधार पर अलग-अलग रख उनकी शक्ति को निस्तेज बनाये रखने की पुरजोर कोशिश करते हैं।”²⁹⁶ अनिता भारती ‘शायद’ कविता में लिखती हैं,

²⁹⁵ दलित महिला लेखन-2015, खंड-2, सं. रजनी तिलक, पृ-249

²⁹⁶ दलित हिंदी कविता का वैचारिक पक्ष-श्यामबाबु शर्मा, पृ-77

“शायद
दलित आदिवासी
अपनी हत्या या
अपनी सामूहिक हत्याएँ
खुद कर लेते हैं
तभी उनके सामूहिक
जनसंहारों में
अपराधी, गवाह, जज
मीडिया, सरकार
सब निर्दोष होते हैं।”²⁹⁷

कविता की आरंभ की पंक्तियों में मनुवाद को भ्रष्ट बताते हुए यह समझाया गया है कि किस प्रकार एक अपराधी जो दलित स्त्री या पुरुष के साथ अपराध कर आसानी से रिहा हो जाता है। सारे सबूत दलितों के खिलाफ हो जाते हैं। सरकार, मीडिया, कानून सब के सब मनुवादी हैं, जिन्हें केवल दलित ही अपराधी नज़र आते हैं। दलितों के खिलाफ दूसरे दलित की हत्या का आरोप लगा दिया जाता है। भ्रष्टाचार की राजनीतिक को समझने के लिए दलितों को संघर्ष करना पड़ेगा। नहीं तो, इस भ्रष्ट समाज में दलितों को शिकार बनकर सदैव उसका शिकार किया जाएगा।

5.1.4. स्त्री मुक्ति आंदोलन

शोषित, पीड़ित, दलित स्त्रियों में जागृति लाने के लिए उनमें शिक्षा के अधिकार का प्रचार-प्रसार होना आवश्यक है। शिक्षा के माध्यम से वह अपने स्वतंत्रता के अधिकार और कानून के सुरक्षा कवच को समझ सकेंगी। साथ ही अत्याचारियों का डटकर मुकाबला भी कर

²⁹⁷ खूबसाना का घर-अनिता भारती, पृ-51

सकेंगी। उन्हें उनकी सीमा और कर्तव्य बता सकेंगी। इस तरह वह शोषण का शिकार होने से मुक्त हो पायेंगी। स्त्री की परम्परागत दयनीय और सोचनीय दशा के लिए जिम्मेदार मनुवादी विचारधारा और पुरानी समाज व्यवस्था को नकार कर मानवीय मूल्यों पर आधारित परिवर्तनवादी विचारधारा और प्रगतिशील समाज व्यवस्था को मान्यता दे सकेंगी। डॉ.अम्बेडकर का कहना है “दलित जनता पर होनेवाली जुल्म-ज्यादतियाँ यदि यथाशीघ्र रूकी नहीं तो दलित जनता समय आने पर देश की भलाई-बुराई की परवाह किए बगैर अपने ऊपर होने वाली जुल्म-ज्यादतियों का मुकाबला करने के लिए अपना कदम आगे बढ़ाएगी। दिन-ब-दिन दलित जनता के अधिकारों पर जबरदस्ती हो रही है और उन पर होनेवाली जुल्म-ज्यादतियों में बढ़ोतरी हो रही है। यदि इस तरह की स्थिति रहते ही नहीं रूकी तो हमें अपनी मुक्ति का स्वतंत्र रास्ता खोजना पड़ेगा।”²⁹⁸ पूनम तुषामड़ अपनी कविता ‘मैं चाहती हूँ’ में लिखती हैं कि,

“मैं गाना चाहती हूँ

उन्मुक्त स्वर में

स्त्री स्वतंत्रता का सुरीला गीत

और लहराना चाहती हूँ

नीला परचम दुनिया की

सबसे ऊँची चोटी पर।”²⁹⁹

कवयित्री अपनी इच्छाओं को अब बाँध कर रखना नहीं चाहती है। स्त्री मुक्ति का गीत सबको सुनाकर, अपनी स्वतंत्रता की खुशी जाहिर करती है। सदियों का शोषण जो परिवार और समाज से मिलता रहा, उसे तोड़कर उन्मुक्त हो चुकी है। दलित रचनाकार मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं “दलित महिलाओं का संघर्ष दुहरा है, क्योंकि उनका दुहरा शोषण हो

²⁹⁸ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा... खंड 5- सं. एल.जी.मेश्राम ‘विमलकीर्ति’ पृ-131

²⁹⁹ दलित महिला लेखक-2015 खंड-2, सं-रजनी तिलक, पृ-232

रहा है। उन्हें एक गाल पर ब्राह्मणवाद का तो दूसरे गाल पर पितृसत्ता का थप्पड़ खाना पड़ता है।”³⁰⁰

अब स्त्रियाँ मुक्ति आंदोलनों से जुड़कर घर की जिम्मेदारियों को निभाते हुए समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाती हैं। ऐसी स्त्रियों को समाज में उपेक्षा और क्रोध का शिकार होना पड़ता है। ऐसी स्त्रियों के प्रति समाज का कर्तव्य है कि वह उन बुद्धिमान, बहादुर और कर्तव्यनिष्ठ महिलाओं का सम्मान करे। उनके निर्देशों का पालन करे और अपने घर की स्त्रियों की उन्नति में सहयोग देकर अपना योगदान दे। इस तरह समाज को महिलाओं के स्वतंत्रता और समता के अधिकार को मान्य करके उनकी संस्था और संगठन को सफलता के लिए सहयोग देना चाहिए। कवयित्री कुसुम मेघवाल ‘घर और मकान’ कविता में लिखती हैं-

“पूछने लगती है वह प्रश्न
अपने संवैधानिक अधिकार के,
समानता के, स्वतंत्रता के
और जीना चाहती है वह
एक इंसान बनकर
मान से, सम्मान से”³⁰¹

कवयित्री का मानना है कि स्त्री का जीवन केवल घर, गृहस्थी, बच्चे संभालना, भोजन पकाना तक ही सीमित नहीं समझना चाहिए। उन्हें भी पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं। पुरुषों के समान वे भी जीवन के हर क्षेत्र में अपना दखल रखने की अधिकारी हैं। महिलाओं को भी शैक्षणिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्रों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेने का अधिकार है। इसके लिए स्त्रियों को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ उनका साथ भी देना चाहिए। “डॉ. अम्बेडकर ने

³⁰⁰ दलित राजनीति की समस्याएँ, सं. राजकिशोर, पृ-68

³⁰¹ दलित महिला लेखन-2015, खंड-2, सं. रजनी तिलक, पृ-205

दलित मुक्ति आंदोलन में जाति निर्मूलन को केंद्र में रखा था। उन्होंने सदियों से छीन लिए गए मूलभूत अधिकार और सम्मान से जीने के हक के लिए जीवन भर संघर्ष किया। वर्ण श्रेष्ठता की नृशंसता इंसान के हक और गरिमा को पैरों तले कुचलने में ही गौरवान्वित होती रही है। जाति की शोषण मूलक संस्थाओं को नष्ट किए बिना इस हिंदू समाज व्यवस्था को बदलना असंभव है। इस हिंदू समाजव्यवस्था की नज़र में दलित मुक्ति आंदोलन की कोई अहमियत नहीं है।”³⁰² अनिता भारती ‘नीले सूरज की आग’ कविता में लिखती हैं-

“तुम्हें अपनी आजादी की
अलख जगानी है ऐसे
जैसे जगाई थी
उदादेवी पासी, झलकारी बाई
महावीरी देवी और कालीबाई ने
हाथ में हथियार ले
देश के दुश्मनों के खिलाफ
देश की आजादी की मिशाल
जगाने के लिए।”³⁰³

कवयित्री यहाँ दलित स्त्रियों को मुक्ति के आंदोलन में भाग लेने के लिए प्रेरणा दे रही है। इतिहास के पन्नों में कई दलित स्त्रियों ने भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई में मुख्य भूमिका निभाई है। जिस प्रकार उदादेवी, झलकारी बाई, महावीरी देवी, कालीबाई आदि ने देश की आजादी के लिए अपने प्राण दे दिए, उसी प्रकार आज ब्राह्मणवाद और पुरुष मानसिकता के लोगों से अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करना पड़ेगा। सुशीला टाकभौरै लिखती हैं कि, “हम सभी दलित एक हैं। हमारे दुःख-दर्द, भोगे हुए संताप एक हैं। हम सभी को मिलकर, दलित

³⁰² स्त्री नैतिकता का तालिबानीकरण-सं. रमणिका गुप्ता, विमल थोरात, पृ-26

³⁰³ रूखसाना का घर-अनिता भारती, पृ-66-67

आंदोलन से जुड़ना है और पुरानी मान्यताओं को तोड़कर, नयी परंपराओं को शुरू करना है। दलित आंदोलनों से जुड़ी महिलाओं के प्रश्नों, समस्याओं को समझकर उन्हें सुलझाना है। सावित्रीबाई फुले के सपने साकार करना है, बाबा साहब के दलित भारत को सर्वश्रेष्ठ बनाना है, अपनी जिम्मेदारी को समझकर दलित आंदोलन के उद्देश्य को पाना है।”³⁰⁴

राजनीति के क्षेत्र में दलित महिलाओं की भागीदारी बहुत कम है। अतः सरल स्थिति, सुविधाओं और विशेष आरक्षण की नीति द्वारा स्त्रियों को राजनीति के क्षेत्र में लाया जाए। राजनीति से सत्ता और प्रशासन जुड़े हैं। इन क्षेत्रों से दलित स्त्री को दूर रखना, समझदारी की बात नहीं है। राजनीति की नकारात्मक स्थिति को बदल कर दलित महिलाओं को अधिक से अधिक संख्या में सत्ता और प्रशासन के क्षेत्र में आगे लाना चाहिए।

“अपनी ही उन बहनों के सामने
जो दावा करती हैं उनकी मुक्ति का
स्त्री मुक्ति आंदोलन अधिवेशन में”³⁰⁵

कवयित्री रजनी तिलक अपनी कविता ‘कौन नाच रहा’ में कहती है कि, आर्थिक स्थिति के चलते स्त्री जब अपना और अपने बच्चे का पेट पालने के लिए बार में नाचती थी। वह अपनी आजादी की तलाश में स्त्री मुक्ति आंदोलन से जुड़ी महिलाओं से प्रार्थना करती है। आगे कवयित्री कविता की पंक्ति में लिखती हैं-

“वे कुछ मुक्ति चाहती थी
नारी मुक्ति के महासमुद्र में
अपनी मुक्ति ढूँढ़ने आयी थी।”³⁰⁶

³⁰⁴ स्त्री-लेखन- के. वनजा, पृ. 129-130

³⁰⁵ हवा सी बेचैन युवतियाँ-रजनी तिलक, पृ-29

³⁰⁶ हवा सी बेचैन युवतियाँ – रजनी तिलक, पृ-29

जाति, वर्ग, लिंग? इन तीनों का सवाल उठाती कविता अपनी मुक्ति चाहती है। स्त्रियों को तिहरे शोषण के कारण, वह आज तक पुरुषों से दबाई जा रही है। कहीं जाति, कहीं वर्ग और कहीं लिंग का मुद्दा उठाकर पुरुषवादी मानसिकता का शिकार हो रही है। सुशीला टाकभौर कहती है कि, “समाज की विषमतावादी व्यवस्था के शिकार दलित पुरुष स्वयं भी मनुवादी मानसिकता से ग्रसित होकर अपनी स्त्रियों पर अधिक अत्याचार करते रहे, जिससे दलित महिलाएँ कभी भी आगे आने के बारे में नहीं सोच पाई। घर-परिवार की जिम्मेदारी निभाते हुए अपने पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर कठोर परिश्रम करने वाली दलित महिला, समाज में कभी पुरुषों के समान अधिकार नहीं पा सकी।”³⁰⁷ कवयित्री रजत रानी ‘मीनू’ अपनी कविता ‘वे स्त्रियाँ’ में लिखती हैं-

“वे स्त्रियाँ भाती हैं

जो चिंतन करती हैं

अपने समाज के उत्थान के लिए

अपनी कमजोर कौम के कल्याण के लिए

अपने राष्ट्र की उन्नति के लिए।”³⁰⁸

कवयित्री का मानना है कि स्त्री का जीवन केवल घर, गृहस्थी, बच्चे संभलना, भोजन पकाना तक ही सीमित नहीं समझना चाहिए। उन्हें भी पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं। पुरुषों के समान वे भी जीवन के हर क्षेत्र में अपना दखल रखने की अधिकारी हैं। महिलाओं को भी शैक्षणिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्रों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेने का अधिकार है। इसके लिए उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए, साथ ही सहयोग भी देना चाहिए। “पाश्चात्य नारीवादी आंदोलन एवं साहित्य ने भारतीय नारी को प्रभावित किया है। और एक नई चेतना के तहत आग्रह किया जाने लगा की समानता और स्वतंत्रता जैसी बातों को स्त्री की नज़र से देखा

³⁰⁷ दलित साहित्य- सं. जयप्रकाश कर्दम, पृ.99

³⁰⁸ पिता भी तो होते हैं माँ- रजत रानी ‘मीनू’, पृ-105

परखा तथा समझा जाए। 1978 में मुंबई में महिलाओं के लिए एक कार्यशाला का आयोजन किया गया था। जिसमें यह निर्णय लिया गया था कि महिलाओं की समस्याओं पर केंद्रित एक न्यूस लेटर छापा जाए।”³⁰⁹

5.1.5. साम्प्रदायिक दंगे

भारत को हमारे संविधान में धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। अक्सर कहा जाता है कि भारत में धर्म-निरपेक्षवाद का भविष्य अंधकारमय है। भारत में धर्मनिरपेक्ष समाज के निर्माण में धर्म सबसे बड़ी बाधा है, उसमें कोई दम नहीं। यह कहना अधिक सही होगा कि, सबसे बड़ी बाधा आज़ादी के बाद प्रचलित होती जा रही, भ्रष्ट राजनीति है। देश के अनेक सम्प्रदायों और जातियों की समस्या को इनके स्वाभाविक अस्तित्व बोध और एक-दूसरे की आपस की वैमनस्यता की समस्या बनती हैं। दलित कवियत्रियों ने भारत में इस राजनीति दंगों के विषय में भी लिखती हैं। अनिता भारती ‘वजूद रौंदने के लिए’ कविता में भारतीय मुस्लिम लोगों के साथ अन्याय को व्यक्त करती हैं-

“दंगे होते नहीं, कराये जाते हैं

हम जैसों का वजूद

रौंदने के लिए

जो रात-दिन

पेट की आग में खटते हुए

अपने होने के अहसास की

लड़ाई लड़ रहे हैं।”³¹⁰

³⁰⁹ भारतीय कविता वादों के कटघरे में-डॉ. वी. कृष्ण, पृ. 12-13

³¹⁰ रूखसाना का घर-अनिता भारती, पृ-24

कविता में रूखसाना बोलती है कि पंद्रह दिनों से घर में खाने के लिए कुछ भी नहीं है। राजनैतिक दंगों के कारण आम लोगों के साथ होती मुश्किलों पर सरकार की नज़र नहीं जाती। उन्हें तो केवल धर्म, जाति के नाम पर षड्यंत्र करना आता है। दंगों के चलते रूखसाना और न जाने कितने ही ऐसे परिवार जो भूखे-प्यासे दंगों के बंद होने का इंतजार करते हैं। सरकार कुछ करेगी यह सोच कर चुप रह जाती है जनता। परंतु इन दंगों के पीछे जो कपट-राजनीति सरकार मासूम जनता के साथ कर रही है। उसे बड़ी खूबी से कवयित्री ने अपनी कविता संग्रह ‘रूखसाना का घर’ में दिखाया है।

रजत रानी ‘मीनू’ लिखती हैं कि “बदलते मूल्यों के संक्रामक दौर में सामंती शानो-शौकत, जातीय वरिष्ठता, वंशवादी कुलीनता, धार्मिक कूपमंडूकता, सामाजिक उजड़डता और राजनीतिक आश्वासनों के लुभावने मिथकों के बीच दलित कविता अपना रास्ता खोजती है।”³¹¹ रजनी तिलक ‘गुजरात’ कविता में गोधरा हत्याकांड के बारे में बोलती हैं-

“गुजरात नरसंहार क्या मात्र गोधरा प्रतिक्रिया थी?

या प्रतिक्रियावादियों की साजिश?

साम्प्रदायिक उन्माद, घृणा, दावेदारी

वर्चस्व की एक तरफ़ी जंग”³¹²

गुजरात में हुआ गोधरा हत्याकांड की कहानी कभी भी कोई भारतीय भूल नहीं सकता है। हिंदू मानसिकता के लोगों ने मुस्लिम लोगों के साथ जो नर-संहार किया, इससे एक बात साफ होती है कि, हिंदू कट्टरवादियों के लिए मुसलमान इस देश के निवासी या भारतीय ही नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत को एक धर्मनिरेपक्ष राज्य घोषित किया गया है, लेकिन फिर भी भारतीय राजनीति में आज भी साम्प्रदायिकता की समस्या बराबर बनी हुई है।

³¹¹ रजत रानी ‘मीनू’-नवेंदशक की हिंदी दलित कविता, पृ-50

³¹² दलित महिला लेखन-खंड-2, 2015-सं. रजनी तिलक, पृ-207

क्योंकि, भारत में अनेक जातियों तथा अनेक धर्मों से संबंधित लोग निवास करते हैं। प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने-अपने धर्म की रक्षा करने में लगे रहते हैं तथा धर्म के आधार पर राजनीतिक दलों को प्रभावित करते रहते हैं।

कट्टरपंथी ताकतें राष्ट्र को एकता व प्रगति के पथ पर आगे बढ़ने से रोकती हैं। वास्तव में भारत में साम्प्रदायिकता का उदय एवं विकास ब्रिटिश शासकों द्वारा किया गया। धर्म एवं जाति के नाम पर सभी लोगों में ईर्ष्या-द्वेष एवं भेदभाव साम्प्रदायिकता को जन्म देते हैं।

“सिक्ख समाज के साथ

जो हुआ

वह देखकर मन तड़प उठा

आँखों में अभी तक अजीब बेचैनी है

रुक-रुक मुट्ठी भिंचती है

वह नृशंस दृश्य सताते है

हर क्षण आँखों में उभरते है।”³¹³

‘1984 की लपटें..’ कविता में कवयित्री 1984 के सिक्खों के विरोध में हुए दंगे के बारे में लिखा है। इस दंगे का कारण इंदिरा गाँधी की हत्या जो उन्हीं के अंगरक्षकों के द्वारा की गई, जो सिख थे। इस दंगे में 3000 से ज्यादा मौतें हुई थी। सन् 1970 के दशक में इंदिरा गांधी द्वारा लगाए गए भारतीय आपातकाल के दौरान, स्वायत्त सरकार के लिए चुनाव प्रचार के लिए हजारों सिक्खों को कैद कर लिया गया था। इस छुटपुट हिंसा के चलते एक सशस्त्र सिख अलगाववादी समूह को भारत सरकार द्वारा एक आतंकवादी संस्था के रूप में नामित कर दिया गया था।

³¹³ हवा सी बेचैन युवतियाँ-रजनी तिलक, पृ-70

डॉ.अम्बेडकर का कहना है कि, “हमारा आंदोलन अहिंसक है। क्योंकि हमने अहिंसा के प्रबल हथियार को अपने हाथों में लिया है। किंतु यह गांधीजी की अहिंसा नहीं है। अहिंसा के बारे में गांधीजी की अपनी परिभाषा है। और अहिंसा की मेरी अपनी परिभाषा है जो गांधीजी से एकदम अलग है। अहिंसा के बारे में संत तुकाराम की जो परिभाषा है-

दया उसी का नाम जीवों का पालन।

और उच्छेदन दुश्मनों का।”³¹⁴

इस दंगों के चलते दिल्ली में खासकर मध्यम और उच्च मध्यवर्गीय सिख इलाकों को योजनाबद्ध तरीके से निशाना बनाया गया। राजधानी के लाजपत नगर, जंगपूरा, डिफेंस कॉलोनी, फ्रेंड्स कॉलनी, महारानी बाग, पटेल नगर, सफदरजंग एनक्लेव, पंजाबी बाद आदि कॉलोनीयों में हिंसा का तांडव रचा गया। गुरुद्वारों, दुकानों, घरों को लूट लिया गया और उसके बाद उन्हें आग के हवाले कर दिया गया। रजनी तिलक ‘फिर चीत्कारो’ कविता में लिखती हैं कि,

“आज उसी गुजरात में

फिर कत्ल हुई अहिंसा

प्रतिक्रिया की एक तरफी जंग में

मुस्लिम मजलूम हुए स्वाहा

कौन है गुजराती मुस्लिम

कहाँ से आए?

अरब, तालिबान या पाकिस्तान से

क्या थी इनकी नागरिकता?”³¹⁵

³¹⁴ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा... खंड 4- सं. एल.जी.मेश्राम ‘विमलकीर्ति’ पृ-120

³¹⁵ दलित महिला लेखन-2015, खंड-2, सं. रजनी तिलक, पृ-206

आजादी की स्वर्ण जयंती और मानव अधिकार की घोषणा इतने वर्ष बित जाने पर भी दलित स्त्रियों की हालत में विशेष परिवर्तन नहीं आया है। शिक्षा, राजनीति, प्रशासनिक सेवा, वाणिज्यिक क्षेत्र में उसकी पहुँच नगण्य है।

5.1.6. राष्ट्रवाद का मूल्य

स्वतंत्रता के बाद से ही देश में सत्ता-लोलुपता, स्वार्थवाद, वंशवाद, जातिवाद और भाई-भतीजावाद जैसी कुप्रवृत्तियों ने सत्ता पर अपना वर्चस्व जमा लिया जो राजनैतिक मूल्यों के विघटन और विचलन के कारण संभव हुआ। यही नहीं अपितु धार्मिक अंधविश्वासों के उन्माद को बढ़ावा देकर काल्पनिक देवी-देवताओं की फसलें और अधिक उगाई गईं। प्रतिक्रियावादी रचनाओं के द्वारा इन्हें राजनीति का हथियार बनाया गया। यही राजनैतिक मूल्यों के पतन और विचलन के लक्षण के परिणाम हैं। धार्मिक उन्माद के जवाब की परिणति धर्मवाद में और जातिवाद के जवाब में उत्पीड़ित जातियों की एकता बनने लगी। डॉ. अम्बेडकर का कहना है “राष्ट्र का लक्ष्य स्वराज्य है, अहिंसा नहीं, इस मत से मैं पूरी तरह सहमत हूँ। मेरे संदर्भ में भी अहिंसा मेरा लक्ष्य है, किंतु उसी के साथ स्वराज्य भी मेरा लक्ष्य है, यह बात भी उतनी ही सच है। क्योंकि अहिंसा मार्ग का स्वीकार किए बगैर जनता को स्वराज्य की प्राप्ति होना सम्भव नहीं है। किंतु हिंदुस्तान के गुलामी की बेड़ियों में जकड़कर रहने की बजाय अनत्याचार के रास्ते से भी स्वराज्य हासिल करना भी मैं पसंद करूँगा।”³¹⁶ कवयित्री रजनी तिलक अपनी कविता ‘तुम्हारा मानव अधिकार’ में लिखती हैं-

“जन-संघर्ष के अभियान में

मैं कब पीछे रही?

पुलिस अत्याचार

राजनैतिक बंदियों के मुठभेड़

³¹⁶ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा... खंड 3- सं. एल. जी. मेथ्राम ‘विमलकीर्ति’ पृ-242

अत्याचारों की जाँच-पड़ताल

और रिपोर्ट,

इन सबकी अंतिम कड़ी में

तुम्हारे साथ सदैव जुड़ी थी।”³¹⁷

कविता में मानव अधिकार पर कवयित्री सवाल उठाती है। डॉ. अम्बेडकर ने उन्हें जो प्रेरणा दी उसके चलते उन्हें अपने अधिकार से पहचान करवाया। आज उसी अधिकार की माँग की बात कविता में की गई है। देश के हर जन-संघर्ष में दलितों ने भी अपनी भागीदारी दिखाई है। फिर क्यों उसी को स्वयं के अधिकार से वंचित कर रही है सरकार। दलित पुरुषों को अधिकार मिलने लगा परंतु सरकार दलित स्त्रियों को भूल गई। परंतु अम्बेडकर ने स्त्रियों के हक के लिए संघर्ष करना नहीं छोड़ा। इस संदर्भ में डॉ. तुलसीराम का कहना है, “बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में भारतीय राजनीति में बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर का उदय हुआ। अतः वर्तमान दलित राजनीति तथा साहित्य का जो भी रूप है, उसकी जड़ में डॉ. अम्बेडकर का संघर्ष आज भी खाद-पानी की तरह काम आ रहा है।”³¹⁸

राजनीति के क्षेत्र में दलित स्त्रियों की भागीदारी बहुत कम है। अतः सरल स्थिति, सुविधाओं और विशेष आरक्षण की नीति द्वारा महिलाओं को राजनीति के क्षेत्र में लाया जाए। राजनीति से सत्ता और प्रशासन जुड़े हैं। इन क्षेत्रों से दलित स्त्री को दूर रखना समझदारी की बात नहीं है। राजनीति की नकारात्मक स्थिति को बदलकर दलित स्त्रियों को अधिक से अधिक संख्या में सत्ता और प्रशासन के क्षेत्र में आगे लाना चाहिए। इस संदर्भ में कवयित्री हेमलता महिश्वर ‘आरक्षण दूसरी पीढ़ी’ में लिखती हैं-

“मैंने केवल एक ही

³¹⁷ पदचाप-रजनी तिलक, पृ-19

³¹⁸ डॉ. तुलसीराम-दलित साहित्य की राजनीतिक अवधारणा, दलित-प्रसंग, सं. प्रणव बंधोपाध्याय, शिलालेख, नई दिल्ली, 1999, पृ-134

पायदान तय किया

दूसरा

करने जा रहा था

कि तुमने

खोखला करना

आरंभ कर दिया।”³¹⁹

रमणिका गुप्ता स्त्रियों के आरक्षण के संदर्भ में लिखती हैं “संसद में आरक्षण बिल किसी न किसी बहाने टालने का एक बड़ा कारण है- पुरुष नेतृत्व के छिन जाने का खतरा। 33 प्रतिशत महिलाएँ जब एकजुट हो जाएंगी तो, पुरुष के फैसलों या उसके वर्चस्व का क्या होगा, उन्हें यही चिंता सता रही है।”³²⁰

डॉ.अम्बेडकर के राजनीतिक विचारों का केंद्रबिंदु ‘मनुष्य’ है। इस मनुष्य की अस्मिता स्वाभिमान और स्वतंत्रता की रक्षा सत्ता और राजनीति करे ऐसा उनका आग्रह था। मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो और समाज के प्रत्येक वर्ग को सत्ता में साझेदारी मिले। संसदीय प्रणाली में ही ऐसी राजनीति संभव है- ऐसी उनकी धारणा थी। भारतीय संविधान में उन्होंने इस ‘मनुष्य की प्रतिष्ठा’ की। रजनी तिलक ‘शिकस्त’ कविता में लिखती हैं-

“वे ही नोचेंगे मुखौटा

झूठे राष्ट्रवाद की

तब होगी शिकस्त

बंदूक, बारूद, जुल्म की

³¹⁹ दलित महिला लेखन-खंड-2, 2015, सं.रजनी तिलक, पृ-175-176

³²⁰ स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास- रमणिका गुप्ता, पृ.205

बंदूक का बदला बंदूक?

जुल्म का बदला जुल्म?

बारुद का इलाज बारुद?"³²¹

कवयित्री यहाँ राष्ट्रवाद के झूठे मूल्य को चुकाने की बात कर रही हैं। राष्ट्र, समाज और मनुवादी सोच के लोगों ने जो कुछ भी आज तक दलितों को दिया है, अब समय आ गया है, उसे लौटाने का। देश की राजनीति केवल संसद और विधानसभाओं तक ही सीमित नहीं है। समाज में घटित होने वाली गुटबंदी, निम्न स्तर की जाति, संप्रदाय, धर्म और भाषा आदि की राजनीति को इन कविताओं में दिखाया गया है। कवयित्री अब हो रहे जुल्मों का सहना नहीं चाहती है। सदियों की गुलामी, अत्याचार, शोषण के विरुद्ध अपनी कविता में अपने स्वर की बुलंद करती है। कविता के शीर्षक 'शिकस्त' से ही यह प्रतीत होता है कि, कवयित्री ब्राह्मणवादी सोच के खिलाफ अपनी आवाज़ उठाकर उन्हें हराना चाहती है।

वहीं दूसरी ओर कवयित्री सुशीला टाकभौरे अपनी कविता में अपने भविष्य का मार्ग तय कर लिखती हैं-

"सदियों पुराना मानवता का जड़ इतिहास

धर्म, समाज, अर्थनीति

राजनीति के बंधे पन्नों से गुजर कर

भविष्य के यथार्थ में बदल रहा है।

मानों बाबासाहब का सपना

धीरे-धीरे रुप ले रहा है

यथार्थ का।"³²²

³²¹ दलित महिला लेखन-खंड-2, 2015, रजनी तिलक, पृ-209

³²² स्वाति बूंद और खारे मोती, हमारे हिस्से का सूरज-सुशीला टाकभौरे, पृ-200

‘भविष्य के यथार्थ’ कविता में कवयित्री सपने में एक ऐसे अश्व को देखती है। जो सभी बंधनों को तोड़कर तेजी से आगे बढ़ रहा है। भविष्य का वह यथार्थ देख रही है जो डॉ.अम्बेडकर का सपना था। धर्म, समाज, राजनीति आदि सभी बंधनों से मुक्ति की कामना करती है। सुशीला टाकभौर लिखती हैं "दलित आंदोलन का आधार 'जाति तोड़ो समाज जोड़ो' है। यह तभी हो सकेगा जब दलित समाज में आत्मसम्मान, स्वावलम्बन, सामाजिक न्याय, शिक्षा, दलित-पिछड़ों का आरक्षण, सुरक्षा, अंतर्जातीय विवाह, वैज्ञानिक सोच, स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा की स्थापना होगी- यही दलित आंदोलन का लक्ष्य है।"³²³

5.2. अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में राजनीति षड्यंत्र

बीसवीं शताब्दी में नागरिक अधिकार आंदोलन और स्त्री आंदोलन के दौर में अश्वेत स्त्रियों ने बड़े पैमाने पर स्वानुभवों की अभिव्यक्ति के लिए साहित्य की विभिन्न विधाओं को माध्यम बनाया। सन् 1963 में मार्टिन लूथर के नेतृत्व में राजधानी वाशिंगटन में दो लाख अश्वेतों का जुलूस निकला, जो अश्वेत मानस की इच्छाओं और समानता के अधिकार की आकांक्षा से प्रेरित था। आगे आने वाले बीस वर्ष अश्वेत आंदोलन के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण साबित हुए, जिन्होंने अश्वेत संस्कृति, संगीत, कला, साहित्य, भाषा से समूचे विश्व में अपनी विशिष्ट पहचान बना ली। “जनता को हमेशा अन्याय के खिलाफ सचेत रहना चाहिए। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह में आज गोरे लोग भी सम्मिलित होते हैं। उसका कारण अन्याय के प्रति नफरत की भावना है। जिन पर अन्याय हो रहा है, वे लोग अन्याय दूर न होने पर क्रांति के रास्ते पर चलने का फैसला करते हैं। इस तरह का उनका स्वभाव बन जाता है।”³²⁴

³²³ स्त्री नैतिकता का तालिबानीकरण, सं. रमणिका गुप्ता, विमल थोरात, पृ-49

³²⁴ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा.. खंड 5- सं. एल.जी.मेश्राम ‘विमलकीर्ति’ पृ-228

समाज और देश का राजनीतिकरण जैसे-जैसे हुआ, मानवीय मुद्दों का संघर्ष और तेज होने की बजाय ढीला ही पड़ा है। विस्तृत मानवीय समस्याओं पर जब खुल कर बहस करने का समय आया, तो वे सभी समस्याएँ एक बृहत संदर्भ में अपना महत्व खोती जा रही हैं। उन समस्याओं पर बेबाकी से बेझिझक और निडर होकर बात करना मुश्किल हो गया है। दायरे इतने संकुचित हो गये हैं कि कोई भी विचार अपने पूरे पांव फैला कर वहाँ बैठ भी नहीं सकता, छलांग लगाना तो दूर की कौड़ी। किसी भी मुद्दे का राजनीतिकरण एक अच्छी बात होती है क्योंकि आज किसी भी समस्या को हल करने का एक मात्र उपाय राजनीति ही है। लेकिन राजनीतिकरण का अर्थ एक खुला मंच न होकर केवल दलीय, वर्गीय, जातीय या धार्मिक हो कर रह जाए तो भविष्य पर आँखें टिका कर बात नहीं की जा सकती। सिर्फ आज की स्थिति का अपने पक्ष में दोहन ही बच रहता है। ज़रा भी खुला सोचने वाले लोग किसी ऐसे अवसर की तलाश में बैठे रह जाते हैं कि कब वे अपनी बात बिना लाठी, गोली खाए कह सकें।

5.2.1. नागरिक अधिकार आंदोलन

अनेक देशों में बड़ी संख्या में स्त्रियों के लिए राजनीति सत्ता में उच्च पदों पर पहुँच का अवसर खुल चुका है। वर्तमान में स्त्रियों के 'प्रेसर ग्रुप' को अत्यधिक प्रभाव और संसाधन प्राप्त हैं। महिलाएँ 'मीडिया' के माध्यम से और अन्य तरीकों से भी अपनी आवाज़ उठा रही हैं। वास्तव में, संयुक्त राष्ट्र के भूतपूर्व महासचिव बुत्रस घाली ने भी कहा था कि विश्व में स्त्री-पुरुष समानता का आंदोलन हमारे समय का एक महत्वपूर्ण आंदोलन है। संयुक्त राष्ट्र ने अपने विभिन्न सम्मेलनों, विशेषकर बीजिंग में हुए सम्मेलन के माध्यम से महिला अधिकारिता के मुद्दे के प्रति विश्व को जागरूक बनाने के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया है। "वास्तव में ये डाकू, लोग और कोई नहीं है बल्कि दक्षिण अमेरिका के राज्यों में कु ब्लुक्स-क्लॉन नाम से जाने जानेवाले और काले (नीग्रो) लोगों के गृहयुद्ध (सीविल वार) के पश्चात् उन्हें जो समानता के

बुनियादी हक प्राप्त हुए, उन्हें अमल में लाने के प्रयास के दौरान उन्हें बंदूक की गालियों को खत्म करने के लिए स्थापित की गई एक तरह से शोरे (ह्वाइट) लोगों की टोली है।”³²⁵

नागरिक अधिकार आंदोलन को संयुक्त राज्य के लिए संदर्भित किया गया, जिसका उद्देश्य अफ्रो-अमेरिकन लोगों के खिलाफ नस्लीय भेदभाव को गैर-कानूनी घोषित करना और दक्षिणी देशों में मतदान अधिकार को पुनः स्थापित करना था। दक्षिण में सन् 1966 को अश्वेत शक्ति आंदोलन का उद्भव हुआ, जो कि मोटे तौर पर सन् 1966 से 1975 तक चला। इसमें नागरिक अधिकार आंदोलन के उद्देश्यों को बृहत् बनाया गया और नस्लीय गौरव, आर्थिक और राजनीतिक आत्मनिर्भरता और गोरे अमेरिकन द्वारा उत्पीड़न से मुक्ति को शामिल किया गया। कवयित्री एलिस वॉकर अपनी कविता ‘These Days’ में कुछ इस तरह नागरिक अधिकारों को व्यक्त करती हुई लिखती हैं कि,

“Now I think how anti-racism

Like civil rights or

Affirmative action

Helps white people too.

Even if they are killing us

We have to say, to try to believe.”³²⁶

NAACP, SNCC, CORE और SCLC जैसे संगठनों से साथ कई लोग जो नागरिक अधिकार आंदोलन में सक्रिय थे, उन्होंने ‘दक्षिण स्वतंत्रता आंदोलन’ को तवज्जो दिया। क्योंकि यह केवल कानून के तहत नागरिक अधिकार के लिए संघर्ष नहीं था, बल्कि यह स्वतंत्रता, सम्मान, गरिमा और आर्थिक और सामाजिक समानता जैसे बुनियादी मुद्दों का संघर्ष था।

³²⁵ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा...खंड 5- सं. एल.जी. मेथ्राम ‘विलमकीर्ति’ पृ-206

³²⁶ Her blue body everything we know- alice walker, p-403

महिलाओं पर निर्धनता का बोझ, शैक्षणिक और अन्य प्रशिक्षण अवसरों तक असमान पहुँच, स्वास्थ्य संबंधी देखभाल और संबंध सेवाओं तक तथा आर्थिक अवसंरचना, नीतियों और निर्णय लेने में भागीदारी के रूप में भी अपर्याप्त पहुँच के साथ-साथ चिंता के महत्वपूर्ण क्षेत्रों के रूप की पहचान की गयी। “बॉल्टेयर बेगहोट ने ब्रिटिश संविधान पर (इंग्लिश कॉन्स्टिट्युसन) एक बहुत अच्छा विश्लेषण करने का प्रयास किया है। इस ग्रंथ में उन्होंने लोकतंत्र की परिभाषा इस प्रकार से दी है, ‘चर्चा पर आधारित शासनसंस्था’।(गवर्नमेंट बाइ डिस्कसन)”,³²⁷

बीजिंग सम्मेलन में स्वीकार की गई 'कार्यवाही के लिए आधार भूमि' की विशिष्ट सिफारिशों महिला समानता, अधिकारिता और न्याय के संबंध में आम सहमति का दृढ़तम उदाहरण है। ये सम्मेलन महिलाओं को शक्ति प्रदान करने और ऐसे निर्वाचन क्षेत्र सृजित करने के लिए संपूर्ण विश्व में किये गये प्रयासों को अधिकतम करने के लिए अंतरराष्ट्रीय महिला आंदोलन के प्रभाव को भी प्रकट करते हैं। जिससे सरकार महिलाओं के कम प्रतिनिधित्व के मुद्दे का समाधान होगा। जिसके माध्यम से महिलाएँ प्रभाव डालना चाहती हैं। कवयित्री निक्की गौओवानी की कविता 'My Poem' में लिखती हैं-

“I am 25 years old

Black female poet

Wrote a poem asking

Nigger can you kill

If they kill me

It won't stop

³²⁷ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा...खंड 5- सं. एल.जी. मेश्राम 'विलमकीर्ति' पृ-168

The revolution.”³²⁸

कविता में कवयित्री अपने व्यक्तित्व का परिचय देते हुए अफ्रो-अमेरिकन की जो क्रांति चल रही है, वह व्यक्त करती है। चाहे वह मेरे घर का सारा सामान लूट ले या मुझे मार भी दे, तब भी यह क्रांति रुकनी नहीं चाहिए। यह क्रांति हमारे समाज और स्त्रियों के लिए है, जो सदियों से गुलामी की जंजीरों में जकड़े हुए है। कवयित्री कविता के अंत में लिखती हैं कि,

“the revolution

Is in the streets

And if I stay on

The 5th floor

It will go on

If I never do

Anything

It will go on.”³²⁹

नागरिक अधिकार आंदोलन के इस चरण के दौरान पारित होने वाली प्रसिद्ध विधायी उपलब्धियों में था। सन् 1964 का नागरिक अधिकार अधिनियम (सिविल राइट्स एक्ट ऑफ 1964), जिसने रोजगार प्रथाओं और सार्वजनिक स्थानों में ‘जाति, रंग, धर्म या राष्ट्रीय मूल’ के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित किया। सन् 1965 का मतदान के अधिकार में, मतदान अधिकार को पुनः स्थापित और सुरक्षित किया। आलोचक एस.डी. कपूर लिखते हैं कि, “In Herbert aptheker’s American negro slave revolts, which was originally published in 1943 and later in 1987, one finds records of such revolts as expression of their rage, anger and desire for freedom. E.D.Genovese in

³²⁸ The poetry of black American- Arnold adoff, p-453

³²⁹ The poetry of black American- Arnold adoff, p-454

his book from 'rebellion to revolution: afro-americans slave revolts in the making of the modern world' gives detailed accounts of slave rebellions to show how innumerable afro-americans, preferred death to painful existence of slavery.”³³⁰ अर्थात् हर्बर्ट एपेथेकर की अमेरिकी नीग्रो स्लेव विद्रोह जो मूल रूप से 1943 में प्रकाशित हुआ था और बाद में 1987 में हुआ। एक व्यक्ति ने इस तरह के विद्रोहों पर क्रोध और स्वतंत्रता की इच्छा प्रकट किया। ई.डी.गेनोवेस ने अपनी पुस्तक में 'विद्रोह से क्रांति: आधुनिकता दुनिया बनाने में अफ्रीकी-विद्रोहियों के दास विद्रोह' है। इसमें दास विद्रोह के विस्तृत विवरणों को दिखाते हैं कि कैसे असंख्य अफ्रो-अमेरिकियों, गुलामी के दर्दनाक अस्तित्व के लिए मौत को प्राथमिकता दी।

पुरुषवादी मानसिकता ने स्त्रियों को हर क्षेत्र से वंचित रखा, चाहे वह आर्थिक हो या राजनीति। पर इन सब के बावजूद भी स्त्रियों ने अपने हक की लड़ाई के लिए काफी संघर्ष किया। “सारी दुनिया में महिला आंदोलन और महिला संबंधी नीतियों का आज एक मुख्य नारा है- महिलाओं में राजनीतिक शक्ति यस्त करो। सन् 1995 सितम्बर में बीजिंग में चौथा विश्व महिला सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन का भी एक प्रमुख विषय था- महिलाओं को राजनीतिक तौर पर कैसे सक्षम बनाया जाए। इस सम्मेलन में आगे की कारवाई का जो दस्तावेज-‘प्लैटफॉर्म फॉर एक्शन’ पारित किया गया था, उसमें महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार के तमाम बिंदुओं के साथ ही उनकी राजनीतिक स्थिति को भी समान रूप से महत्वपूर्ण बताया गया था।”³³¹ अफ्रो-अमेरिकन समाज में हुए मुख्य राजनीतिक घटनाओं की सूची इस प्रकार है-

सन् 1775-83 – अमेरिकी क्रांतिकारी युद्ध

³³⁰ Dalits and African-american- S.D.kapoor, p-46

³³¹ नारी प्रश्न-सरला माहेश्वरी, पृ-115

सन् 1791 – हाइशियान क्रांति शुरु हुई।

सन् 1793 – प्रथम भगोड़ा

सन् 1832 – मारिया स्टीवार्ट प्रथम अमेरिकी महिला हैं, जिन्होंने बॉस्टन में लाटर सर्किट के ऊपर सार्वजनिक राजनीतिक बहस में भाग लिया।

सन् 1861-65 – अमेरिकन नागरिक युद्ध

सन् 1862 – राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने अफ्रो-अमेरिकन दासों की मुक्ति के लिए विद्रोही राज्य की घोषणा की।

सन् 1864 – भगोड़ा दास कानून को रद्द कर दिया गया।

सन् 1865 – अश्वेत कोड कानून स्थापित हुआ, जो अफ्रो-अमेरिकन के अधिकारों को रोकने के लिए तथा गुलामी की सामाजिक स्थितियों की सुधार के लिए पुनः तैयार किया गया।

सन् 1866 – कांग्रेस ब्लैक कोड का प्रथम नागरिक अधिकार अधिनियम पारित।

सन् 1869 – राष्ट्रीय महिला मताधिकार संघ की स्थापना की गई।

सन् 1868 – चौदहवें संशोधन में कानून के तहत अफ्रो- अमेरिकन लोगों के साथ सभी नागरिकों को नागरिकता एवं 'समान सुरक्षा' हेतु पारित।

सन् 1870 – पंद्रहवाँ संशोधन में अफ्रो-अमेरिकन के अधिकारों के आदमी के मतदान लिए संरक्षित किए हुए हैं।

सन् 1895 – मेरी चर्च टेरेल वाशिंगटन, डी.सी., शिक्षा बोर्ड के प्रथम अफ्रो-अमेरिकन महिला हैं।

सन् 1896 – सर्वोच्च न्यायालय ने श्वेत महिला राष्ट्रीय संघ की स्थापना की जिसका उद्देश्य था अलग होने पर भी समानता।

सन् 1909 – श्वेत लोगों की उन्नति के लिए राष्ट्रीय (NAACP) संघ की स्थापना की गई।

सन् 1914-18 – प्रथम विश्वयुद्ध

सन् 1920 – उन्नीसवीं संशोधन में महिलाओं का मतदान की अधिकार को पारित किया गया है। हार्लेम पुनर्जागरण का आरंभ नया नीग्रो पुनर्जागरण के नाम से जाना जाता है।

सन् 1935-40 – कार्य प्रगति प्रशासन(WAP) कलाकार एवं रचनाकारों के लिए कार्य करता है।

सन् 1941-45 – यू.एस. द्वितीय युद्ध में भागीदार रहा।

सन् 1950 – एडिथ स्पुर्लोक सम्पसोन (1901-79) प्रथम अफ्रो-अमेरिकन हैं, जो राष्ट्र संघ के प्रतिनिधि बने।

सन् 1957 – साउदर्न क्रिश्चियन लीडशिप सम्मेलन स्थापित हुआ। राष्ट्रपति ने 1957 में अफ्रो-अमेरिकन मतदाताओं की सुरक्षा के लिए नागरिक अधिकार का अधिनियम लागू किया।

सन् 1960 – अहिंसक छात्र समन्वय कमेटी (SNCC) स्थापित की गई।

सन् 1963 – वाशिंगटन में यात्रा।

सन् 1964 – राष्ट्रपति लीडोम बी. जॉनसन ने 1964 में नागरिक अधिकार अधिनियम लागू किया।

सन् 1965-73 – वेएटनम युद्ध।

सन् 1965 – अश्वेत कला आंदोलन की शुरुआत।

सन् 1966 – ब्लैक पेंथर दल ओकलैंड, कैलिफ़ोर्निया में है। कॉस्टेंस बॉकर मोटली प्रथम अफ़्रो-अमेरिकन संघीय न्यायाधीश बने, जिन्हें राष्ट्रपति लींडन जॉनसन ने नियुक्ति दी।

सन् 1968 – डॉ.मार्टिन लूथर जूनियर की टेनिसी में हत्या कर दी गई।

सन् 1969 – अश्वेत पढ़ाई के लिए पहला विभाग सेन फ्रांसिस्को राज्य में बना।

सन् 1972 – शार्ली क्रिशॉम पहली अश्वेत महिला जो राष्ट्रपति के लिए चुनी गई।

सन् 1976 – बारबारा जोर्डन प्रथम अश्वेत महिला हैं जिन्होंने राष्ट्रीय राजनीतिक भाषण प्रदान किया।

सन् 1978 – सर्वोच्च न्यायालय ने वर्गगत कॉलेज एडमिशन के खिलाफ नियम लागू किया, परंतु सकारात्मक कार्यक्रम को मंजूरी दी।

सन् 1993 – माया एंजेलो, राष्ट्रपति क्लिंटन के राष्ट्रपतीय उद्घाटन के समय आमंत्रित पहली महिला एवं पहली अफ़्रो-अमेरिकन हैं, जिन्होंने अपनी कविता 'ऑन द पल्स ओफ मोर्निंग' पढ़ा।

सन् 1994 – रीटा डॉव पहली अफ़्रीकी अमेरिकी कवि विजेता नाम से जानी जाती हैं।

सन् 2000 – मिलियन महिलाओं का दल।

सन् 2001- कॉलिन पॉवेल को 20 जनवरी में राज्य सचिव के रूप में पहले अफ़्रो-अमेरिकन के रूप में नियुक्त किया गया था।

सन् 2003- ग्रेटर यू में सर्वोच्च न्यायालय बिलिंगर ने जून में मिशिगन विश्वविद्यालय के लॉ स्कूल की प्रवेश नीति को बरकरार रखा।

सन् 2005- अक्टूबर में वाशिंगटन डी.सी. में मिलियन्स मॉर आंदोलन का जुलूस निकाला गया।

सन् 2007- चैरोकी राष्ट्र ने चैरोकी जनजाति द्वारा अफ्रीकी गुलामों के अफ्रो-अमेरिकन वंशजों को निष्कासित करने के लिए मतदान किया।

सन् 2008- 2008 लोकतांत्रिक राष्ट्रीय सम्मेलन, बराक ओबामा ने संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति के लिए लोकतंत्रीय नामांकन स्वीकार किया।

सन् 2009- जनवरी में ओबामा ने संयुक्त राज्य जे 44वें राष्ट्रपति के रूप में शपथ ली, साथ ही अफ्रो-अमेरिकन के पहले राष्ट्रपति बने।

ओबामा को अक्टूबर में नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

सन् 2010- अमेरिका डाक सेवा ने 2010 में बारह नागरिक अधिकारों के अग्रणी को चित्रित करने वाला एक स्मारक छः स्टैम्प सेट जारी किया।

सन् 2013- एक निहत्थे अफ्रो-अमेरिकन किशोर ट्रेवोन मार्टिन की मौत के बाद संयुक्त राज्य भर में विरोध प्रदर्शन हुआ, जिसे फ्लोरिडा में जॉर्ज जिमरमैन ने गोली मारी। इस घटना के बाद #ब्लैकलाइव्समैटर को लोकप्रिय बनाया।

सन् 2014- माइकल ब्राउन जूनियर की गोली मार कर हुई मौत के बाद फर्ग्यूसन मिसौरी में बड़े पैमाने पर विरोध हुआ।

जुलाई 2014 में, न्यूयॉर्क शहर के एक पुलिसकर्मी डैनियल पेंटलोओ द्वारा चोकहोल्ड में आयोजित होने के दौरान एरिक गार्नर की मृत्यु के कारण पूरे देश में अतिरिक्त आक्रोश और विरोध छिड़ गया।

सन् 2019- गुलामी के राजनीतिक आंदोलन के अमेरिकी वंशज संयुक्त राज्य अमेरिका में ब्लैक अफ्रीकी प्रवासियों की बढ़ती संख्या से संयुक्त राज्य अमेरिका में ब्लैक अफ्रीकी प्रवासियों और कैरिबियन से अमेरिका में ब्लैक प्रवासियों से अलग होने लगे।

सन् 2020- अमेरिका के अफ्रो-अमेरिकन जॉर्ज फ्लॉयड की पुलिस हिरासत में मौत हुई।

कवयित्री एलिस वॉकर अपनी कविता 'Lost my Voice? Of course' में लिखती हैं-

“Lost my Voice?

Of course

You said poems of

Love and flowers are

A luxury the revolution

Cannot afford.”³³²

एलिस वॉकर तथा अन्य अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों ने यह जाहिर किया कि अश्वेत स्त्री के जीवनानुभव श्वेत, मध्यवर्गीय स्त्रियों की अपेक्षा न सिर्फ भिन्न हैं, बल्कि उसके शोषण की परिस्थितियाँ भी अधिक जटिल हैं। अफ्रो-अमेरिकन स्त्री आंदोलन के उदय का कारण भी इसी तार्किक पहलू पर आधारित है कि श्वेत मध्यवर्गीय, पढ़ी-लिखी स्त्रियों ने नारीवाद की जिस धारा का नेतृत्व किया, उसने वर्ग तथा नस्ल पर आधारित शोषण को तबज्जो नहीं दिया।

³³² Her blue body everything we know- alice walker, p-207

पेट्रिशिय हिल कॉलिन्स ने अपनी महत्वपूर्ण कृति 'फेमिनिस्ट थॉट' (1991) में अश्वेत नारीवाद को परिभाषित करते हुए कहा कि, 'इस नारीवाद को सैद्धांतिकी देती हुई विदुषियों ने साधारण अफ्रो-अमेरिकन स्त्री के अनुभवों तथा उसके विचारों को शामिल करते हुए एक अलग किस्म को दृष्टि अपने, समुदाय तथा समाज के प्रति प्रदान की।

नागरिक अधिकार आंदोलन प्रमुख नागरिक प्रतिरोध के अभियानों द्वारा चिन्हित हुआ। सन् 1955-1968 की अवधि के दौरान, अहिंसात्मक विरोध और नागरिक अवज्ञा के अधिनियम ने कार्यकर्ताओं और सरकारी अधिकारियों के बीच संकट की स्थिति उत्पन्न की। संघ, राज्य और स्थानीय सरकार, व्यापार और समुदायों को संकट की स्थितियों में अक्सर त्वरित प्रतिक्रिया करनी पड़ती थी, जिसने अफ्रो-अमेरिकन लोगों द्वारा सही जा रही विषमताओं को उजागर किया।

5.2.2. मार्टिन लूथर किंग जूनियर का योगदान

डॉ. मार्टिन लूथर किंग जूनियर (15 जनवरी-4 अप्रैल 1968) अमेरिका के एक पादरी, आंदोलनकारी एवं अफ्रो-अमेरिकन नागरिक अधिकारों के संघर्ष के प्रमुख नेता थे। उन्हें अमेरिका का गांधी भी कहा जाता है। उनके प्रयत्नों से अमेरिका में नागरिक अधिकारों के क्षेत्र में प्रगति हुई। इसलिए उन्हें आज मानव अधिकारों के प्रतीक के रूप में भी देखा जाता है। इन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका में नीग्रो समुदाय के प्रति होने वाले भेदभाव के विरुद्ध सफल अहिंसात्मक आंदोलन का संचालन किया। सन् 1995 का वर्ष उनके जीवन का निर्णायक मोड़ था। उन्हें अमेरिका के दक्षिणी प्रांत अल्बामा के मांटगोमरी शहरी में डेक्सटर एवेन्यू बॉपटिस्ट चर्च में प्रवचन देने के बुलाया गया और इसी वर्ष मांटगोमरी की सार्वजनिक बसों में काले-गोरे के भेद के विरुद्ध एक महिला श्रीमती रोज पार्क्स ने गिरफ्तारी दी। इसके बाद ही डॉ. किंग ने प्रसिद्ध बस आंदोलन चलाया पूरे 381 दिनों तक चले इस सत्याग्रह आंदोलन के बाद

अमेरिकी बसों में काले-गोरे यात्रियों के लिए अलग-अलग सीटें रखने का प्रावधान खत्म कर दिया गया।

अफ्रो-अमेरिकन कवयित्रियों ने डॉ. मार्टिन लूथर किंगके योगदान के बारे में अपनी कविताओं में लिखा है-

“His word still burns the center of the sun,

Above the thousands and the

Hundred thousands.

The word was justice. It was spoken.

So it shall be spoken

So it shall be done.”³³³

कवयित्री ग्वेंडोलीन ब्रूक्स अपनी कविता में ‘मार्टिन लूथर किंग जूनियर’ में लिखती हैं कि किस प्रकार अफ्रो-अमेरिकन समाज में क्रांति और प्रेरणा का स्रोत देने के लिए इनका बहुत बड़ा योगदान है। इन्होंने अमेरिकी समाज से रंगभेद और नस्लवाद को हटाने और इन पर किये गए अत्याचारों के खिलाफ अपनी आवाज़ उठाई। इन्होंने धार्मिक नेताओं की मदद से समान नागरिक कानून आंदोलन अमेरिका उत्तरी भाग में भी फैलाया। सन् 1964 में विश्व शांति के लिए सबसे कम उम्र के नोबेल पुरस्कार से नवाजा गया। कई धार्मिक व सामाजिक संस्थाओं ने उन्हें उनके सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में पुरस्कृत किया है। ‘टाइम’ पत्रिका ने उन्हें सन् 1963 का ‘मैन ऑफ द इयर’ चुना था। वे भारत में महात्मा गांधी जी के आदर्शों पर चलकर ही डॉ. किंग ने अमेरिका में इतना सफल आंदोलन चलाया, जिसे अधिकांश गोरों का भी समर्थन मिला।

³³³ द पोएट्री ऑफ ब्लैक अमेरिका-सं. आर्नोल्ड एंडोफ, पृ-159

रीटा बी. डेंड्रीज़ का कहना है कि “Black women made up a large segment of the contingency that travelled by mule carts from the south to pitch tents in foot-deep mud on the grounds of the Washington monument to protest discrimination in the famous 1963 march on Washington, D.C. supported by martin luther king jr.”³³⁴ अर्थात् अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों ने मार्टिन लूथर किंग जूनियर के समर्थन में काफी बड़ी संख्या में दक्षिण से वाशिंगटन डी.सी. की तरह विरोध प्रदर्शन किया। कवयित्री जून जॉर्डन अपनी कविता ‘In Memoriam: Martin Luther King, Jr.’ में लिखती हैं-

“honey people murder U.S.A
The milkland turn to monsters teach
To kill to violate pull down destroy
The weakly freedom growing fruit
From being born
America”³³⁵

4 अप्रैल 1968 को मार्टिन लूथर किंग का शहीद दिवस मनाया जाता है। सिविल राइट्स का जमाना यानी पचास और साठ का दशक अमरीकी मानस को तरह-तरह से रोशन रखता है। आज जब हम मार्टिन लूथर को याद करते हैं, तो उनके बेटे, बेटी और उनका अफ्रो-अमेरिकन समाज बदले हुए लहजे में बात करते हैं। श्वेत लोगों का नस्लवादी रवैया उन्हें आज भी संघर्ष की स्थिति में बनाए रखता है। लेकिन उनके रवैये में उनकी शक्ति का गर्व कम, असमंजस की स्थिति ज्यादा है। इसी तरह अश्वेत अमेरिकियों में अपनी मान्यता के अहसास के साथ-साथ एक कटु आभास अपनी ही पारिवारिक और सामूहिक कमज़ोरियों का भी है।

³³⁴ Black women’s blues- rita b. daridge, p-110

³³⁵ The poetry of black America- Arnold adoff, p-305

अपनी ही कमजोरियों की वजह से वे यह लड़ाई हारना नहीं चाहते थे। उनकी यह लड़ाई जारी है- सन् 1861 से। जब से अब्राहम लिंकन ने अफ्रो-अमेरिकन को गुलामी से आज़ादी दिलाई। संविधान के तेरहवें संशोधन के अंतर्गत सारे अमेरिका में गुलाम प्रथा को कानूनन समाप्त कर दिया गया था।

इन्होंने अपनी पुस्तक 'Stride Towards Freedom: The Montgomery Story' में कहा है "Once plagued with a tragic sense of inferiority resulting from the crippling effects of slavery and segregation, the negro has now been driven to reevaluate himself. He has come to feel that he is somebody. His religion reveals to him that god loves all his children and that the important thing about a man is not his specificity but his fundamentum."³³⁶ अर्थात् एक बार गुलामी और अलगाव के गंभीर प्रभावों के परिणामस्वरूप हीनता की दुखद भावना से ग्रस्त होने के बाद, नीग्रो को अब खुद का मुल्यांकन करने के लिए प्रेरित किया गया है। उसे अब अपने अस्तित्व की पहचान होने लगी है। उनके धर्म से पता चलता है कि ईश्वर अपने सभी बच्चों से प्रेम करता है और यह बात किसी एक व्यक्ति के बारे में नहीं है बल्कि सभी को विशिष्टता दी गई है।

सन् 1959 में मार्टिन लूथर किंग ने भारत की यात्रा की। डॉ. किंग ने अखबारों में कई आलेख लिखे थे। 'स्ट्राइड टुवर्ड फ्रीडम' (1958) तथा 'व्हायवी कैन नॉट वेट' (1964) उनकी लिखी पुस्तकें हैं। सन् 1957 में उन्होंने 'साउथ क्रिश्चियन लीडरशिप कॉन्फ्रेंस' की स्थापना की। डॉ. किंग का मुख्य वाक्य था, 'हम वह नहीं हैं, जो हमें होना चाहिए और हम वह नहीं हैं, जो होने वाले हैं, लेकिन खुदा का शुक्र है कि, हम वह भी नहीं हैं, जो हम थे।'

³³⁶ Martin Luther King, Jr. - stride toward freedom: the Montgomery story - new york - harper & row, 1958. P-190

5.2.3. मैल्कॉम एक्स का योगदान

19 मई 1925 में अमेरिका के निब्रास्का में जन्मे मैल्कॉम एक्स को हाज मालिक शबाज़ के नाम से भी जाना जाता है। वह मानवाधिकार कार्यकर्ता तथा अफ्रो-अमेरिकन मुसलमानों के नेता थे। वह अफ्रो-अमेरिकन लोगों पर श्वेत लोगों के अत्याचारों के घोर आलोचक थे। जिस कारण उनके विरोधी उन पर हिंसा और नस्लीय भेदभाव को बढ़ावा देने का आरोप लगाते थे। उनके पिता अर्ल लिटिल भी एक सामाजिक कार्यकर्ता थे। वे अश्वेत लोगों की उन्नति के लिए बनाये गये संगठन के प्रमुख थे।

जेल में रहने के दौरान मैल्कॉम को मिल्लते इस्लाम नारी संगठन से जुड़ने का अवसर मिला। सन् 1952 में जेल से आज़ादी के बाद वह मिल्लते इस्लाम के प्रवक्ता बने। उनके अथक् प्रयासों से भारी संख्या में श्वेत लोगों ने इस्लाम कुबूल करके मिल्लत इस्लाम में शामिल हो गये। लेकिन मैल्कॉम सन् 1964 में मिल्लते इस्लाम से अलग हो गए।

इसके बाद वे अफ्रीका और एशियाई देशों के दौर पर गए। ताकि विश्व समुदाय यह जान ले कि नस्लभेद और बंधुआ प्रथा केवल अमेरिका की समस्या नहीं है। इसी बीच वह हज के लिए मक्का गए और यही से उन्होंने अपना नाम बदलकर हाज मालिक शबाज़ कर दिया। मैल्कॉम को अपने सुधारवादी कदमों के लिए आलोचनाओं और हमलों का शिकार होना पड़ा।

कवयित्री ग्वेंडोलीन ब्रूक्स अपनी कविता में मैल्कॉम एक्स के बारे में लिखती हैं और साथ ही कविता का शीर्षक भी उन्होंने ‘Malcolm X’ रखा है-

“And in a soft and fundamental hour

A sorcery devault and vertical

Beguiled the world

He opened us-
who was a key,
Who was a man”³³⁷

मैल्कॉम एक्स के बारे में साहित्य जगत में तो बहुत जानकारी मिलती है। इसके साथ ही अंग्रेजी सिनेमा में ‘मैल्कॉम एक्स’ के नाम पर फिल्म भी बनायी गयी है। इस फिल्म में उनके जीवन और अफ्रो-अमेरिकन समाज के लिए किये गये उनके योगदान की छवि प्रस्तुत करते हैं। उनके जीवन से जुड़ी कई घटनाओं में से एक घटना के श्वेत लोगों ने उनके घर पर हमला कर दिया था। चारों तरफ आग ही आग थी और पिस्तौल पकड़े हुए श्वेत लोग शोर कर रहे थे। उनकी माँ नवजात बच्ची को गोद में लेकर चारों तरफ फैली भीषण आग से बचने का प्रयास कर रही थी। फायर ब्रिगेड दल तथा पुलिस के रूप में आये श्वेत लोग भी तमाशा देखते रहे जब तक घर जल कर राख नहीं हो गया।

कवयित्री मार्गरेट वॉकर अपनी ‘For Malcolm X’ कविता में मैल्कॉम एक्स के लिए लिखती हैं-

“All you violated ones with gentle hearts;
You violent dreamers whose cries shout heartbreak;
Whose voices echo clamors of our cool capers,
And whose balck faces have hollowed pits for eyes.”³³⁸

मैल्कॉम एक्स ने एक अति अलगाववादी रूख इख्तियार किया। उन्होंने साफ कहा कि ‘अपनी अलग पहचान अमेरिकी समाज में विलीन करने से वे श्वेत लोग हमारे व्यवसाय, पूंजी, शिक्षा, उद्योग- सब कुछ पर कब्जा कर लेंगे। हम फिर उन्हीं पर हर बात के लिए निर्भर

³³⁷ The world of Gwendolyn brooks - Gwendolyn brooks, p-411

³³⁸ The poetry of black American - Arnold adoff, p-150

हो जाएँगे।' आलोचको का कहना है कि, "Unlike the civil rights movement, it was more popular in the urban north than in the rural south, was inspired more by African culture than by the church, and espoused Malcolm X's philosophy of separatism and black nationalism more than Martin Luther King, Jr's philosophy of integration."³³⁹ अर्थात् नागरिक अधिकार आंदोलन के विपरीत, यह ग्रामीण दक्षिण की तुलना में शहरी उत्तर में अधिक लोकप्रिय था, चर्च की तुलना में अफ्रीका की संस्कृति से अधिक प्रेरित था और मार्टिन लूथर किंग जूनियर के एकीकरण के दर्शन से अधिक अलगाववाद और काले राष्ट्रवाद के दर्शन से मैल्कम एक्स का दर्शन हुआ।

कवयित्री माया एंजेलो ने अपनी कविता 'Thank you, Lord' में मार्टिन लूथर किंग, मैल्कॉम एक्स, डब्लू.ई.बी. डुबोइस के योगदान को धन्यवाद देते हुए लिखती हैं-

"I see you
Brown-skinned
Neat afro,
Full lips,
A little goatee
A Malcolm
Martin,
Du.Bois"³⁴⁰

कवयित्री इन पंक्तियों में मार्टिन, मैल्कॉम के साथ-साथ डब्लू.ई.बी. को धन्यवाद व्यक्त करते हैं। जिन्होंने एन ए ए सी पी (नेशनल ऑर्गनाइजेशन ऑफ कलर्ड पीपुल) की

³³⁹ Stewart burns, social movements of the 1960's : searching for democracy (boston: twayne, 1990), p-50

³⁴⁰ And still I rise- maya angelou, p-54

स्थापना की, जो अफ्रो-अमेरिकन अधिकारों की प्रमुख संस्था है। 'क्राइसिस' पत्रिका भी डुबोइस ने शुरू किया था। उन्होंने समझौतावादी सोच को नकार कर अफ्रो-अमेरिकन पहचान का नारा दिया। हकी मधुबुटि का मानना है "into the sixties a word was born, the word was black; that word had been born by 1903 in a self-referential encyclical entitled 'The Souls of Black Folk', by a father of non-traditional thought, W.E.B. Du Bois"³⁴¹ अर्थात् साठ के दशक में उत्पन्न हुआ एक शब्द 'ब्लैक' था। इस शब्द का जन्म 1903 में एक गैर-पारम्परिक विचार के पिता डब्ल्यू.ई.बी. डु बोईस द्वारा स्व-संदर्भित विश्वकोशीय 'काले लोक की आत्माएँ' शीर्षक से हुआ।

21 फरवरी 1965 को न्यूयॉर्क के मैनहट्टन में एक सभा को संबोधित करते हुए 3 हमलावरों ने उन पर गोलियाँ बरसाईं। जिससे मानवता के लिए लड़ने वाला यह 39 वर्षीय सामाजिक कार्यकर्ता अपनी जान गंवा बैठा। यह जानना भी रोचक है कि बॉक्सिंग किंग मौहम्मद अली जिस इस्लामी बैठक में भाग लेते थे, मैल्कॉम उस संस्था के आध्यात्मिक पेशवा थे। मौहम्मद अली का पहला इस्लामी नाम कसीयूस एक्स था। "Much of the labour of that birth had been borne by writer activist organizations which coincided with the opening of Baraka's Black Arts Theatre school in 1965 shortly after the assassination of Malcolm X."³⁴² अर्थात् उसके जन्म का अधिकांश श्रम लेखक कार्यकर्ता के संगठनों द्वारा वहन किया गया था, जो 1965 में मैल्कॉम एक्स की हत्या के बाद बाराका के ब्लैक आर्ट्स थिएटर स्कूल के उद्घाटन के साथ आया था।

³⁴¹ African-american women's literature- ed. Angelyn Mitchell, p-52

³⁴² African-american women's literature- ed. Angelyn Mitchell, p-64

कवयित्री एलिस वॉकर की कविता 'Women of color have rarely had the opportunity to write about their love affairs' में लिखती हैं-

“She has nothing to say
About the internal drama
Of the NAACP’s birth.
She mentions Du Bois’s conflict with
Washington
Only in passing
And his debates with
Garvey not at all.”³⁴³

अमेरिका भले ही दुनिया की शक्तिशाली देशों में से एक हो, लेकिन उस देश में भी ऐसी कई दिक्कतें हैं जो बरसों से खत्म ही नहीं हो रही हैं। अमेरिकी समाज की सबसे बड़ी दिक्कत श्वेत बनाम अफ्रो-अमेरिकन की लड़ाई, यह लड़ाई सदियों से चली आ रही है जो आज तक जिंदा है। बीसवीं सदी में ऐसे ही एक उभरते अश्वेत नेता मैल्कॉम एक्स की अमेरिका में एक रैली के वक्त हत्या कर दी गई थी।

5.2.4. नया नीग्रो और हार्लेम क्रांति

पहले विश्वयुद्ध और उसके परिणामों के कारण नीग्रो के विचारों में आमूलागत परिवर्तन हुआ। हजारों नीग्रो दक्षिण की ओर से उत्तर की ओर स्थानांतरित हुए। वहाँ उन्हें विविध उद्योगों में प्रवेश मिल गया। उनके साथ शिक्षा और राजनीति में प्रवेश हुआ। उसके कारण उनका सामाजिक सहयोग बढ़ा। पारंपरिक नीग्रों के व्यक्तित्व में एक नयी चेतना निर्मित हुई। भूतकाल के अपेक्षा यह बदला हुआ नीग्रो नया था। केवल नीग्रो में बदलाव हुआ, इतना

³⁴³ Her blue body everything we know-alice walker, p-295-296

ही नहीं तो इस बदलाव का श्वेतों के दृष्टिकोण पर भी असर हुआ। इसके सिवाय वांशिक प्रश्नों की ओर देखने के श्वेत लोगों के दृष्टिकोण में फर्क पड़ने लगा। यह फर्क काले-गोरों के दृष्टिकोण तक सीमित नहीं रहा, तो नीग्रो को दो पीढ़ियों के देखने के नज़रिये में यह बदलाव महसूस होने लगा। “अब्राहम लिंकन ने भी लोकतंत्र की परिभाषा की है, जिसकी हम चर्चा कर रहे हैं। दक्षिण के राज्यों के साथ उनका जो युद्ध हुआ महत्वपूर्ण भाषण दिया। उसमें उन्होंने लोकतंत्र की परिभाषा करते हुए कहा कि, ‘लोगों की, लोगों द्वारा और लोगों के लिए चलाई गई सरकार’(ए गवर्नमेंट ऑफ द पीपल बाइ द पीपल एंड फॉर द पीपल)”³⁴⁴ कवयित्री ग्वेंडोलीन ब्रूक्स अपनी कविता ‘Negro hero’ में लिखती हैं-

“Naturally, the important thing is, I helped to

Save them,

Them and a part of their democracy,

Even if I had to kick their law into their

Teeth in order to do that for them.

And I am feeling well and settled in myself

Because I believe it was a good job.”³⁴⁵

लेखिका विजय शर्मा, गैडोलीन ब्रूक्स के बारे में लिखती हैं कि “सन् 1968 में गैडोलीन ब्रूक्स को इलिनॉइस का ‘ऑफीसियल पोयेट लोरेट’ घोषित किया गया। यह किसी कवि को मिलने वाला सर्वोच्च सम्मान है। 1985 में इन्हें लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस का पोयेट्री के लिए सलाहकार (कॉन्सल्टेंट) बनाया गया। ये इस पद के लिए अमेरिका की प्रथम अफ्रो-

³⁴⁴ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा... खंड 5- सं. एल.जी.मेश्राम ‘विमलकीर्ति’, पृ-168

³⁴⁵ The world of Gwendolyn brooks- Gwendolyn broks, p--34

अमेरिकन सम्मानित व्यक्ति बनी। इन सम्मानों ने इन्हें समाज में काफी महत्वपूर्ण बना दिया, न केवल अश्वेत वर्ण श्वेत का, पूरे राष्ट्र का भी प्रवक्ता बना दिया।”³⁴⁶

सन् 1916-17 में हर्बर्ट हैरिसन ने ‘नया नीग्रो की स्थापना की। सन् 1917 में उन्होंने ‘न्यू नीग्रो मूवमेंट’ का पहला संगठन (द लिबर्टी लीग) और प्रथम अखबार ‘द वॉयस’ की स्थापना की और इस आंदोलन ने हार्लेम क्रांति और वर्ग संघर्ष को प्रेरणा देते हुए आगे बढ़ाया। राजनैतिक समानता, अलगाव और नस्लवाद का अंत करने के साथ-साथ सशस्त्र आत्म-रक्षा की मांग करता है। हैरिसन ने सन् 1919 में ‘द न्यू नीग्रो’ का सम्पादन किया और सन् 1920 में अपनी पुस्तक सम्पादित ‘व्हेन अफ्रीकन एवेक्स द ‘इंसाइड स्टोरी’ ऑफ द स्टिरिंग्स एंड स्ट्रिविंग्स ऑफ द निऊ नीग्रो इन द वेस्टर्न वर्ल्ड’ लिखी। इन कारणों से उन्हें “फादर ऑफ हार्लेम रेडिकलिज्म” कहा जाता है।

‘न्यू निग्रो’ शब्द ने अपने विविध प्रतिभागियों और प्रमोटर्स से कई तरह की प्रक्रियाएँ प्रेरित की। एक आक्रामक अफ्रो-अमेरिकन संपादक ने सन् 1920 यह संकेत दिया था कि कैसे विचार की नई रेखा, दृष्टिकोण का नया तरीका संभव हो सकता है। एक नया नस्लीय प्रेम, सम्मान और चेतना पैदा हो सकती है। ऐसा महसूस किया गया अफ्रो-अमेरिकन संस्कृति और राजनीति में अपने स्वयं का संगठन बनाने के बजाय ‘समस्या’ और ‘सूत्र’ के बारे में दूसरों को चर्चा करने का अवसर प्राप्त हुआ।

कवयित्री सोनिया सांचेज ‘Now Poem’ कविता में लिखती हैं-

“don’t let them die out

All these old/blk/people

Don’t let them cop out

³⁴⁶ अफ्रो-अमेरिकन साहित्य स्त्री स्वर, विजय शर्मा, पृ-311

With their memories

Of slavery/survival.

It is our

Heritage.

U know. Part/African

Part/negro.

Part/slave.”³⁴⁷

सन् 1920 के दशक में न्यू नीग्रो जिसमें प्रभावशाली दस लोगों में कवि, उपन्यासकार और गीतकार शामिल थे जिन्होंने नीग्रो लोक विरासत और इतिहास से अपनी कला का प्रदर्शन किया। अश्वेत राजनेताओं ने भ्रष्टाचार, व्यवसाय और अफ्रो-अमेरिकन लोगों के लिए अवसरों को न देने के खिलाफ आवाज़ उठायी। इस दौरान ‘हार्लेम रीनेसां’ (1920-1940) तक के समय में अफ्रो-अमेरिकन लोगों के लिए उत्कर्ष का कारण बना।

हार्लेम न्यूयार्क शहर का ही एक हिस्सा है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका और यूरोप में औद्योगिक क्रांति शुरू हुई, उस समय अफ्रो-अमेरिकन अपनी स्वतंत्रता, नागरिक अधिकारों की लड़ाई और अपनी संस्कृति, अपने विशिष्ट जीवन दर्शन और अपने अफ्रीकी मूल से जुड़ने का संघर्ष कर रहे थे। गुलामी समाप्त हुए आधी से ज्यादा सदी हो गई थी, लेकिन अमेरिकी कानून उन पर अपने प्रतिबंध और भी कड़े कर रहा था। ‘जिस क्रो’ के काले कानूनों के नाम से ये प्रतिबंध जाने जाते हैं। अमेरिका के दक्षिण भागों में अश्वेतों की संख्या अधिक थी। खेतों की गुलामी और मजदूरी से आज़ाद होकर अश्वेत उत्तर और पश्चिम की ओर जाने लगे। वहाँ उद्योग धंधे ज्यादा थे। उत्तरी भाग हमेशा ही गुलाम प्रथा विरोधी होने के कारण

³⁴⁷ The poetry of black American- ed. Arnold adoff, p-290

अश्वेतों के प्रति उदार भी था। इसी कारण बड़ी संख्या में अश्वेत शिकागो और न्यूयार्क में आ बसे।

कवयित्री पॉल मुरेय ने अपने कविता 'Harlem Riot, 1943' में लिखती हैं-

“Not by hammering the furious word,
Nor bread stamped in the streets,
Nor milk emptied in gutter,
Shall we gain the gates of the city.
But I am a prophet without eyes to see;
I do not know how we shall gain the gates of the city.
August 1943”³⁴⁸

अगस्त 1943 श्वेत पुलिस अधिकार जेम्स कोलिंस ने एक अश्वेत सिपाही रोवर्ट बेंडी को गोली मार कर घायल कर दिया था। इसी घटना को ध्यान में रखकर यह कविता लिखी गई है।

बीसवीं सदी के आते-आते हार्लेम में लगभग दो लाख अश्वेत आ बसे। मुश्किल से तीन वर्ग मील के इलाके में इतनी बड़ी अश्वेत आबादी। अपनी शक्ति का संगठन और अपने मूल्यों को विकसित करने में लग गई। हर स्तर के लोग यहाँ आ बसे थे। इस अश्वेत सागर में असीम संपदा छिपी हुई थी। “The vogue for African and African-american art seemed to portend greter support for black peoples political rights. It did not. But it did open a space for writers, who were able to make art of both the expanded opportunities and the persistant constraints.”³⁴⁹ अर्थात् अफ्रीकी

³⁴⁸ The poetry of black American- ed. Arnold adoff, p-109

³⁴⁹ African-american women's literature- ed. Angelyn Mitchell, p-32

और अफ्रो-अमेरिकन कला ब्लैक लोगों की राजनीतिक अधिकारों के लिए अधिक से अधिक समर्थन दिखाते थे। लेकिन इसने लेखकों के लिए एक स्थान खोल दिया था, जो विस्तारित अवसरों और दोनों की कला करने में सक्षम थे।

हार्लेम क्रांति के दौरान अशिक्षित, शिक्षित, मजदूर, दुकानदार, अदाकार, संगीतकार, साहित्यकार इत्यादि एक विशाल आत्मोदय में लग गए। न्यूयार्क का हिस्सा होने के कारण हर बात का विस्तृत केंद्र वह पहले ही था। लेकिन न्यूयार्क के गोरेपन ने हार्लेम के काले रंग को अपनी पूरी चमक के साथ उभारा। अपनी अस्मिता की ऐसी पहचान उजागर हुई कि इस तीन वर्गमिल की संस्कृति, कला, संगीत अमेरिका में ही नहीं, दुनिया के बाकी हिस्सों में भी गूंजने लगी।

आलोचक एंजेलीन मीथ चेल लिखती हैं, “Harlem Renaissance is the term used most often to identify the cultural awakening of which these artists were part. Harlem, located in new york city, the national cultural capital, became the cultural capital of African-americans during the 1920s. but many of the women writers including marita bonner, alice dundar- nelson, Angelina weld grimkle, zora neale Hurston, Georgia douglas Johnson and anne spencer spent little or no time there. Some writers referred to the ‘New Negro Renaissance’ to express their sense of a redefined racial identity, one the heralded the spiritual emancipation of black americans.”³⁵⁰ अर्थात् हार्लेम पुनर्जागरण शब्द का उपयोग सबसे अधिक बार सांस्कृतिक जागरण की पहचान करने के लिए किया जाता है जिसमें ये कलाकार हिस्सा थे। हार्लेम, राष्ट्रीय सांस्कृतिक राजधानी न्यूयॉर्क शहर में स्थित, 1920 के दशक के दौरान अफ्रो-

³⁵⁰ African-american women’s literature- ed. Angelyn Mitchell, p-32-33

अमेरिकन लोगों की सांस्कृतिक राजधानी बन गई। लेकिन महिला लेखिकाएँ जिनमें मारिटा बोनर, एलाइस डुंवर नेल्सन, एंजेलिना वेल्ड ग्रीकल, ज़ोरा नील हस्टॉन, जिओ डॉग्लस जॉन्सन और आने स्पेंसर ने कुछ और वक्त वहाँ बिताया। कुछ लेखकों ने 'नई नीग्रो पुनर्जागरण' के संदर्भ में एक नस्लीय पहचान की अपनी भावना को व्यक्त करने के लिए कहा।

कवयित्री माया एंजेलो अपनी कविता 'The Pusher' में कहती हैं-

“He stashed
He stands stashed
Near, too near the MILK
Library. P.S. naught
Naught naught. Breathing
Slaughter on the Malcolm X
Institute.”³⁵¹

नया नीग्रो और हार्लेम क्रांति के कारण ना केवल अफ्रो-अमेरिकन समाज में बदलाव आया बल्कि स्त्रियों में भी कई नए आधार खुल गये। जिसके कारण उनकी अस्मिता की पहचान पूरे विश्व में कला, संगीत, नृत्य आदि के द्वारा होने लगा। कवयित्री माया एंजेलो ने भी इस नई क्रांति को अपनी कविताओं के माध्यम से देखाया है।

5.2.5. स्त्री मुक्ति आंदोलन

वर्तमान अफ्रो-अमेरिकन स्त्रीवाद एक राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन के रूप में सन् 1960 तथा 1970 के दशक के उन समस्त नागरिक अधिकार आंदोलनों तथा स्त्रीवाद आंदोलन के प्रति विसम्मति से उपजा। जिन्होंने उसके मुद्दों को मुख्य आधार में शामिल नहीं

³⁵¹ Oh pray my wings are gonna fit me well- maya angleou, p-41

किया था। मेरी एन वेदर जो अफ्रो-अमेरिकन स्त्रीवाद की प्रबल समर्थक थी। सन् 1969 में एक रेडिकल नारीवादियों की पत्रिका नो मोर फन एण्ड गेम्स: ए जॉर्नल ऑफ फीमेल लिबरेशन' में लिखती हैं कि, 'दुनिया की सभी स्त्रियाँ शोषण की शिकार हैं यहाँ तक कि श्वेत स्त्री भी। विशेष तौर पर गरीब श्वेत स्त्री तथा भारतीय, मैक्सिकन व्युरिटोरिको की अश्वेत अमेरिकन तथा अफ्रीकी स्त्रियाँ तीहरे किस्म के शोषण की शिकार हैं। परंतु हम सभी स्त्री शोषण को सामान्य रूप से समझते हैं। इसका अर्थ है, हमें सभी के साथ संवाद की स्थिति पैदा करनी होगी ताकि भिन्नता के बावजूद भी मंच पर खड़े होने की स्थितियाँ पैदा की जा सकें।'

“I liked
Especially
The one
That said
The revolution
Must
Liberate
The cougars, the trees,
And the lakes;
When he read it
Everyone
Breathed
Relief.”³⁵²

³⁵² Her blue body everything me know-alice walker, p-391

‘Well’ कविता में एलिस वॉकर ने लिखा है लिंग, वर्ग तथा नस्ल आधारित शोषण को सम्यक रूप से समझे बिना तथा उनके विरुद्ध एकजुट हुए बिना स्त्री मुक्ति आंदोलन संभव नहीं है। “Both Jordan and Lorde become activists around such human rights issues as police violence, open education, health care and women’s rights; each poet uses her art to raise the conscience of an audience, especially with regard to black identity, human rights, women’s issues and gender preference: both women are bi-sexual, mothers and lovers of women as well as men, each will eventually succumb to breast cancer after a valiant struggle for survival.”³⁵³ अर्थात् जॉर्डन और लॉर्ड दोनों ऐसे मानवाधिकार मुद्दों के कार्यकर्ता बन जाते हैं जैसे पुलिस हिंसा, खुली शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और महिलाओं के अधिकार; प्रत्येक कवि दर्शकों की अंतरात्मा को बढ़ाने के लिए अपनी कला का उपयोग करता है, विशेष रूप से ब्लैक पहचान, मानवाधिकार, महिलाओं के मुद्दों और लिंग के संबंध में दोनों महिलाएं अस्मिता के लिए पहचान बना रही हैं।

अफ्रो-अमेरिकन स्त्री मुक्ति आंदोलन की आधार भूमि को तैयार करने में एलिस वॉकर के वुमेनिस्म के सिद्धांत का महत्वपूर्ण योगदान है। अफ्रो-अमेरिकन नारीवाद संगठनों का उदय सन् 1970 के दशक में हुआ ‘नेशनल ब्लैक फेमिनिस्ट ऑर्गनाइजेशन’ की स्थापना सन् 1973 में हुई, जिसमें नारीवादियों ने सत्ता संबंधों को प्रश्नांकित करते हुए, अफ्रीकी तथा अमेरिकी अश्वेत स्त्रियों द्वारा झेली जा रही, हिंसा की परिस्थितियों के विरुद्ध प्रतिबद्धता जाहिर की। परंतु अंततः सन् 1977 में इस सक्रिय संगठन ने काम करना बंद कर दिया ‘द कॉम्बाहो रिवर कलेक्टिव’ हमेशा अश्वेत समाजवादी नारीवादियों का एक महत्वपूर्ण संगठन बना रहा। बारबरा स्मिथ जो एक अश्वेत समलैंगिक समर्थक थीं, उन्होंने इस संगठन का नाम प्रस्तावित

³⁵³ African-american women’s literature- ed. Angelyn mitchell, p-145

किया था। “Black feminism’s desire to be inclusive of all black women was not always actualized, however, in that it failed to consider the experiences of black lesbians, whose literary representations served as Barbara smith’s pointof departure to outline criteria for a more inclusive black feminist literary criticism.”³⁵⁴ अर्थात् अश्वेत नारीवाद की इच्छा सभी अश्वेत स्त्रियों को शामिल करने की नहीं थी, लेकिन यह हमेशा काले समलैंगिकों के अनुभवों पर विचार करने में विफल रही। जिनकी साहित्यिक अभ्यावेदन बारबरा स्मिथ के रूप में एक अधिक समावेशी ब्लैक नारीवादी साहित्यिक आलोचना के लिए मानदंड की ओर प्रस्थान करते हैं।

कवयित्री ग्वेंडोलीन ब्रूक्स ‘The wall’ कविता में लिखती हैं-

“black boy-men.

Black

Boy-men on roofs fist out ‘black power!’ val,

A little black stampede

In african

Images of brass and flowerswirl,

Fists out ‘black power!’- tightens pretty eyes.”³⁵⁵

कवयित्री ग्वेंडोलीन ब्रूक्स ने एक साक्षात्कार में लिखा है कि “हाल में ही मुझसे पूछा गया कि मैं स्त्री स्वातंत्र्य के बारे में क्या सोचती हूँ? मेरा मानना है कि कम से कम इस समय तो

³⁵⁴ Home girls: a black feminist anthology, ed. Barbara smith (new york: women of color press, 1983), p -190

³⁵⁵ The world of Gwendolyn brooks - Gwendolyn brooks, p-414

स्त्री स्वातंत्र्य अश्वेत स्त्री के लिए नहीं है, क्योंकि अश्वेत पुरुष इतिहास के इस कालखंड में इस विशिष्ट आंदोलनकारी समय में अपनी स्त्रियों को अनुगामी रूप में देखना चाहते हैं।”³⁵⁶

अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों द्वारा दर्ज किया गया, प्रतिरोध वस्तुतः दो दृष्टिकोणों का परिणाम है। पहला दृष्टिकोण यह मानना है कि दरअसल शोषित समूह स्वयं को शक्तिशाली समूहों के साथ जोड़ कर देखता है, जिसमें कारण उनके स्वयं के शोषण की कोई वैध व्याख्या उनके पास नहीं होती। दूसरा दृष्टिकोण यह मानता है कि, शोषित समूह अपने शोषकों को अपेक्षा इंसानों की श्रेणी में नहीं आते। इसलिए उनमें अपना दृष्टिकोण यह मानते हैं कि शोषित समूह द्वारा अपनी चेतना की अभिव्यक्ति को वर्चस्वशाली समूहों द्वारा स्वीकार्यता न मिलना उभरते हुए विचारों की प्रतिबद्धता को और सुदृढ़ करता है। खासतौर पर दोनों की दृष्टिकोण यह मानते हैं कि, शोषित समूहों में राजनीतिक कार्यक्षमता मजबूती से नहीं उभर पाती क्योंकि, उनमें अपनी शोषित स्थिति के प्रति चेतना का घोर अभाव होता है। “Black feminist theory, as a political enterprise, embodies analogous goals, and has used black women’s writing, including fiction, poetry, autobiography, memoir and manifestos as loci from which to theorize its goals and responsibilities.”³⁵⁷ अर्थात् अश्वेत नारीवादी सिद्धांत, एक राजनीतिक उद्गम के रूप में, एनलॉग्स लक्ष्यों को ग्रहण करते हैं और उन्होंने अश्वेत स्त्रियों के लेखन का उपयोग किया है, जिसमें कविता, आत्मकथा, संस्मरण और घोषणापत्र शामिल हैं, जिसमें लोकी के रूप में लक्ष्य और जिम्मेदारियाँ हैं।

कवयित्री ऑड्रे लोर्ड की कविता ‘Coal’ में लिखती हैं-

“i

³⁵⁶ र्वेंडोलाइन ब्रुक्स – रिपोर्ट फ्रॉम पार्ट वन-1972, पृ-179

³⁵⁷ African American women’s literature- ed.angelyn Mitchell, p-88

Is the total black, being spoken

From the earth's in side.

There are many kinds of open.

How a diamond comes into a knot of flame

How sound comes into a word, coloured

By who pays what for speaking.”³⁵⁸

राजनैतिक आंदोलन से प्रत्यक्ष और परोक्ष स्तर पर जुड़ी स्त्रियों की बड़ी जमात ने कविता को समृद्ध किया और साथ ही कविताओं को अतीत के दास-आख्यानो की श्रृंखला में विश्लेषित किए जाने की सिफारिश भी की। इन्हें प्रतिरोधी आख्यान कहा जाना चाहिए, क्योंकि इन सभी में रंग, नस्ल, लिंग पर आधारित राजनीति की प्रतिरोधी चेतना अंतर्ध्वनित है। इन कवयित्रियों में ज्यादातर का मानना है कि निजी यंत्रणा, निजी जीवन में सुख-दुःख की कथाओं से कहीं अधिक महत्वपूर्ण राजनीतिक अंतर्दृष्टि है। फ्रेडरिक डगलस ने अपनी आत्माकथा में लिखा है “मुझे अक्सर अपने अस्तित्व पर पछतावा होता और मैं मरने की इच्छा करता, क्योंकि मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं था कि मर कर मैं आजाद हो जाऊंगा। मैं सोचता कि मुझे अपने आप को खत्म कर लेना चाहिए या कोई ऐसा काम करना चाहिए कि जिसकी वजह से मुझे मार दिया जाए। इस मनोदशा में मैं दास प्रथा पर किसी को कुछ भी कहते हुए सुनने के लिए व्यग्र रहता।”³⁵⁹

अफ्रो-अमेरिकन स्त्री अध्ययनों को होने वाले बौद्धिक कार्यों में यह स्पष्ट झलक मिलती है कि अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों का अपने द्वारा अपने शोषण के प्रति परिभाषित दृष्टिकोण है। दो अंतर संबोधित घटक इस दृष्टिकोण को परिभाषित करते हैं। प्रथम अश्वेत स्त्रियों की राजनीति एवं आर्थिक परिस्थितियाँ उन्हें एक भिन्न प्रकार का जीवन अनुभव प्रदान

³⁵⁸ The poetry of black American- ed. Arnold adoff, p-244

³⁵⁹ एक अमेरिकी गुलाम- फ्रेडरिक डगलस- अनु. बृज किशोर वशिष्ठ, पृ.43

करती हैं, जो उनमें भौतिक यथार्थ को अन्य समूहों की अपेक्षा दुनिया को समझने की अलग दृष्टि प्रदान करता है।

5.3. निष्कर्ष

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों की कविताओं में राजनीतिक उथल-पुथल का चित्रण किया गया है। स्त्रियों की भागीदारी राजनीति के क्षेत्र में पुरुषों के मुकाबले बहुत कम मात्रा में रही हैं। इसका मुख्य कारण ही पुरुषवादी सोच है जो यह आज भी मानती है कि स्त्री मात्र घर संभाल सकती है। इस मिथ को कई हद तक दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों ने तोड़ने की चेष्टा की है। डॉ.अम्बेडकर, मार्टिन लूथर किंग या नेल्सन मंडेला सभी ने राजनीति में स्त्रियों की स्थिति को लेकर स्त्री मुक्ति आंदोलन के हक में अपनी राय रखी है। समाज में जब-जब आज़ादी की बात की जाती है, दलितों और अश्वेतों को यह अपने लिए गाली-सी लगती है। क्योंकि वह आज़ादी जिस लोकतंत्र पर आधारित है, उसमें समता नाम की कोई चीज़ नहीं है। यह लोकतंत्र सच्चा लोकतंत्र नहीं है। लोकतंत्र केवल सरकार का रूप नहीं अपितु एक जीवन पद्धति है। समता, स्वतंत्रता और भाईचारा समाज के नैतिक मूल्य हैं। ये मूल्य ही लोकतंत्र का आधार है। यदि समाज में ये मूल्य नहीं हैं तो इसका मतलब है कि वहाँ लोकतंत्र नहीं है।

देश या दुनिया के व्यापक हित को ध्यान में रखकर राजनैतिक स्तर पर हो रहे, भ्रष्टाचार और नैतिक पतन के सिलसिले को रोका जाना चाहिए, क्योंकि राजनैतिक जीवन मूल्यों का पतन विभिन्न प्रकार के जीवन मूल्यों को प्रभावित करता है। इन प्रवृत्तियों के खिलाफ भी दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन कविताओं ने अपना स्वर मुखर किया है। जहाँ एक तरफ राजनैतिक प्रगति, सुख, समृद्धि सवर्ण और श्वेत लोगों के लिए है। वहीं दूसरी तरफ फटे चिथड़े, गड्ढों में धँसे, दरिद्रता, अभाव और विपन्नता दलित और अफ्रो-अमेरिकन लोगों के लिए बन गया है। राजनेता केवल अपने राज के लिए राजनीति करते हैं, समाज बदलने के लिए नहीं। इसलिए दलित और अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों को इस अंधेरगर्दी से स्वयं के लिए राह निकालनी पड़ेगी।

षष्ठ अध्याय

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ : धर्म एवं संस्कृति

6.0. प्रस्तावना

धर्म एक ऐसा आधार है, जो हमें सत्य से परिचित कराता है। मनुष्य के मन को स्वच्छ करता है। धर्म हमें एक दूसरे के प्रति प्रेम व शांति का संदेश देता है, धर्म हमें वीरता, सहिष्णुता, आज्ञाकारिता, साहस, अहिंसा आदि की शिक्षा देता है। यह पंक्तियाँ बस कहने के लिए लिखी या बोली जाती है। हमारे समाज में इस पंक्तियों का अर्थ कुछ और ही है। धर्म अहिंसा का ज्ञान नहीं, बल्कि हिंसा का पाठ पढ़ाता है।

दुनिया में ऐसा कोई भी देश नहीं है, जहाँ पर किसी न किसी रूप में, किसी न किसी धर्म की सत्ता कायम न रही हो। ठीक उसी तरह प्रत्येक देश की अपनी सांस्कृतिक अस्मिता की स्वतंत्र पहचाने सदियों से अस्तित्व में है। किसी भी एक देश में अनेक तरह की संस्कृतियाँ निवास करती हैं। मैं यहाँ धर्म या संस्कृति की परिभाषा प्रस्तुत करना नहीं चाहती हूँ, क्योंकि धर्म एवं संस्कृति की असली परिभाषा मनुष्य की सोच, विचार और व्यवहार से नज़र आता है। भारत और अमेरिका के लोगों ने पता नहीं किस संस्कृति का पालन करते हुए, दलित और अफ्रो-अमेरिकन लोगों के साथ पक्षपात किया। जिसके चलते वह आज अपनी गाथा सुना रहे हैं। इस अध्याय में धर्म एवं संस्कृति से जुड़े कई मुद्दों पर दृष्टि डाली जाएगी। जिसके चलते कई प्रश्न हमारे समक्ष प्रस्तुत होंगे।

6.1. दलित स्त्री कविताओं में धर्म एवं संस्कृति

भारत में स्त्री दास्य के उद्गम का मूल कारण धर्म ही है। स्त्री चाहे सवर्ण हो या अवर्ण, दोनों ही क्षेत्रों में स्त्री की छवि एक ही होती है। शास्त्रकार धर्म के नाम पर युगों-युगों से नारी का

शोषण करते आ रहे हैं। उनकी उन्नति के लिए, शोषण से मुक्ति के लिए जब भी कभी प्रयत्न किए जाते हैं, उन्हें पुरुषों के समान अधिकार देने की बात की जाती है, तो उन्हें यह कहकर चुप करा दिया जाता है कि भारतीय स्त्री तो पूजनीय है- उसे पुरुषों से उच्च स्थान प्राप्त है, किंतु वस्तुस्थिति ठीक इसके विपरीत है। धर्म और संस्कृति के नाम पर अपने साथ हो रहे जुल्मों और अत्याचारों को चुपचाप सहन कर लेने वाली स्त्री को समाज के सामने आदर्श रूप में रखा गया और उसी के अनुसार चलने वाली स्त्री को धर्म परायण एवं पतिव्रता स्त्री माना गया। डॉ. अम्बेडकर का कहना है कि, “मैं अपने हिंदू भाइयों को साफ तौर पर कहना चाहता हूँ कि उन्हें अब थे सारी पुरानी मान्यताएँ छोड़ देनी चाहिए। और इस अच्छा या बुरा कहिए लेकिन अछूत समाज हिंदूस्तान की एक स्वतंत्र इकाई है, इस बात ओ उन्हें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। मैं उन्हें साफ तौर पर कहना चाहता हूँ कि इस बारेमें उन्हें किसी भी प्रकार का संदेह नहीं होना चाहिए।”³⁶⁰

दलित स्त्री कविताओं में खोखले धार्मिक एवं सांस्कृतिक मुद्दों पर दलित कवयित्रियों ने अपनी कलम चलाई है। कई ऐसी बातें हैं जो हमारे देश की धार्मिक मान्यताओं का खंडन करती है। धर्म और धार्मिक ग्रंथों के कारण दलित स्त्रियों के जीवन में विपदा आई है उस का लेखा-जोखा दलित कवयित्रियाँ अपने कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत कर रही हैं।

6.1.1. धार्मिक मान्यताएँ

हिंदू धर्म व्यवस्था के चलते मनुष्य को कई जातियों में बाँट दिया है और दलित का स्थान सबसे निचले पायदान पर है और अगर ठीक से देखा जाए, तो उसमें भी दलित स्त्री सबसे कमजोर और शोषित नज़र आएगी। हिंदू संस्कृति की जीवंतता उसके धर्म ग्रंथों में ही देखने को मिलती है। वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, रामचरितमानस जैसे अन्य दुर्लभ ग्रंथ,

³⁶⁰ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा... खंड 3- सं. एल. जी. मेथ्राम 'विमलकीर्ति' पृ-367

हिंदू जीवन की विविधता को नहीं, बल्कि उसकी सच्चाई को प्रकट करते हैं। इन सभी ग्रंथों में स्त्रियों की क्या छवि प्रस्तुत की गई है, यह हम सब जानते ही हैं। वैदिक काल से लेकर अब तक स्त्रियों की स्थिति में कुछ खास बदलाव नज़र नहीं आ रहे हैं। फिर भी दलित कवयित्री अपने मन में आग लिए कविता की रचना करती है।

डॉ.अम्बेडकर का कहना है कि, “धर्म हर व्यक्ति के जीवन में गहराई तक फैली हुई संस्था है। इससे उसका प्रभाव पसंद-नापसंद पर होना है। इस तरह की पसंद-नापसंद या उसके प्रभावसे किसी संस्था को नष्ट नहीं किया जा सकता। इसलिए सामाजिक बातें राजनीति हों रूकावट न बनें और मुट्ठीभर लोगों की भलाई में बहुसंख्यक लोगों को समाप्त करने के लिए ऐसा राजनीतिक संविधान बनाया जाना चाहिए।”³⁶¹ कवयित्री सुशीला टाकभौर अपनी कविता ‘मैंने कुछ शब्द जोड़े हैं’ में कहती हैं-

“ये शब्द ललनाओं के हैं
लक्ष्मी नहीं, दुर्गा नहीं
सीता नहीं, गीता नहीं
इस सबसे हटकर बात है ये,
नव जागृति और क्रांति की।”³⁶²

कुसुम मेघवाल ‘धर्मशास्त्रों की पाखंडी शिक्षा को नकारना होगा’ नामक लेख में भारतीय स्त्री की दशा को व्यक्त करती हुई कहती हैं “रामायण की सीता हो या महाभारत की द्रौपदी, दोनों ही धार्मिक ग्रंथ नारी को दोगले दर्जे की नागरिक घोषित करते हैं। रामायण का मर्यादा पुरुषोत्तम राम पहले सीता की अग्नि परीक्षा लेता है और उस अग्नि परीक्षा में खरी सिद्ध हो जाने के बाद भी उसे गर्भावस्था में जंगल छोड़वा देता है। ऐसे व्यक्ति पर अनेकानेक

³⁶¹ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा... खंड 4- सं. एल.जी.मेश्राम ‘विमलकीर्ति’ पृ-147

³⁶² यह तुम भी जानो; तुमने उसे कब पहचाना- सुशीला टाकभौर, पृ. 67

रामायणों लिखना और आज के वैज्ञानिक युग में भी उसकी कथाएँ करवाना स्त्री में दास्य भाव पनपाते रहने का षड्यंत्र ही कहा जा सकता है और यह सब धर्म के नाम पर चलता रहा है।”³⁶³

मनुवाद ने नारी को नरक के ऐसे गर्त में धकेल दिया है, जिससे उबरने के लिए वह सदियों से संघर्ष कर रही है। उसका यह संघर्ष तथागत बुद्ध के समय भी चल रहा था, आज भी चल रहा है और भविष्य में भी चलता रहेगा। मनुवादी व्यवस्था ने शूद्र के साथ-साथ स्त्री को समस्त मानव अधिकारों से वंचित कर दिया। डॉ.अम्बेडकर का कहना है कि “हिंदू धर्म मेरी बुद्धि को जंचता नहीं, मेरे स्वाभिमान को भाता नहीं, क्योंकि मनुष्य धर्म के लिए नहीं है, बल्कि धर्म मनुष्य के लिए है। जो धर्म तुम्हारी मनुष्यता का मूल्य नहीं मानता, उस धर्म में तुम क्यों रहते हो? जो धर्म तुम्हें पानी तक नहीं पीने देता, उस धर्म में तुम क्यों रहते हो? जो धर्म तुम्हें शिक्षा ग्रहण नहीं करने देता उस धर्म में तुम क्यों रहते हो? जो धर्म तुम्हारी नौकरी में बाधक बनता है, उस धर्म में तुम क्यों रहते हो?”³⁶⁴

हमें यहाँ यह समझने की जरूरत है कि, धर्म को मनुष्य ने बनाया है, न कि मनुष्य को धर्म ने। यह बात हिंदू धर्म व्यवस्था भूल चुकी है, यही कारण है कि धर्म के नाम पर जातियों का जन्म हुआ। सावित्रीबाई फुले की कविताओं में भी धार्मिक मान्यताओं पर कई प्रश्न चिह्न खड़े होते हैं। उनकी कविताओं का सम्पादन हिंदी में अनिता भारती ने किया है। ‘मनु कहे कुटिल’ कविता में कहती हैं कि,

“हल जो चलावे, खेती जो करें

वे मूर्ख होते हैं- ऐसा कहे मनु।

मत करो खेती, कहे मनुस्मृति

³⁶³ अम्बेडकरवादी स्त्री चिंतन- तेज सिंह, पृ. 44-45

³⁶⁴ अम्बेडकर: व्यक्तित्व एवं कृतित्व, समता साहित्य सदन- डॉ.डी.आर.जाटव, पृ.219

ऐसी धर्माज्ञा करती ब्राह्मणों को।

शूद्रों का जन्म

पूर्वजन्मों के पापों का फल है

उन्हें इस जन्म में चुकाते सभी शूद्र।”³⁶⁵

कविता की पंक्तियों में कवयित्री यह बताना चाहती है कि मनुस्मृति, जो हिंदुओं का एक मान्य ग्रंथ है। उसमें दलित पुरुष एवं स्त्री के लिए कितने निम्न स्तर के धिनौने विचार दिए गए हैं। जिस कारण मनुष्य-मनुष्य में अंतर करने लगा। एक ब्राह्मण, तो दूसरा शूद्र बन गया। इतना ही नहीं स्त्रियों के प्रति मनुवादी दृष्टिकोण को समझाने के लिए एक उद्धरण प्रस्तुत कर रही हूँ-

अस्वतंत्रयाः स्त्रियः कार्या पुरुषः स्वैदिवी निशमा।

विष्येषुः च सज्जंत्यः संस्थप्या आत्मनौ वशै॥ 9-2

अर्थात् पुरुषों को अपनी स्त्रियों को कभी भी स्वतंत्रता नहीं देनी चाहिए। स्त्रियाँ रूपरसादि में आसक्त हो तो भी उन्हें अपने वश में रखना चाहिए। डॉ.अम्बेडकर का कहना है कि “बुद्ध ने राजनीति, समाज, राज्यशासन, धर्म और बुद्धिवाद में जिस क्रांति की नींव रखी थी, वह क्रांति आगे असफल रही और धर्म तथा राजनीति को मिलाकर, चातुर्वर्ण्य को केवल सामाजिक प्रथा के रूप में नहीं बल्कि एक राजनीतिक दर्शन का रूप देने के लिए मनुस्मृति लिखी गई।”³⁶⁶

यह तो केवल एक उद्धरण है। मनुस्मृति का स्त्री को दास्य बनाने में सबसे बड़ा हाथ है। धर्म के नाम पर युगों-युगों से स्त्री का शोषण किया जाता रहा है। उसकी उन्नति के लिए, शोषण से मुक्ति के लिए जब भी कभी प्रयत्न किए जाते हैं, उन्हें पुरुषों के समान अधिकार देने

³⁶⁵ सावित्रीबाई फुले की कविताएँ- सं. अनिता भारती, पृ. 63

³⁶⁶ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा... खंड 3- सं. एल. जी. मेथ्राम 'विमलकीर्ति', पृ-371

की बात की जाती है, तो उन्हें यह कहकर चुप करा दिया जाता है कि, भारतीय नारी तो पूजनीय है- उसे तो पुरुषों से उच्च स्थान प्राप्त है, किंतु वस्तुस्थिति ठीक इसके विपरीत है। कवयित्री रजनी तिलक 'तुम्हारी आस्थाओं ने' कविता में कहती हैं-

“तुम्हारी धार्मिक आस्थाओं ने

मनुष्यता को पंगु बना दिया

रास्ते कांटों से भर दिये।”³⁶⁷

धर्म ने मनुष्य को अपाहिज बन कर छोड़ दिया है। उसके जीवन में धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर पथ-पथ पर अनेक मुसीबतें आ जाती हैं। वह चाह कर भी इससे अपना पीछा नहीं छुटा पा रहा है। धर्म और व्यवस्था के नाम पर अपने साथ हो रहे जुल्मों और अत्याचारों को चुपचाप सहन कर लेने वाली स्त्री को समाज के सामने आदर्श रूप में रखा गया और उसी के अनुसार चलने वाली को धर्म परायण एवं पतिव्रता स्त्री माना गया, किंतु अपने ज्ञानार्जन एवं स्वतंत्रता जैसे मानवाधिकारों के साथ चलने वाली नारियों को समाज ने सम्मान नहीं दिया। डॉ. अम्बेडकर का कहना है कि “मुझे यह बड़े दुख के साथ कहना पड़ता है कि, अछूत जाति के लोग गाँव-देहातों में सम्मान का जीवन नहीं जी सकते। इसलिए हजारों साल से हम पर जो अन्याय हो रहा है उसे अब आगे बर्दाश्त करने की कोई जरूरत नहीं है।”³⁶⁸

“धर्म के ठेकेदारों!

ईश्वर के नाम पर

झूठ, फरेब, पाखण्ड रचते हो,

क्या यही है तुम्हारा ईश्वर?

³⁶⁷ हवा सी बेचैन युवतियाँ- रजनी तिलक, पृ. 41

³⁶⁸ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा... खंड 3- सं. एल. जी. मेश्राम 'विमलकीर्ति', पृ-348

धर्म के नाम पर
अपना स्वार्थ देखने वालों
अधर्म करते हो,

क्या यही है तुम्हारे ईश्वर का संदेश?”³⁶⁹

‘हम जान गये हैं’ कविता में यह समझाया जा रहा है कि, जो मनुष्य पत्थरों में ईश्वर को तलाश करते हैं, उन्हें इंसानों में इंसान क्यों नज़र आते हैं? नासिक के कालाराम मंदिर प्रवेश का घटना का भी उदाहरण देकर कवयित्री यह बताना चाह रही है कि दलितों को इंसान ही समझा नहीं जा रहा है। दलित, हिंदू धर्म के पुजारियों के लिए जानवर से भी निम्न माना जाता है। डॉ. अम्बेडकर का मानना है कि “हिंदू धर्म व्यवस्था इन तीनों मतों से अलग है। हिंदू धर्म में व्यक्ति का स्थान नगण्य है क्योंकि हिंदू धर्म की समाज-व्यवस्था, वर्ण-जाति आधारित है। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से क्या व्यवहार हो, उसका निर्देश नहीं है। एक वर्ण का दूसरे वर्ण के साथ सम्बंध और व्यवहार कहाँ तक, कैसा हो, का हिंदू धर्म में निर्देश कठोरता का है। व्यक्ति विकास के लिए समाज की आवश्यकता होने पर भी हिंदू धर्म ने समाज की अवधारणा और आवश्यकता पर चुप्पी साध ली है। व्यक्ति-जीवन की स्वतंत्रता और प्रगति समाजांतर्गत ही संभव है, इसलिए प्रगत राष्ट्रों में कोई व्यक्ति दूसरे को गुलाम नहीं बना सकता। जिन धर्मों में व्यक्ति स्वतंत्रता को प्राधान्य नहीं है, ऐसे धर्म मुझे स्वीकार्य नहीं।”³⁷⁰

6.1.2. अंधविश्वास

अंधविश्वास एक ऐसी बीमारी है, जो आम-तौर पर नज़र तो नहीं आती है, परंतु इसके चलते पढ़े-लिखे मनुष्य भी ऐसा काम या ऐसा कुछ बोल जाते हैं, जो हमारा सोच से परे होता है। भारत एक ऐसा देश है, जहाँ अंधविश्वास सदियों से पनप रहा है और धीरे-धीरे

³⁶⁹ स्वाति बूंद और खारे मोती; हमारे हिस्से का सुरज- सुशीला टाकभौरे, पृ. 159-160

³⁷⁰ दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर- विमल थोरात पृ. 103

अपनी शाखा बढ़ा रहा है। हजारों वर्षों से चली आ रही हिंदू धर्म की परम्पराओं के चलते ही विश्वास और अंधविश्वास का जन्म हुआ है। जो हमें वर्णव्यवस्था के रूप में भी देखने को मिलता है। डॉ. अम्बेडकर का कहना है कि “हम लोगों ने धार्मिक दृष्टि से जितनी क्रांति की है, उतनी क्रांति किसी अन्य समाज ने नहीं की है, इस बात को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। इस धर्म (हिंदू धर्म) में न्याय, नीति, समानता, भाईचारा आदि बातों का कोई महत्व नहीं है। इस धर्म में मनुष्य को जलानेवाली बातें ही अधिक हैं।”³⁷¹

हमारे समाज में कई अंधविश्वास प्रचलित हैं। उनमें से एक जो दलित स्त्रियों के लिए प्रयोग किया जाता है वह ‘डायन’ शब्द है। कवयित्री कुसुम मेघवाल अपनी कविता ‘कैसे सहती हो नारी तुम इतनी पीड़ा’ में कहती हैं-

“डायन कहकर मारा है तुझे
बीच बाजार में
घसीटा है तुझे नंगा करके
पीकर शराबा
बेजुबान जानवरों की तरह
मारा है तुझे
लोहे की गरम सलाखों से
दागी है तेरी हथेलियाँ
अग्नि परीक्षा के नाम पर
लगा दी है अमिट छाप तेरे मस्तक पर
जेब कतरी होने की।”³⁷²

³⁷¹ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा... खंड 3 - सं. एल.जी.मेश्राम ‘विमलकीर्ति’, पृ - 322

³⁷² समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन- सं. रजनी तिलक, पृ. 201

यह कविता पूरी तरह से स्त्री प्रताड़ना, दमन, शोषण, अपमान, उपेक्षा, धार्मिक-शोषण, जाति-शोषण की परतों को उघाड़ती है। स्त्री को 'डायन' कहकर अपमानित करना उसके विरुद्ध एक अंधविश्वास की भावना को बढ़ावा देता है। कवयित्री कुसुम मेघवाल राजस्थान की एकमात्र दलित स्त्री कवयित्री और नेता हैं, जिन्होंने अपने जीवन में अनेक उपलब्धियाँ हासिल कीं। "राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित, प्रतिष्ठित साहित्यकार एवं परिवर्तन प्रभाकर की सम्पादक डॉ.कुसुम मेघवाल के अनुसार सदियों से नरक के गर्त में गिरी नारी को नरक से निकालने व गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराकर, खुले वातावरण में सांस लेने व उसकी प्रगति के मार्ग को प्रशस्त करने में तथा उसके लिए मानवता, समता, बंधुता, करुणा और ज्ञान के मार्ग खोलने में बौद्ध धर्म ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।"³⁷³

कवयित्री अनिता भारती ने भी अंधविश्वास जैसी बातों पर अपनी कलम चलाई है। उन्होंने समाज में चल रही परम्परा के नाम पर स्त्री शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाई है। कविता 'हमने देखा' में स्त्री को कई नामों से बुलाया जा रहा है। जैसे- डायन, देवदासी, बेड़िया, बांछड़ा आदि जो हमारे समाज के उस यथार्थ को व्यक्त करता है, जो स्त्रियों को एक तरफ देवी बोल कर, उसकी मूर्ति की पूजा करता है और दूसरी तरफ इन नामों से उसे पुकारकर, समाज में उसे डायन होने की उपाधि देता है। "भारत में धर्म के कई स्थित्यंतर हुए हैं। धर्म के बारे में लोगों की यह समझ बन गई थी कि, धर्म मनुष्य की आत्मा को मुक्ति दिलाने का एक साधन है। शताब्दियाँ बीतने के बाद धार्मिक दृष्टि, उद्देश्य और साधना की वजह से मूल कल्पना में बुनियादी परिवर्तन हुआ और धर्म एक ऐसा साधन बन गया जो नैतिक मूल्यों से आपस में सम्मान की भावना पैदा कर विश्वबंधुत्व निर्माण करता है।"³⁷⁴

“जब इस देश की

³⁷³ दलित महिलाएँ- सं. ज्ञानेंद्र रावत, पृ. 111

³⁷⁴ और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा... खंड 5- सं. एल. जी. मेथ्राम 'विमलकीर्ति', पृ-164

दलित गरीब आदिवासी
बच्चियों का बचपन
डायन, देवदासी, बेड़िया और बांछड़ा
गैला ढोने और
देह की मंडी में
परम्पराओं के नाम पर
धकेल दिया जाता है।³⁷⁵

मनुस्मृति पर आधारित समाज व्यवस्था ने ही हिंदू समाज एवं नारी को पतन के गर्त में डुबोया, यह सर्वविदित है। आज स्त्री की जो दुर्गति हो रही है, इसकी जड़ें मनुस्मृति में स्थित हैं। सती-प्रथा, बाल विवाह जैसी प्रथाओं को ही शास्त्र सम्मत बनाना, कम उम्र की कन्या से बूढ़े के विवाह को जायज ठहराना, उसे आजीवन पर्दे में रखना, देवदासी प्रथा को शास्त्र सम्मत बनाना, नारी शिक्षा को पाप बताना, लड़कियों को दहेज की बलि चढ़ाना, पिशाच एवं राक्षस विवाहों को शास्त्र सम्मत मान्यता देना आदि शिक्षाओं का आधार हमारे समाज के पारंपरिक अंधविश्वास है।

कवयित्री रजनी तिलक अपनी कविता 'खेला जाता है' में कहती हैं कि,

“सीताओं को
आज भी स्टोव से जलाया जाता है
मासूम कलियों को खिलने से पहले
बचपन में ही लूटा जाता है
कोमल, मधुर मुस्कान को
वासना की आग से सींचा जाता है

³⁷⁵ रूखसाना का घर- अनिता भारती, पृ. 43

रामायण हो, महाभारत

या आधुनिक भारत

स्त्री-जजबात से खेला जाता है।”³⁷⁶

पुरुष चाहे स्वयं को कितना ही आधुनिक कह ले, किंतु स्त्री की नैतिकता के प्रति उसके विचार दकियानूसी ही रहेंगे। उसके लिए स्त्री की यौन शुचिता का आधार, उसका मापदंड रामायण की सीता ही रहेगी। सीता की पवित्रता के लिए उसकी दो-दो बार अग्नि परीक्षा ली गई, किंतु राम की एक भी बार नहीं की गई। “महिलाओं को गुलाम बनाने के लिए इन लोगों ने रामायण, महाभारत, गीता, मनुस्मृति जैसे ग्रंथ लिखे? उनको धार्मिक मान्यता दीं। उन्हें पवित्र ग्रंथों के रूप में प्रचारित किया। उनमें नारी पात्रों को गुलामों की तरह रहने को विवश किया। यौन शुचिता उनके ऊपर ही थोपी और उन्हीं नारी पात्रों को आदर्श के रूप में समाज के सामने रखा। इन ग्रंथों को प्रचारित करके भी वे चुप बैठे। उन्हें कानून में तबदील कर दिया।”³⁷⁷

डॉ.अम्बेडकर ने ‘मनुस्मृति’ जैसी प्रतिक्रांति की प्रतीक विधि-संहिता के विरुद्ध जो हिंदू कोड बिल बनाया था। वह उनके जीवन का सबसे बड़ा क्रांतिकारी कदम था। जो ‘मनुस्मृति’ के स्त्री विरोधी नियम-कानूनों का विध्वंस करता था। इसलिए डॉ.अम्बेडकर को कहना पड़ा था कि मुझे भारत का संविधान बनाने में इतनी प्रसन्नता नहीं, जितनी हिंदू कोड को पारित कराने पर होगी। क्योंकि इससे समूचा स्त्री समुदाय लाभांवित होगा और स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार मिल जाएंगे। डॉ.अम्बेडकर ने लिखा था “स्वाधीन भारत में स्त्री को भी पुरुषों की भाँति समान अधिकार चाहिए। हिंदू कोड उस दिशा की ओर एक कदम है। भारत की नारियाँ इस कोड के पारित हो जाने पर, अपने वैध तथा चिरवंचित अधिकार प्राप्त कर सकेंगी। सारे सभ्य संसार के समाजों में स्त्रियों की ऐसी दुर्गति नहीं, जैसी भारत की नारी

³⁷⁶ पदचाप- रजनी तिलक, पृ. 42

³⁷⁷ अम्बेडकरवादी स्त्री-चिंतन – तेज सिंह, पृ. 47

की है। जंगली जातियों में भी स्त्रियों को भारत की नारियों से अधिक अधिकार प्राप्त हैं। भारत की स्वाधीनता प्राप्ति में नारियों ने भी पुरुषों की भाँति संघर्ष किया है।”³⁷⁸

दलित स्त्री की छवि और उस पर धार्मिक अंधविश्वासों से उपजी दलित स्त्री की सम्पत्ति या सामाजिक सम्मान के प्रति घृणा के रूप उसे डायन घोषित करके मार देने के विरुद्ध साजिश पर कवयित्री नीरा परमार अपनी कविता में लिखती हैं-

“डायन

आक्रोश में गुर्राते हैं सास-ससुर देवर-जेठ

गुर्राता है गाँव

‘मारो’ मार डालो

पति को खा जाने वाली हत्यारिन

पापिन यह

छीन लो घर-दुआर खेत-पधार

खाली न जाए वार

कुचर डालो वजूद।”³⁷⁹

कविता में कवयित्री दलित स्त्री को किस प्रकार डायन मानने वाले लोगों के शब्दों को कविता में व्यक्त कर रही है। पति की हत्या का दोष केवल पत्नी के सर पर ही डाला जाता है। चाहे पति का निधन किस वजह से क्यों न हो? उस वजह को न देख कर केवल पत्नी को ही दोषी माना जाता है और बिना किसी कारण से न जाने स्त्री को कितने जूल्मों का शिकार होना पड़ता है। यह हमारी उस खोखली परम्परा के तहफ इशारा करती है जो धीरे-धीरे हमारे अस्तित्व को दीमक की तरह खाती जा रही है।

³⁷⁸ अम्बेडकरवादी स्त्री-चिंतन- तेज सिंह, पृ.24

³⁷⁹ समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन- सं.रजनीतिलक, पृ.98-99

6.1.3. खोखली संस्कृति

‘हिंदू महिलाओं के जीवन में धर्म का महत्त्व’ नामक पुस्तक में भारतीय संस्कृति का काफी बोलबाला किया गया है। पूरी पुस्तक में केवल हिंदू धर्म और हिंदू संस्कृति को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। इस पुस्तक के आधार पर हिंदू संस्कृति की कई विशेषताएँ हैं और उन में से एक विशेषता ‘वर्णभेद’ की है। अर्थात् ‘वर्णभेद’ जिसके कारण दलित समाज का जन्म हुआ है वह एक महत्वपूर्ण विशेषता हिंदू संस्कृति की कैसे हो सकती है? उसमें लिखा गया है कि, “हिंदू संस्कृति में श्रेष्ठता प्रारम्भ से ही विद्यमान रही है। हिंदू संस्कृति में आदर्शवाद का महत्वपूर्ण स्थान है। जीवन के सारे पक्षों में आदर्श सम्पट ही हिंदू जीवन दर्शन है। हिंदू संस्कृति में मित्र के साथ शत्रु के लिए भी आदर्शवादिता हैं।”³⁸⁰

इन पक्तियों के आधार पर यह समझा जा सकता है कि, हिंदू संस्कृति कितनी श्रेष्ठ या महान है और शत्रुओं के साथ भी आदर्शवादी व्यवहार करता है। परंतु यह व्यवहार भारत में दलितों के साथ क्यों नहीं हुआ? इसी प्रश्न को मन में लिए कवयित्री सुशीला टाकभौरै पूछती हैं-

“आदम रूप होकर

आदम भाषा में पूछना चाहते हैं सवाल-

मानव सभ्यता-संस्कृति का इतिहास क्या है?

भारतीय संस्कृति का आधार क्या है?

क्यों किया अब तक

हम पर अत्याचार?”³⁸¹

³⁸⁰ हिंदू महिलाओं के जीवन में भी धर्म का महत्त्व- डॉ. प्रीति मिश्रा, पृ. 14

³⁸¹ यह तुम भी जानो; तुमने उसे कब पहचान- सुशीला टाकभौरै-पृ. 87

सम्पूर्ण दलित साहित्य में धर्म के साथ-साथ संस्कृति का प्रश्न बहुत ही आधारभूत प्रश्न है। डॉ.अम्बेडकर भारतीय संस्कृति के सम्बंध में स्पष्ट थे और राष्ट्रीयता की भावना और विचारों से आत-प्रोत थे। उन्होंने अपना मत प्रकट किया था, “निजी तौर पर मैं खुल्लमखुल्ला कहना चाहता हूँ कि, मैं नहीं मानता कि इस देश में किसी विशेष संस्कृति के लिए कोई जगह है, चाहे वह हिंदू संस्कृति हो, मुस्लिम संस्कृति या कन्नड़ संस्कृति अथवा गुजराती संस्कृति। ये ऐसी चीजें हैं, जिन्हें हम नकार नहीं सकते, पर उनको वरदान नहीं मानना चाहिए, जो हमारी निष्ठा को डिगाती हैं और हमें अपने लक्ष्य से दूर ले जाती हैं। यह लक्ष्य है, एक ऐसी भावना को विकसित करना कि हम सब भारतीय हैं।”³⁸²

भारत में दो प्रकार की संस्कृतियाँ प्रचलन में हैं- ‘ब्राह्मणी संस्कृति’ और ‘श्रमण संस्कृति’। स्त्रियों को नियंत्रण में रखने की संस्कृति ब्राह्मणी संस्कृति का प्रतीक है, श्रमण संस्कृति का नहीं। श्रमण संस्कृति भारत के मूल निवासियों की संस्कृति है। जहाँ नारी को हर क्षेत्र में समानता के अवसर प्राप्त हैं। इसलिए श्रमण संस्कृति के दलित पुरुषों को दलित स्त्रियों को अपने नियंत्रण में रखने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। जो दलित पुरुष स्त्रियों को अपने नियंत्रण में रखना चाहते हैं। उन पर जोर-जुल्म करना चाहते हैं, उनके साथ मूक पशुओं जैसा व्यवहार करते हैं। वे ब्राह्मणवाद के विरोध में कितना ही लिखें या मंचों पर लम्बे-लम्बे भाषण झाड़ जाएँ, किंतु ऐसे ही दलित पुरुष ब्राह्मणवाद के पोषक हैं। कवयित्री पूनम तुषामड़ अपनी ‘नदी’ नामक कविता में कहती हैं-

“बांध जब मुझ पर बने

तो दामिनी हूँ

जो करोगे प्रेम

तो मैं रागिनी हूँ

³⁸² डॉ.अम्बेडकर- सम्पूर्ण वाग्यमय, खण्ड-3, पृ.3

झूठी मर्यादाओं में
न मैं बँधूगी
परम्परा और संस्कृति के नाम पर न
मैं दबूँगी।”³⁸³

नदी की परिभाषा और महत्त्व हम सब जानते हैं। कविता में ‘नदी’ को प्रतीक के रूप में प्रयोग कर कवयित्री स्त्री के जीवन के विभिन्न पहलूओं को दर्शा रही है। यह कविता स्त्री शोषण और संघर्ष की कथा सुना रही है। परम्परा और संस्कृति के नाम पर दलित स्त्रियों के साथ जो शोषण व्यवस्था चली आ रही है अब वह बंध कर नहीं रहना चाहती है। जैसे, वह अपना घर-परिवार हो या समाज। उसे भी संस्कृति के नाम पर बंधी बेड़ियों को तोड़ कर एक स्वतंत्र जीवन जीने का पूरा अधिकार है। डॉ. अम्बेडकर ने कहा था “हमारे जीवन, कर्तव्य और संस्कृति की ओर हमारा ध्यान नहीं है। अंतुर्मूख होकर विचार करने से हमारे सामने वह भयावह स्थिति स्पष्ट हो जाएगी कि, हमारे जीवन-मूल्य और सांस्कृतिक मूल्यों को बचाने के लिए दलित साहित्यकारों को जागरूक और प्रयत्नशील हो जाना चाहिए। तुम्हारे उपन्यास, कथाओं की सीता, लक्ष्मण रेखा पार करके आगे जा चुकी है। दुर्योधन के दरबार में द्रौपदी का वस्त्र हरण हो रहा है। शकुंतला को दुष्यंत अपना सही परिचय नहीं दे रहा है, इसलिए शकुंतला को वनवास हो रहा है। ऐसी स्थिति में साहित्यकारों का मैं आह्वान करता हूँ कि, वे विभिन्न साहित्यिक विधाओं के द्वारा उदात्त जीवन-मूल्यों और सांस्कृतिक मूल्यों को रेखांकित करें।”³⁸⁴ कवयित्री रजनी तिलक अपनी कविता ‘दलित तुझे बदलना होगा’ में कहती हैं कि,

“हिंदू संस्कृति के लम्बे दाँत,
हर क्षण तेरा लहू पी रहे हैं,
हिंदूत्व की पाशविक प्रवृत्ति पर,

³⁸³ समकालीन-भारतीय दलित महिला लेखन, खण्ड-1- सं. रजनी तिलक, पृ. 52

³⁸⁴ डॉ. भीमराव अम्बेडकर- दलित साहित्य सम्मेलन पत्रिका, 17 जनवरी, 1976

एक दिन हल्ला बोलना होगा।”³⁸⁵

यह कविता पूरी की पूरी प्रेरणा और संघर्ष से भरी हुई है। कवयित्री दलित समाज को अब अपने हक की लड़ाई लड़ने और स्वयं को बदलकर, समाज में अपनी पहचान बनाने की प्रेरणा दे रही है। भारतीय संस्कृति और व्यवस्था के खिलाफ आवाज़ उठाने की चुनौती दे रही है। हिंदू सामाजिक व्यवस्था से जो संस्कृति उत्पन्न हुई, उससे देश को कई भागों में बाँट दिया। यह संस्कृति एकता की बात जरूर करती है, परंतु एकता की परिभाषा को भी सार्थक नहीं कर पाई। भारतीय संस्कृति के बारे में बताते हुए, महापंडित राहुल सांकृत्यायन कहते हैं “जिस अपने इतिहास और संस्कृति का अभिमान हम करते हैं, वह हमें एक साधारण मनुष्य जैसा जीवन भी बिताने नहीं देना चाहती। खान-पान, रहन-सहन, शादी-ब्याह, स्वास्थ्य और भाईचारा सभी में वह हमें दुनिया की नज़र में जलील बनाना चाहती है। हमारे लिये सबसे अच्छा यही है कि, अपने इतिहास को फाड़कर फेंक दें और संस्कृति से अपने को वंचित समझकर दुनिया की और जातियों से फिर क, ख, ग, पढ़ना सीखें।”³⁸⁶

आम शब्दों में कहा जाए तो, संस्कृति हमारे रीति-रिवाज, व्यवहार, विचार और सोच से भी जुड़ी हुई है। यही कारण है कि, भारतीय संस्कृति को महान संस्कृति मानने का दावा करने वाले व्यक्ति की मानसिकता कितने निम्न स्तर की होगी, ये हम सब जानते हैं। जिस संस्कृति ने कभी भी दलितों को मनुष्य का दर्जा ही नहीं दिया और ना ही समझा। कवयित्री रजनी तिलक इसी संस्कृति का एक और उदाहरण प्रस्तुत करती हुई कहती हैं-

“सदियों से औरत जात,

धन, सम्पत्ति, साधनों से वंचित

संस्कृति का ढोती

³⁸⁵ पदचाप- रजनी तिलक, पृ. 35

³⁸⁶ महापंडित राहुल सांकृत्यायन- तुम्हारी क्षय, पृ. 06

ढूढ़ रही एक ठूँठ, जिसे

वह अपना कह सके।”³⁸⁷

‘चेरी’ शीर्षक कविता में उस स्त्री का वजूद ढूँढ़ा जा रहा है, जो हमारी संस्कृति की बलि चढ़ गई है। दलित समाज जब अपनी समस्या का समाधान वहाँ ढूँढ़ता है जहाँ सम्भव नहीं है। फिर भी उसी अंधेरी राह पर अपनी संतति को उतार देता है। विशेषकर सांस्कृतिक मूल्यों की निर्वाहिका बेटियों के लिए वह समस्याओं का सामना करने के लायक बनाने की अपेक्षा धार्मिक अंधविश्वासों के उपक्रम में फंसा देता है।

6.1.4. मिथक का प्रयोग

‘मिथक’ शब्द का अर्थ है ‘मुहँ से निकला हुआ’। अर्थात् वह बातें जो सुनी-सुनाई जाती है ‘मौखिक कथा’ की तरह। आम शब्दों में कहा जाए तो मिथक का सम्बंध आदिम लोक मानस से है। “मिथक एक कथा है, जिसमें सृष्टि और उसके उपकरणों के उद्भव, उसकी गतिक्रिया और उस पर नियंत्रण, उसके अबूझ व्यापार, मूलभूत मानवीय क्रियाओं और समस्याओं, प्रतिरूपों और तत्त्वों, जीवन-मरण आदि विहंगम विषयों को लेकर आरम्भ कालीन धारणाएँ, चिंताएँ, विश्वास और तत्सम्बन्धी कर्मकांड को अभिव्यक्ति मिली है।”³⁸⁸

ऐसा भी माना गया है कि जितने मिथक हैं सब परिकल्पना पर आधारित हैं। फिर भी यह मूल्य आधारित परिकल्पना थी जिसका उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था को मजबूत करना था। प्राचीन मिथकों की खासियत यही थी कि वह मूल्यहीन और आदर्शविहीन नहीं थे। मिथकों का जन्म समाज व्यवस्था को कायम रखने के लिए हुआ। मिथक लोक विश्वास में जन्मते हैं। पुरातनकाल में स्थापित किये गये, धार्मिक मिथकों का मंतव्य स्वर्ग तथा नरक को लोभ, भय

³⁸⁷ पदचाप- रजनी तिलक, पृ.9

³⁸⁸ हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली- डॉ. अमरनाथ, पृ.282

दिखाकर लोगों को विसंगतियों से दूर रखना था। कवयित्री सुशीला टाकभौरे 'वाल्मीकि' कविता में कहती हैं-

“रामायण रचयिता, संस्कृत काव्य पंडित
ब्राह्मण वाल्मीकि के तथाकथित शिष्य
नहीं सोच पाये अपनी स्थिति पर!
शम्बूक आज भी मारे जा रहे हैं
चल रही हैं आज भी झूठी कथाएँ
धूर्त ढोंगी लोग आज भी श्रेष्ठ कहला रहे हैं
और ये? दलितों में पद दलित
अपनी स्थिति से अनभिज्ञ”³⁸⁹

दलितों की दास्तां समकालीन समाज से नहीं, बल्कि वैदिक काल से ही निम्न वर्ग के लोगों के साथ ऐसा होता ही आ रहा है। इसका उदाहरण हम महाभारत और रामायण ऐसे हिंदू संस्कृति के दो महाकाव्य में देख सकते हैं। जहाँ धर्म के नाम पर मनुष्य में भेदभाव, ऊँच-नीच, शोषण, अत्याचार इन ग्रंथों में दिखाई देता है। डॉ.सरजूप्रसाद मिश्र ने ‘यह तुम भी जानो; तुमने उसे कब पहचाना’ काव्य संग्रह की भूमिका में कहा है कि, “कवयित्री ने वाल्मीकि, एकलव्य, शम्बूक, बेटाल आदि के मिथकों का भी प्रयोग किया है। उनकी कविता सामाजिक प्रतिबद्धता की कविता है- विशेषतः दलित समाज के संदर्भ में। इक्कीसवीं शताब्दी दस्तक दे रही है, दलित समाज ने अपने आपको पहचाना है, शिक्षा और ज्ञान के प्रकाश को अपनाकर प्रगति करना है, आगे बढ़ना है- यही प्रतिपाद्य है।”³⁹⁰

³⁸⁹ स्वाति बूंद और खारे मोती; हमारे हिस्से का सूरज- सुशीला टाकभौरे, पृ.128-129

³⁹⁰ स्वाति बूंद और खारे मोती; हमारे हिस्से का सूरज- सुशीला टाकभौरे, पृ.08

कवयित्री ने ‘भील एकलव्य’, ‘तुम, ओ बाल्या’, ‘सुनो विक्रम’ जैसी कविता में ऐतिहासिक पात्रों को मिथक के रूप में लेकर कविता की रचना की है। ये सभी पात्र मिथक हैं क्योंकि इनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। बस रामायण और महाभारत जैसे काव्यों के आधार पर हम इन्हें यथार्थ स्वीकार नहीं कर सकते हैं। सुशीला टाकभौरे अपनी पुस्तक ‘भारतीय नारी’ में कहती हैं “वाल्मीकि रामायण आदिकाव्य माना गया है। ‘ईक्ष्वाकुवंश’ के राजा रामचंद्र का वृत्तान्त रामायण में बड़े विस्तार के साथ वर्णित है। इसकी रचना महर्षि वाल्मीकि ने की थी। वाल्मीकि संस्कृत भाषा के आदिकवि माने जाते हैं और उनके काव्य को आदिकाव्य कहा गया है।”³⁹¹

हमारे समाज की यही सबसे बड़ी विडम्बना है कि हम अपनी संस्कृति मान्यता या धार्मिक ग्रंथों पर अंधा विश्वास करते हैं। इसलिए उन ग्रंथों में जो दलितों के साथ तब हुआ, उसे नियम-कानून मानकर आज भी उसका पालन कर रहे हैं।

“रजनी अनुरागी दलित विमर्श का जाना पहचाना नाम है। जिनकी कविताएँ संवेदना के विविध धरातल को छूती हैं। उनका पहला संग्रह ‘बिना किसी भूमिका के’ 2011 में आया जो काफी सराहा गया। रजनी काव्य पंक्ति है ‘यह किसकी तलाश थी मुझे’ कह सकते हैं, अस्मिता की तलाश जो पुरुषवादी वर्चस्व में कहीं दबकर रह गई है। पुरुष वर्चस्व का प्रतिरोध होने लगा है। स्त्रीवादी विमर्श ने ही इस प्रतिरोध को ताकत प्रदान की है।”³⁹²

कवयित्री रजनी अनुरागी अपनी कविता ‘एकलव्य का बयान’ में कहती हैं-

“हमेशा झुकाता रहा हूँ मैं अपना सिर
शताब्दियों से तुम्हारी आज्ञाएँ ढोता हुआ
तुमने जो कहा मैंने वही किया

³⁹¹ भारतीय नारी- सुशीला टाकभौरे, पृ. 25

³⁹² समकालीन परिदृश्य में स्त्रीवादी कविता- ओमलता, पृ. 45

तुम्हारे अहम की तृष्टि में
विगलित करता रहा अपने स्वाभिमान को
करता ही रहा तुम्हे संतुष्ट
मगर कभी संतुष्ट नहीं हुए तुम”³⁹³

गुरू द्रोणाचार्य ने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को श्रेष्ठ बनाने के लिए एकलव्य जैसे महाज्ञानी शिष्य का अंगूठा ही गुरूदक्षिणा के तौर काट दिया था। कवयित्री का उद्देश्य केवल इतना है कि इन ऐतिहासिक पात्रों का उदाहरण देकर उस समय के समाज से आज के समाज को अन्याय के खिलाफ अपनी आवाज़ उठाने से है। एकलव्य ऐसे मिथकों का चरित्र आज के युग में भी देखने को मिलता है। “मिथक किसी भी संस्कृति की समझ और पहचान के लिये उपादेय हो सकते हैं, क्योंकि इनमें ज्ञानेंद्रियों के जटिल और वैविध्यपूर्ण आद्य अनुभव-पुंज निहित है। मानव समाज और उसके संस्थागत विकास रूपों के अध्ययन में मिथकों का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है।”³⁹⁴

“मेरे सारे कर्म
अब तो
मैं हूँ जामा बंधु
सबको मैं जगाऊँगा
मैं मरूँगा न सोचो तुम
अनेकानेक
शंबूक ही शंबूक
पैदा करता जाऊँगा।

³⁹³ समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन, खण्ड-2, सं. रजनी तिलक, पृ. 238

³⁹⁴ हिंदी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली- डॉ. अमरनाथ- पृ. 282

‘छलना’ कविता में वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड के एक प्रसंग में राम द्वारा शूद्र तपस्वी शम्बूक की हत्या की जाती है। रामायण में ऐसे कई उदाहरण हैं जो हमें उस समय के वर्ण-व्यवस्था में चल रही शोषण और अत्याचार की गाथा सुनाते हैं। परंतु कवयित्री यहाँ दलित समाज को रामायण के शम्बूक की तरह नहीं, बल्कि डॉ. अम्बेडकर के विचारों और अम्बेडकरवादी सोच से बना शम्बूक चाहती हैं। जो सवर्णों के अत्याचारों के समक्ष झुके नहीं, बल्कि अपने हक की लड़ाई स्वयं लड़ सके।

6.2. अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में धर्म एवं संस्कृति

अफ्रो-अमेरिकन धार्मिक जीवन केवल ‘नीग्रो चर्च’ को ही व्यक्त नहीं करती है बल्कि उपदेश, संगीत और उन्माद भी है लेकिन उनमें सभी विभिन्न धार्मिक प्रथाएँ भी शामिल हैं, जो संयुक्त राज्य के अश्वेत समुदाय में पायी जाती हैं। अफ्रो-अमेरिकन धार्मिक मुठभेड़ के बीच उभरने वाले मुख्य रूप से विश्वास, जटिलता और सफेद वर्चस्व। अफ्रो-अमेरिकन धार्मिक मान्यताओं के समझने के लिए हमें तीन चीजों की आवश्यकता है, स्वतंत्रता की समझ, अंतर का संकेत और आधार ग्रहण करना। इतिहास में गौर करें तो, अफ्रो-अमेरिकन धर्म का तीन मूल स्रोत है- जादू, ईसाई धर्म और इस्लाम। यहाँ ‘जादू’ शब्द हमारा ध्यान निरंतरता और असंतुलन पर खींचता है। अफ्रीका धार्मिक प्रथाओं के साथ ही धार्मिक कल्पना का एक विशेष उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसके चलते यह देखा गया है कि, जादू और धर्म के बीच अंतर के बारे में धार्मिक अध्ययनों के क्षेत्र में बहस अलग-अलग चल रही थी।

उस समय गुलाम जो एक पीड़ित अपने जीवन का अर्थ समझने के लिए गुप्त धार्मिक ज्ञान अर्थात् जादू-टोना, अंधविश्वास लेता है। जादू एक धार्मिक अभ्यास है, जो हमें हमारे

³⁹⁵ नील, नीले रंग के- हेमलता महिष्वर, पृ.91-92

पुराने अतीत से जुड़ता है। उनके लिए ईसाई धर्म एक छाया और रोज़मर्रा की ज़िंदगी को उन तरीकों को जीवंत करता है, जो हालत पर नियंत्रण करने की कुछ झलक पेश करें। “अगर धर्म ग्रंथ सम्मत दास बनाने की वंशानुगत प्रथा अकेली होती तो यह तय है कि दक्षिण में यह जल्दी ही धर्म ग्रंथ सम्मत नहीं रहेगी। हर साल इस संसार में मेरे जैसे हजारों लोग आ रहे थे। जिनका अस्तित्व उनके गोरे पिताओं से था और जो पिता जल्दी ही उनके मालिक बन जाते थे।”³⁹⁶

अफ़्रो-अमेरिकन लोगों में बहुमत से क्रिश्चियन धर्म को अपनाया। अश्वेत ईसाईयों ने संयुक्त राज्य के सफ़ेद वर्चस्व वाले श्वेत के लिए अफ़्रो-अमेरिकन के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अफ़्रो-अमेरिकन ईसाईयों को प्रारंभिक चरण सन् 1760 से सन् 1863 के बीच देखा जाता है। शुरुआती चरण में उस अवधि को शामिल किया गया, जब दासता की अर्थव्यवस्था ने राजनीतिक मामले में मुक्ति उद्घोषणा (Emancipation proclamation) पर जोर दिया और बीज बोने के शासन का अंत हुआ। गुलामी की इस अवधि के दौरान अश्वेत ईसाई धर्म के रूप को परिभाषित हुए और अपनी मुक्ति की तरफ पहला कदम रखा।

आधुनिक चरण (1863-1935) तीन विशिष्ट क्षणों का वर्णन करता है। पहला, अश्वेत ईसाईयों का राष्ट्रीयकरण हुआ, जो अदृश्य संस्था दासत्व की थी वह दक्षिण की ओर बढ़ते गए। दूसरा, अफ़्रो-अमेरिकन लोगों की बड़ी संख्या उत्तर और पश्चिम में स्थानांतरित करने के लिए दक्षिण से चली गई, जिससे अमेरिकी शहरों की जनसांख्यिकी ही बदल गई। उसके कारण उन्हें श्रम अनुशासन और विभिन्न सामाजिक नए रूपों का सामना करना पड़ा। तीसरा आधुनिक चरण अमेरिकी साम्राज्यीय महत्वाकांक्षा और एक नई नस्लीय कानून आरंभ हुआ जिसे जिम क्रॉ कहा जाता है। नस्लीय अलगाव और कानूनी हिंसा जिसने इस क्रियान्वयन में भाग लिया। इस अवधि के दौरान अश्वेत ईसाईयों की

³⁹⁶ एक अमेरिकी गुलाम- फ्रेडरिक डगलस- अनु. बृज किशोर वशिष्ठ, पृ. 10

अभिव्यक्ति को मूल रूप से आकार मिला। कवयित्री एलिस वॉकर की कविता 'South: the name of home' में स्वतंत्रता के बाद दक्षिण की तरफ जा कर निवास करने की बात रही है कि, किस तरह वह उनका अपना घर बना।

“all the night
I prayed for eyes to see again
Whose last sight
Had been
A broken bottle
Held negligently
In a racist
Fist
God give us trees to plant
And hands and eyes to
Love them.”³⁹⁷

अफ्रो-अमेरिकन में ईसाई धर्म के आधुनिक चरण के किसी भी जानकारी के लिए राजनीतिक आयाम महत्वपूर्ण है। यह स्पष्ट रूप से बीसवीं सदी के मध्य में नागरिक और धार्मिक ऊर्जा के विस्फोट के कारण संयुक्त राज्य में मूल रूप से बदलाव आया। सन् 1935 से 1980 के बीच नागरिक अधिकार आंदोलन और अश्वेत चर्चों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने अपने सार्वजनिक मंत्रालय में अश्वेत चर्च की भाषा पर ध्यान दिया। स्त्रीवादी धर्मशास्त्र, जेम्स कोन का अश्वेत मुक्ति धर्मशास्त्र और नागरिक अधिकार आंदोलन में अश्वेत ईसाईयों को केंद्रियता दर्शाती है कि कैसे सामाजिक और राजनीतिक

³⁹⁷ Her blue body everything we know- alice walker, p-99

परिस्थितियों के रूप को आकार दिया जा रहा था। पूरी संयुक्त राज्य अमेरिका में अश्वेत ईसाईयों की अभिव्यक्ति पर विचार होने लगा। डबलिन में किंग ने जो भाषण दिया था उसका विषय था- ‘अश्वेत और संविधान’। उन्होंने कहा था कि, “जब तक हम ईसा मसीह के प्रेम और भाईचारे के उपदेश को अपने जीवन में नहीं अपनाते तब तक हम सच्चे ईसाई नहीं कहला सकते।”³⁹⁸

अफ्रो-अमेरिकन में ईसाई धर्म सन् 1980 के समकालीन चरण में रोनाल्ड रीजान के चुनाव से शुरू हुआ। जनसंख्या में बढ़ोत्तरी और राजनीतिक बदलावों ने अमेरिकी ईसाई धर्म का परिदृश्य ही बदलता नज़र आया। पड़ोसी चर्च तेजी से गायब हो रही थी। अधिक-से-अधिक अफ्रो-अमेरिकन ने बड़े मेगा चर्चों में शामिल हो रहे थे और नव-उत्सवों में पूजा करने लगे। इसके चलते अफ्रो-अमेरिकन के राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ खराब हो रही थी। एक आश्चर्य की बात है कि अफ्रो-अमेरिकन ईसाईयों की विशेष अभिव्यक्ति की भूमिका ने क्या जीवन में इतने सारे लोगों की छाया की पीड़ा से दूर कर पाया है?

कुछ मायनों में इस्लाम, एक बेहतर, स्वतंत्र विचार और अंतर के संकेत के लिए, अफ्रो-अमेरिकन धर्म के रूप में लोगों के सामने आया। उनका ईसाई धर्म से रूपांतरण और संयुक्त राज्यों के बारे में संदेह की अभिव्यक्ति थी क्योंकि उन्होंने इस्लाम धर्म को अपनाया। उन अफ्रो-अमेरिकन लोगों के लिए जिन्होंने आधुनिक चरण के दौरान इस्लाम को गले लगाया। ‘अफ्रो-अमेरिकन इस्लाम’ एक व्यापक वैश्विक धार्मिक कल्पना के भीतर अफ्रो-अमेरिकन इस्लाम का बयान करता है, जो अफ्रो-अमेरिकन लोगों को एक वैश्विक समुदाय के सदस्यों के रूप में खुद को समझने का, विस्तार करने का प्रयास करता है। यह एक ऐसी समझ है जो मुस्लिम सोच को संयुक्त राज्यों के दबावों पर प्रकाश डालकर अपना मोर्चा चला रहा है।

³⁹⁸ मार्टिन लूथन किंग- दिनकर कुमार, पृ. 35

उन दबावों में अफ्रो-अमेरिकन नस्लीय अनुभव के विवरण से इस्लाम को अलग करने पर जोर दिया गया।

6.2.1. धार्मिक मान्यताएँ

अमेरिका में धर्म अफ्रो-अमेरिकन के धार्मिक और आध्यात्मिक प्रथाओं को दर्शाता है। इतिहासकार आमतौर पर इस बात पर सहमत हैं कि, अश्वेत अमेरिकन के धार्मिक जीवन 'अपने समुदाय के जीवन की नींव सिद्ध' हुए हैं।

सन् 1775 से पहले अमेरिकी आधार उपनिवेशों में अश्वेतों के बीच संगठित धर्म का कोई पक्का सबूत नहीं था। सन् 1780 में बपतिस्मा-दाता (ईसाई दीक्षा गुरु) और एक क्रिस्तानी पंथ देने वाले चर्च सक्रिय हो जाते हैं और अगले 150 वर्षों में विकास काफी तेजी से हुए, जब तक उन्होंने अधिकांश लोगों को शामिल नहीं कर लिया था। सन् 1863 में (Emancipation proclamation) अर्थात् राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने जनवरी 1, 1863 में कार्यकारी आदेश जारी किया था। जिसमें संघीय कानूनी स्थिति को बदलकर 3 मिलियन (30 लाख लोगों) को गुलामी से मुक्ति के लिए दक्षिण की तरफ एक निर्धारित क्षेत्र में भेज दिया गया। स्वतंत्र लोगों ने अपने चर्चों का निर्माण किया, मुख्यतः बपतिस्मा देने वाले लोगों ने विधि के अनुसार किया। अन्य विरोधक संप्रदायों और कैथोलिक्स ने छोटी भूमिका निभाई, इस कार्य के दौरान। सन् 1900 पेंटेकोस्टल और होलिनस्स आंदोलन ने महत्वपूर्ण कार्य किया और बाद में जेहोवाह के साक्षी हुआ। इस्लाम देश और अल-हज मालिक अल-शबाब को मैल्कॉम एक्स के नाम से भी जाना जाता है, जिन्होंने मुस्लिम तार 20 शताब्दी के दौर में जोड़ा। प्रभावशाली पादरियों ने अक्सर राजनीति में प्रमुख भूमिका निभाई जैसा कि, मार्टिन लूथर किंग जूनियर, जिन्होंने नागरिक अधिकार आंदोलन चलाया।

कवयित्री माया एंजेलो की कविता 'Africa' में कहती हैं-

“Over the white seas
 Crime white and cold
 Brigands ungentled
 Icicle bold
 Took her young daughters
 Sold her strong sons
 Churchd her with jesu
 Bled her with guns
 Thus she has lain.”³⁹⁹

कविता में कवयित्री ईसाई धर्म की बात कर रही है। धर्म पर अपने विश्वास को दिखा कर, अफ्रीका से गुलाम बन कर आये लोगों को जीने की शक्ति भर रही है। ईसा मसीह की भक्ति को साथ में रखकर, अमेरिका के लोगों से लड़ना है। “माया के जीवन पर इन धार्मिक मूल्यों का बहुत गहरा प्रभाव रहा है। बाद में माया एक साक्षात्कार में बताती हैं कि, वे क्रिश्चियन हैं, वैसी ही क्रिश्चियन होने का प्रयास करती हैं, जैसा कि एक मुसलमान होता है, जैसा कि एक बौद्ध होता है, जैसा कि एक जोरास्ट्रियन होता है।”⁴⁰⁰

मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने बताया था कि किस तरह उनके पिता का गहरा प्रभाव उनके जीवन पर पड़ा था। उन्होंने अपने पिता के साहस और आत्मविश्वास की प्रशंसा करते हुए कहा था कि उनके पिता कठिन चुनौतियों का सामना करते हुए बिलकुल नहीं घबराते थे। श्वेत समुदाय के दबाव के आगे उन्होंने झुकना नहीं सीखा था। उनके पिता ने बचपन में ही उनसे कहा था कि वह अश्वेत लोगों के साथ होने वाले अन्याय और भेदभाव को चुपचाप सहन न करें, क्योंकि विरोध नहीं होने के कारण ही अश्वेतों को बदतर ज़िंदगी गुजारनी पड़ रही

³⁹⁹ Oh pray my wings are gonna fit me well- maya angelou, p-102

⁴⁰⁰ अफ्रो-अमेरिकन साहित्य स्त्री स्वर- विजय शर्मा, पृ. 153

थी। वैपटिस्टों की एक सभा को सम्बोधित करते हुए सन् 1940 में किंग सीनियन ने धार्मिक समुदाय से आह्वान किया था कि, “वह सच्चे ईसाई लोकतंत्र के पक्ष में आवाज़ बुलंद करें, क्योंकि ईसाई धर्म में प्रेम और समानता की शिक्षा दी गई है, भेदभाव और नफरत का पाठ नहीं पढ़ाया गया है। ईसाई धर्म समन्वय का संदेश देता है। वह समाज को बाँटने की बात हरगीज नहीं करता।”⁴⁰¹ कवयित्री एलिस वॉकर कविता ‘Exercises on themes from life’ जो नौ भागों में विभाजित है। हर भाग में पाँच-छ पंक्तियों की कविता लिखी गई है। उसमें से षष्ठ भाग में कवयित्री कहती हैं-

“My father liked very much

The hymns

In church

In the amen corner,

On rainy days

He would wake

Himself up

To hear them.”⁴⁰²

जैसा कि, कविता के शीर्षक से यह पता चलता है कि कवयित्री जीवन के विषयों पर अभ्यास करने की बात कर रही है। जीवन में धर्म के महत्व और साथ ही चर्च में गाया जाने वाला गाना मन में शांति को जगाता है इस विषय पर यह कविता अपनी बात रखती है।

चर्च के कार्यक्रम में किंग जहाँ अपने पिता का प्रवचन सुनते थे, वहीं उन्हें दूसरे धर्मापदेशकों के प्रवचन सुनने का भी मौका मिलता था और दर्शकों पर भावनात्मक विचारों

⁴⁰¹ मार्टिन लूथर किंग- दिनकर कुमार, प-30

⁴⁰² Her blue body everything we know- alice walker, p-147

के गहरे प्रभाव को वह महसूस करने लगे थे। धार्मिक प्रार्थनाओं के साथ प्रवचन के दौरान जब तालियाँ बजाई-जाती थीं तब सुनने वाले मंत्रमुग्ध हो उठते थे।

अश्वेतों के तमाम चर्चों की तरह एबेनेजन चर्च में भी एकत्र होने वाले अश्वेत नागरिक धर्म के साथ एकाकार हो जाते थे। चर्च में ईश्वर के सामने एक किस्म का लोकतंत्र था, जहाँ अमीर और गरीब के बीच किसी तरह का अंतर नहीं था। किंग लोगों के लगाव को महसूस कर सकते थे। मगर कम उम्र के बालक के लिए भीड़ का जोश समझ में न आने वाली पहेली की तरह था। वर्जीनिया से आए एक धर्म-सुधारक ने जब धार्मिक जनता से आगे आने का आह्वान किया, उसी समय पाँच साल की आयु में किंग चर्च के सक्षम बने।

बाद के वर्षों में धर्म संदेशों और अनुष्ठानों को लेकर किंग के मन में संशय का भाव पैदा होने लगा। परिवार के सदस्य और समाज के लोग उनसे अपेक्षा रखते थे कि वह एक धर्मप्राण संतान की भूमिका निभाएंगे। दूसरी तरफ धर्म के संदेशों और कर्मकांडों को लेकर उनके मन में कई तरह के सवाल पैदा हो रहे थे। किंग ने लिखा है, “मुझे लगता है कि बारह वर्ष की उम्र तक मैं धर्म संबंधी विचारों को बिना संदेह किए ग्रहण करता रहा। मगर मेरा यह रवैया अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सका, क्योंकि ऐसा मेरी मूल प्रवृत्ति से मेल नहीं खाता था। मैं हमेशा धार्मिक कर्मकांडों को लेकर संशयवादी बना रहा था। संडे स्कूल में तेरह साल की उम्र में मैंने चमत्कार सम्बंधी घटनाओं पर सवाल उठाना शुरू कर दिया था।”⁴⁰³ कवयित्री गैडोलिन ब्रूक्स की कविता ‘God works in a Mysterious way’ में लिखती है-

“or timeliness, or Mystery that shrouds

Immortal joy: it merely can direct

Chancing feet across dissembling clods.

⁴⁰³ मार्टिन लूथर किंग- दिनकर कुमार, पृ.33

Out from thy shadows, from thy pleasant meadows,

Quickly, in undiluted light.”⁴⁰⁴

कविता के शीर्षक का हिंदी में अर्थ ‘भगवान एक रहस्यमय तरीके से करता है’ है। यहाँ ईश्वर की महिमा और उसके रहस्यमय शक्ति की बात की गई है। हमारे जीवन में कभी-भी कुछ भी हो सकता है, जो सब ईश्वर ही करते हैं। आलोचक विजय शर्मा कहती हैं “1957 में एमेट टिल की हत्या के बाद ब्रूक्स ने ‘द शिकागो डिफेंडर सेंड्स अ मैन टू लिटिल रॉक’ लिखी, सात पूत खिलाड़ियों के विषय में इन्होंने ‘वी रियल कूल’ लिखी। ये दोनों कविताएँ इनके 1960 में प्रकाशित ‘द बीन ईटर’ में संग्रहित हैं। बाद में ये केन्या, रूस और घाना गयीं। जिसने इन्हें दक्षिण अफ्रीका की रंगभेद की नीति के विरुद्ध संघर्ष से परिचित कराया। इन अनुभवों के बाद का इनका लेखन भूमंडलीकरण का संकेत देता है।”⁴⁰⁵

धर्म और सार्वजनिक जीवन पर पीयू रिसर्च सेंटर के मंच द्वारा 2007 में एक सर्वेक्षण में यह पाया गया कि अफ्रो-अमेरिकन लोगों की जनसंख्या का 87% किसी धर्म से जुड़े है, जो संयुक्त राज्य की जनसंख्या की तुलना में अधिक धार्मिक पाया गया है और 79% लोग यह कहते हैं कि धर्म हमारे जीवन में बहुत ही महत्व रखता है। पूरे संयुक्त राज्य 83% और 56% प्रतिक्रिया की तुलना में यह माना गया है। ज्यादातर आबादी ईसाईयों की है जिन्होंने 83% अश्वेत अमेरिकियों ने ईसाईयों के रूप में पहचान ली है। जिनमें 45% बपतिस्मा के रूप में अपनी पहचान को शामिल कराते हैं। जनसंख्या का 5% कैथोलिक के खाते में हैं। 1% जनसंख्या अपनी पहचान मुस्लिम बताते हैं। लगभग 12% अफ्रो-अमेरिकन लोग कोई धर्म नहीं अपनाया है और जो अपनी पहचान नास्तिक या अज्ञेयवादी के रूप में कराते हैं।

⁴⁰⁴ The world of Gwendolyn brooks - Gwendolyn brooks, p-56

⁴⁰⁵ अफ्रो-अमेरिकन साहित्य स्त्री स्वर – विजय शर्मा, पृ-314

अमेरिका में अफ्रीकी धर्मों की विविधताएँ जिसे ‘अफ्रीका डायस्पोरिक धर्म’ या ‘परम्पराओं की नई दुनिया’ भी कहा जाता है। अफ्रो-अमेरिकन लोगों के धर्म अमेरिका के विभिन्न देशों में विकसित हुआ जैसे- लैटिन अमेरिका, कैरेबियन और दक्षिणी संयुक्त राज्य। वे ईसाई के पारम्परिक अफ्रीकी धर्मों से कुछ रूप से प्रभावित थे।

6.2.2. नई संस्कृति का उदय

न्यूयार्क शहर में हार्लेम नामक स्थान में बहुतायत में अफ्रो-अमेरिकन लोग आकर रहने लगे। यहाँ बीसवीं सदी के दूसरे और तीसरे दशक में एक अफ्रो-अमेरिकन सांस्कृतिक आंदोलन चला। इसे ‘हार्लेम रजिस्टेंस’ के नाम से भी जाना जाता है। इस आंदोलन के कारण पहली बार अफ्रो-अमेरिकन साहित्य की ओर लोगों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ। इस आंदोलन की कोई योजनाबद्ध, विधि सम्मत रूपरेखा तय करना कठिन है। परिभाषित करना कठिन हो लेकिन इसमें कवि, उपन्यासकार, नाटककार, राजनीतिक, लेखक, संगीतकार गायक सब शामिल थे। इन लोगों में एक बात समान थी। ये अफ्रो-अमेरिकन अनुभवों को अपने काम में पिरो रहे थे। इनमें एक बात और समान थी कि ये नस्लीय गर्व से भरे हुए लोग थे। इनके भीतर अश्वेतों के सामाजिक और आर्थिक उन्नयन की तीव्र आकांक्षा थी। ‘स्त्री कवयित्रियों की एक नई पीढ़ी को आमतौर पर समझने के लिए कुछ विद्वान ‘अफ्रीकी-आधुनिकता’ या ‘अफ्रो-अमेरिकन आधुनिकता’ कहते थे। एक सौंदर्यवादी दृष्टि से देखा जाए तो हार्लेम पुनर्जागरण में स्त्री कवयित्रियों का आरम्भ हुआ और कुछ का समाप्त।’⁴⁰⁶ कवयित्री एलिस वॉक्स की कविता ‘हिम’ (Hymn) में वह कहती हैं-

“My God! The songs and
The people and the lives

⁴⁰⁶ अफ्रीकन-अमेरिकन वुमनस लिटरेचर- सं. एंजेलिन मेटसेल्ल, पृ. 177

Started here-
Weaned on 'happy' tears
Black fingers clutching black teats
On black Baptist benches-
Some mother's troubles that
Everybody's seen
And nobody wants to see.”⁴⁰⁷

कविता में उस संगीत की बात करती हैं जो चर्च में भजन के रूप में गाया जाता है। 'हिम' का अर्थ है 'यह भजन' है। दक्षिण में आकर बसने के बाद अफ्रो-अमेरिकन लोगों के जीवन में एक नई संस्कृति का उदय होता है जो काल, संगीत, नृत्य आदि को अपना साध्य बनाते हैं। संगीत उनके जीवन में उस दावा का काम कर रही थी। जो सदियों की बीमारी को दूर कर रहा था। इस कविता में उस संगीत की कुछ पंक्तियाँ भी लिखी गई हैं।

“Amazing grace
How sweet the sound
That saved a wretch
Like me
I once was lost
But now I'm found
Was blind
But now
I see”⁴⁰⁸

⁴⁰⁷ Her blue body everything we know-alice walker, p-104

अश्वेत सामाजिक दर्शन, जो इस निद्राभंग से पैदा हुआ, वह मार्टिन लूथर किंग के नागरिक अधिकार आंदोलन का भी आधार बना। बीस वर्ष के इस समय काल में इस कौम की सदियों की उपलब्धियाँ छिपी हुई है। सदियों के बोझ से दबा मानस एक ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ा। इस समय का कला, संगीत, साहित्य और दर्शन जैसे पिछले जन्म की स्मृति भी है। आज का जीवन भी और भविष्य के सपने भी। संगीत की दुनिया पर जाज़ संगीत और ब्लूज़ सारे विश्व पर छा गए। बीटल्स को भी इसी संगीत ने प्रभावित किया था। हार्लेम का कहवा संगीत और नृत्यमंचों की धूम थी। अपोलो थिएटर का अपना ऐतिहासिक महत्व है। साहित्य की दुनिया सब से अधिक महत्वपूर्ण रही। अश्वेत अनुभवों और बदलती हुई स्थितियों से पैदा होने वाली सामाजिक दृष्टि के साथ-साथ सम्भावनाओं की शक्तिमता इस दौर के साहित्य में उसी तरह उजागर हुई जैसे किसी कौम का इतिहास अपने शुरु से आखिर तक एक ही रचना में बाहर आने को तत्पर हो। उस समय की कविताएँ आज भी प्रसिद्ध हैं।

उस दौरान जिन गद्य लेखकों ने इस आंदोलन को गति दी उनमें से ज्यादातर इतिहासकार और समाजशास्त्री थे। इस आंदोलन से डू ब्याइस इस रूप में सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए। इस काल में उपन्यासकार के रूप में जीन टूमेर को नाम मिला। उनका उपन्यास 'केन' गरीब अश्वेतों के जीवन और हार्लेम प्रतिरोध को प्रतिध्वनित करता है। इस दौरान स्त्री रचनाकार भी सक्रिय थीं, यहाँ भी उन्हें अपने स्त्री होने का खामियाजा भुगतना पड़ा। उनके काम को उनके जाने के बाद प्रसिद्धि मिली। इस प्रसिद्ध का बयान कुछ स्त्री रचनाकार बनीं।

कवयित्री माया एंजेलो की एक कविता 'मुझे पता है कैद पक्षी क्यों गाते हैं' 'आई तो व्हाई द' केज्ड बर्ड सिंग्स' का हिंदी में अनुवाद डॉ. सर्वेश कुमार मोर्य ने किया है जो दलित साहित्य (वार्षिकी) के 2013 के प्रकाशन में छपा था।

⁴⁰⁸ Her blue body everything we know- alice walker, p-104-105

“बंदी पंछी
 भयभीत स्वर में रुंधे गले के साथ गाते हैं,
 अज्ञात बातों के लिए,
 लेकिन इंतजार के साथ,
 उनकी धुन को दूर,
 पहाड़ी से सुना गया है इसीलिए
 बंदी पक्षी मुक्ति के गीत गाते हैं।”⁴⁰⁹

माया एंजेलो ने अपनी का नाम आत्मकथा भी इसी नाम पर रखा है। इस आत्मकथा में एक समय के अमेरिकी समाज की मान्यताओं, विचारों, मूल्यों, रीति-रिवाजों, मिथकों, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक स्थितियों का दस्तावेज है। यह दिखाती है कि एक देश अमेरिका के भीतर दो भिन्न-भिन्न अमेरिका थे। एक श्वेत लोगों का अमेरिका, दूसरा अफ्रो-अमेरिका का अमेरिका। “like such anglo-american modernist poets as T.S.Eliot and Ezra Pound, then, Gwendolyn brooks, Margaret Walker and Margaret Danner seek to revise the ‘old certainties’ of the western tradition, including Christianity, ideals of human progress and individualism by showing how African-americans, individually and collectively, rewrote these ideals on their own terms.”⁴¹⁰ अर्थात् इस तरह के ‘एंग्लो-अमेरिकन’ आधुनिकतावादी कवियों में जैसे, टी.एस.इलियट और एजरा पाउंड है। साथ ही ग्वेंडोलिन ब्रूक्स, मार्गेट वॉकर और मार्गेट डैनर ने पश्चिमी परम्परा की ‘पुरानी निश्चितताओं’ को संशोधित करना चाहती थी। जो ईसाई धर्म, मानव प्रगति के आदर्श और

⁴⁰⁹ दलित साहित्य (वार्षिकी)-डॉ. जयप्रकाश कर्दम पृ-308

⁴¹⁰ African-american women’s literature- ed. Angelyn Mitchell, p-177

व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से अफ्रो-अमेरिकन लोगों को दिखाकर, इन आदर्शों को अपनी शर्तों पर दोबारा लिख सके।

6.2.3. फिल्मों का योगदान

अफ्रो-अमेरिकन समाज में जागृति लाने का काम फिल्मों ने भी किया। यहाँ केवल स्त्रियों ने ही नहीं बल्कि पुरुषों ने भी अपना योगदान दिया है। हॉलीवुड में आज तक कई ऐसी फिल्में बनी है, जो अश्वेत के जीवन, गुलामी, अत्याचार, पीड़ा की कहानी व्यक्त करती हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण मैं स्वयं ही हूँ। इस विषय पर काम करने और इसे समझने के लिए फिल्मों से मुझे काफी मदद मिली है। कहते हैं न, हम जो देखते हैं, उसे आसानी से भूल नहीं पाते हैं। फिल्मों को देखने के बाद मुझे ऐसा लगा कि, जैसे उनकी पीड़ा का दर्द मेरे अंदर चुभ रहा हो।

अश्वेत फिल्में ने अफ्रो-अमेरिकन संस्कृति और सभ्यता को जानने का सबसे अच्छा माध्यम है। साहित्य और समाज दोनों से जुड़ी फिल्में बनी है। उदाहरण के रूप में केवल कुछ फिल्मों का नाम ही लिख रही हूँ, 'बोयेज एन द हूड', 'कमिंग टू अमेरिका', 'फ्राइडे', 'मेलकॉम एक्स', 'ट्रेनिंग डे', 'द कॉलर पर्पल', 'रे', 'डु द राइट थिंग', 'लर्न ऑन मी', 'सेट इट ऑफ', 'रिमेम्बर द टाइटंस', 'रूट्स', 'हॉल्लेम नाइट्स', 'द अटोबाइग्राफी ऑफ मिस जेन पिटामेन', 'घोस्ट्स ऑफ मिसिसिपि', 'ब्राउन सुगार', '12 इयर्स ए स्लेव', 'आइ एम स्लेव', 'अमिस्टाड', 'अंकल टोम्स केबिन', 'बिलोव्ड', 'बार्थ ऑफ ए नेसन', 'ड्रम', 'लिनकोलन' आदि हैं। "इसके अलावा भी कई अफ्रो-अमेरिकन स्त्री लेखन पर फिल्में बनी हैं, उन्हीं में से कुछ की यहाँ चर्चा की जा रही है। लोरैन हैसबेरी (ए रेसिन इन द सन), क्रिस्टीन हंटर (लैंडलॉर्ड), एलिस वॉकर (द कलर पर्पल), टोनी मॉरीसन (बिलवड), माया एंजेलो (जर्जिया, सिस्टर, ब्लैक्स ब्लूज ब्लैक्स), टेरी मैक्मिलन (वेटिंग टू एक्जेल, हाऊ स्टेला गॉट हर ग्रोव

बैक) आदि के लेखन पर फिल्में बनीं हैं। माया एंजेलो ने तो फिल्म निर्देशन (डाउन इन द डेल्टा) भी किया है।”⁴¹¹

अमेरिका में गुलामी प्रथा बहुत पहले अवैधानिक घोषित की जा चुकी थी। फिर भी समाज से यह कुप्रथा हटी नहीं थी। नतीजा यह हुआ कि बीसवीं सदी में प्रचलित अमेरिकी सिनेमा में अश्वेतों को हीन दिखाने की प्रवृत्ति जारी रही। फिल्म में वे अक्सर श्वेत लोगों के नौकर-नौकरानी हुआ करते थे, अथवा मसखरों की भूमिका में दिखाई देते थे। सन् 1939 में बनी ‘गॉन विथ द विंड’ में विवियन लीग की नौकरानी के रूप में हेटी मैक्डेनियल ने इतना जानदार अभिनय किया कि, एकाडमी अवार्ड पाने वाली पहली अश्वेत अभिनेता बनी।

आज अमेरिका में श्वेत-अश्वेत अभिनेता के कार्य में अंतर नहीं रह गया है। इसके पीछे कई लोगों का योगदान है। यहाँ कुछ ऐसी फिल्मों की चर्चा है, जिनमें जटिल अश्वेत जीवन उनकी समृद्ध संस्कृति, उनके संघर्ष को हम चित्रित पाते हैं। ‘अफ्रीकन इन अमेरिका’, ‘आईज ऑन द प्राइज’, ‘हूप ड्रीक्स’ जैसी इससे संबंधित बहुत सारी डॉक्युमेंटरी भी उपलब्ध हैं, मगर यहाँ केवल फीचर फिल्मों, उसमें भी केवल उन फिल्मों की बात जो स्त्री लेखन पर आधारित हैं। वैसे आज अश्वेत स्त्रियाँ भी फिल्म निर्माण में संलग्न हैं।

6.2.4. मिथक का प्रयोग

मिथक की परिभाषा और अर्थ पहले के कुछ पन्नों में स्पष्ट कर चुकी हूँ। अफ्रो-अमेरिकन साहित्य में भी मिथकों का प्रयोग दिखाई देता है। केवल कविता में ही नहीं बल्कि साहित्य की अन्य विधाओं में भी अफ्रो-अमेरिकन स्त्री और पुरुषों, दोनों ही रचनाकारों ने किया है। बीसवीं सदी के साठ और सत्तर के दशक की कई रचनाकारों ने यूरोप के क्लासिक साहित्य को त्याग और प्रेरणा के लिए अफ्रीका के मिथक की ओर रुख किया। वक्त के साथ बहुत

⁴¹¹ अफ्रो-अमेरिकन साहित्य स्त्री स्वर – विजय शर्मा, पृ-335

कुछ बदल जाता है। यह बदलाव उनकी प्रकृति के अनुकूल था। इससे उन्हें और उनके पाठकों को शक्ति, अस्मिता का एहसास होता था। अश्वेत कला आंदोलन(ब्लैक आर्ट्स मूवमेंट) इस समय अपने चरम सीमा पर थी। इस आंदोलन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कई तरह के लोग जुड़े हुए थे। कोई नाटककार था, कोई अभिनेता, कोई चित्रकार था तो कोई गायक। इसमें बहुत सारे रचनाकार भी जुड़े हुए थे।

“Do not hold my few years

Against me

In my life, childhood

Was a myth

So long ago it seemed, eveh

In the cradle. ”⁴¹²

‘So we’ve come at last to freud’ कविता में एलिस वॉकर मिथक की बात कर रही है। एलिस वॉकर नेटिव अमेरिकन के साथ अपना रिश्ता बड़े गर्व से जोड़ती हैं और अपनी परदादी को अमेरिका के मूल निवासी, चेरुकी समुदाय का बताती हैं। ये रचनाकार दृढ़ता के साथ लिख रही थीं। साहित्य में तरह-तरह के प्रयोग कर रही थीं। एक नया इतिहास रच रही थीं। विजय शर्मा कहती हैं “टोनी मॉरीसन, एलिस वॉकर, जोरा नील हर्टसन ऐसी ही रचनाकार थीं जो इस आंदोलन से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हुई थीं। इन रचनाकारों ने अपना अलग सौंदर्यशास्त्र विकसित किया। इन्होंने यूरोप के मिथकों को नकारा नहीं वरन् उसे नये रूप से समकालीन परिस्थितियों से जोड़ कर अपने लेखन में दिखाया। इनके यहाँ अफ्रीकन मिथक

⁴¹² Her blue body everything we know- alice walker, p-124

का भी भलीभाँति उपयोग हुआ। इतना ही नहीं इन्होंने अमेरिकन इंडियन के मिथक का भी सार्थक उपयोग किया।”⁴¹³

यह सरल लेकिन जटिल भविष्यवाणी आवाज़ एक राजनीतिक आवाज़ के रूप से आध्यात्मिक हो गई, जो एक ऐतिहासिक दृष्टि को व्यक्त करता था। जो इतिहास के रूप में मिथक है। उदाहरण के तौर पर, सोनिया सान्चेज़ लिखती हैं कि, ‘ब्लू ब्लैक जादूई महिला के लिए एक ब्लूज़ बूक’, जिसमें उन्होंने दुःख और खुशी के लिए पश्चिम अफ्रीका के समान एक सनकने वाला स्वर बनाने के लिए ध्वनि प्रभाव का उपयोग किया। एक अनुष्ठान है जो, अफ्रो-अमेरिकन महिलाओं को एक मिथक पूर्वजों से जोड़ता है।

“as I ride my past on horseback
Tasting the thirst of yeaterday tribes,
Hearing the ancient/black/woman
Me, singing
Hay-hay-hay-hay-ya-ya-ya
Hay-hay-hay-hay-ya-ya-ya”⁴¹⁴

कहीं से भी मिथक लेकर उसका उपयोग करने को ये रचनाकार अपना अधिकार मानती हैं। टोनी मॉरीसन सदैव कहती हैं, मिथक किसी एक जाति की थाती न होकर हमारी सामूहिक चेतना का अंग हैं। ऐसा मनोविश्लेषण युग का मानना है। टोनी मॉरीसन के अनुसार वे ग्रीक, अफ्रीका, अमेरिका कहीं से भी मिथक लेने और उसका प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र हैं। अपने साहित्य में उन्होंने ऐसा किया है। उन्होंने यूरोपियन मिथक का अपने उपन्यास में प्रयोग किया है।

⁴¹³ अफ्रो-अमेरिकन साहित्य स्त्री स्वर – विजय शर्मा, पृ-41

⁴¹⁴ African-american women's literature- ed. Angelyn Mitchell, p-181

बीसवीं और इक्कीसवीं सदी की अफ्रो-अमेरिकन स्त्री साहित्यकारों ने कभी पुराने मिथकों का जैसे का तैसा उपयोग किया। कभी प्राचीन मिथकों का रूपांतरण किया। कभी आवश्यकता पड़ने पर नये मिथकों खासकर स्त्री संबंधित मिथकों का सृजन भी किया। यह एक बहुत बड़ा और विद्रोही कदम है। इससे इन रचनाकारों के साहस का पता चलता है। रचनाकार की स्वतंत्रता एक बात है, स्वतंत्रता के अधिकार का उपयोग करना, कर पाना एक भिन्न बात है। इन लोगों ने इस अधिकार का उपयोग किया है। इसका उपयोग करते हुए पाउलीन होप्सकीन तथा रीटा डोव ने अपने समाज में प्रचलित नस्लवाद, लिंगभेद और कुलीन नजरिये वाली परम्परागत मिथकों को चुनौती देते हुए नये मिथकों का निर्माण कर अश्वेत नारीत्व को नयी परिभाषा दी। इन्होंने अश्वेत स्त्री को साहित्य में स्थापित किया।

6.3. निष्कर्ष

इक्कीसवीं सदी में धर्म और संस्कृति के मूल्यों में कई परिवर्तन देखने को मिला है। परंतु धर्म और संस्कृति दोनों ही ऐसी जड़े हैं, जिन्हें अपनी नींव से उखाड़ फेंकना दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों के लिए एक चुनौती से कम नहीं है। धर्म के नाम पर स्त्रियों को भारत में देवी का रूप मानते हैं और उसी देवी को जाति और लिंग के आधार पर मानसिक और शारीरिक शोषण करते हैं। भारत देश से विपरीत अमेरिका में धर्म के आधार पर स्त्रियों पर शोषण नहीं किया जाता है। बल्कि उन्होंने अपनी संस्कृति से ब्लैक नस्ल को हमेशा दूर रखने की कोशिश की है। अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों ने संस्कृति के कई आधार अपने लिए बनाए। जिसमें उन्होंने ब्लैक परम्परा, संस्कृति, रीति-रिवाज, संगीत, कला आदि को दुनिया के समक्ष रखा।

धार्मिक कट्टरता, उन्माद का सबसे अधिक प्रभाव स्त्री वर्ग पर होना स्वाभाविक है। पितृसत्ता का सबसे अधिक निर्वाह करने वाला वर्ग ही उसे परम्परा और धर्म के नाम पर बेड़ियों से बाँध कर रखता है। धर्मनिरपेक्ष की छवि के रूप में जानने वाले इस देश को जातिवादी और लिंगवाद के खिलाफ एकजुट होकर संघर्ष करना पड़ेगा।

इस सदी में स्त्री जहाँ एक ओर शिक्षित एवं समाज में अपने अस्तित्व को बनाने की कोशिश कर रही है, वहीं पुरुष समाज अपने धार्मिक और सांस्कृतिक हथियार का प्रयोग करते हुए उन्हें आगे बढ़ने से रोक रहे हैं। स्त्री के तिहरे जीवन का मूल स्रोत धर्म ही है। चाहे स्त्री किसी भी धर्म की हो, उसे दोयम दर्जे का जीव माना जाता है। धर्म ही पुरुषों को स्त्रियों के प्रति असमानता का भाव रखने की शिक्षा देता है।

सप्तम् अध्याय

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ : अभिव्यक्ति के विविध रूप

7.0. प्रस्तावना

विश्व भर में करीब हजारों भाषाएँ बोली जाती हैं और सभी भाषाओं की अपनी एक अलग पहचान है। मनुष्य ने भाषा के आधार पर अपनी अभिव्यक्ति को एक-दूसरे के साथ जोड़ा। अभिव्यक्ति के माध्यम कुछ भी हो सकते हैं, परंतु भाषा एक सुंदर जरिया है जो कई रंगों को लेकर एक आकृति प्रस्तुत करती है। यही कारण है कि भाषा का निर्माता 'कवि' को कहा जाता है क्योंकि कवि अपनी कविता में एक शब्द के प्रयोग से पूरी गाथा सुना देता है। वह समाज से ही शब्द लेकर समाज के लिए लिखता है। इस अध्याय में भाषा का सामान्य परिचय और विशेषता देकर, उसे दलित कविताओं के संदर्भ में प्रस्तुत करेंगी। साथ ही, मुख्य धारा की कवयित्रियों की कविताओं और दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन कवयित्रियों की कविताओं में भाषा के संदर्भ में क्या भिन्नताएँ हैं? उसे भी स्पष्ट करेंगी। अभिव्यक्ति के साथ जुड़े नये-नये शब्द, जो दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं को विश्व में अपनी पहचान देते हैं। इन पर भी चर्चा करेंगी।

7.1. भाषा, समाज और साहित्य

भाषा मनुष्य की वागेंद्रियों से उत्पन्न ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा भाषा-समुदाय के व्यक्ति परस्पर विचार-विनिमय करते हैं। भाषा समाज एवं उसकी संस्कृति का एक अभिन्न अंग होती है, अतः किसी सामाजिक व्यवस्था का अंग बनकर जब मनुष्य रहता है, तो उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संप्रेषण के माध्यम के रूप में उस समाज की भाषा को सीखना पड़ता है।

भाषा सामाजिक सम्पत्ति है। भाषा पुरातनकालीन मानव सभ्यता की धरोहर है। इसका अस्तित्व बहुआयामी होता है। भाषा का इतिहास मानव के इतिहास के साथ जुड़ा हुआ है। तेजी से बदलते अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्वरूप ने भाषा के स्वरूप को भी परिवर्तित किया है। यह भाषिक परिवर्तन गुण और परिमाण दोनों रूपों में हुआ है। हिंदी भाषा भी इसी शाश्वत परिवर्तन चक्र से गुजर रही है।

भाषा के बारे में कई विद्वानों ने निम्नानुसार मत व्यक्त किया है-

हेनरी स्वीट का कथन है कि “ध्वनात्मक शब्दों द्वारा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है।” बाबूराम सक्सेना कहते हैं कि “मनुष्य, जिन ध्वनि-चिन्हों द्वारा परस्पर विचार-विनिमय करता है, उन्हें भाषा कहते हैं।”, जबकि ब्लॉक एवं ट्रैगर का मत है कि “भाषा ऐच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा किसी भाषा समाज के व्यक्ति परस्पर सहयोग करते हैं।”⁴¹⁵

भाषा के वैयक्तिक और सामाजिक पक्ष के अतिरिक्त उसका सामान्य पक्ष भी होता है, जिसे सस्यूर ने लेंगुएज कहा है। लेंगुएज (भाषा) अभिव्यक्ति का सामान्य माध्यम होती है और इस स्तर तक पहुँचकर संप्रेषण का सामान्य माध्यम बन जाती है। इस स्तर पर वैयक्तिक पक्ष का ध्वनन, सामाजिक पक्ष का श्रवण और सामान्य पक्ष की अभिव्यक्ति सब शामिल होते हैं, तथा भाषा सार्थक अभिव्यक्ति के पूर्ण माध्यम का रूप ले लेती है।

सदियों से भारत बहुजातीय, बहुसांस्कृतिक एवं बहुभाषिक रहा है। पर इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत की यह बहुजातीयता यहाँ बसने वाले भारतीयों के व्यक्तित्व के विकास में कभी बाधक नहीं रही, उसकी बहुसांस्कृतिक चेतना ने उनकी सर्जनात्मक शक्ति का कभी क्षय नहीं किया और उसकी बहुभाषिकता समाज की सहज भाषाई संप्रेषण

⁴¹⁵ हिंदी युग-युग/ की भाषा-रमेश चंद्र, पृ-22, कल्याणी शिक्षा परिषद, 3320-21, जटवाड-आ, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 2011

व्यवस्था में कभी अवरोध का कारण नहीं बनी। इसमें संदेह नहीं कि भौगोलिक दृष्टि से भारत एक विशाल देश है और काल की दृष्टि से इसका इतिहास और परम्परा बहुत पुरानी है।

डॉ. रवींद्र श्रीवास्तव अपनी पुस्तक ‘भाषाई अस्मिता और हिंदी’ में लिखते हैं, “भारतीय साहित्य के संदर्भ में यह निर्देश दिया है कि, वह विभिन्न भाषाओं के माध्यम से व्यक्त होने वाला एक ही जनमानस द्वारा रचित काव्य है, और भारतीय व्यक्ति की अभ्युदय गाथा का वर्णन करते हुए यह संकेत दिया है कि, विभिन्न जातियों एवं भाषाओं में बँटा हुआ यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के बृहत्तर आयाम पर एक है क्योंकि, उसकी जातीय चेतना और भाषाई बुनावट की मूल प्रकृति सामाजिक है।”⁴¹⁶

7.2. दलित स्त्री कविताओं में स्त्रीत्व की भाषा

दलित साहित्य की भाषा के संदर्भ में कई विद्वानों ने अपनी टिप्पणी रखी है। जो दलित साहित्य को समझने और दलित स्त्री कविताओं में व्यक्त होने वाले शब्दों को समझने का काम करेगा। भाषा का अपना उस साहित्य या समाज के साथ जुड़ा होता है जो उसे अपने लेखनी में प्रयोग करे। डॉ. शरण कुमार लिम्बाले कहते हैं “दलित साहित्य का यथार्थ अलग है। इस यथार्थ की भाषा अलग है। यह भाषा दलितों की गंवार असभ्य भाषा है। यह भाषा दलितों की बोली भाषा है। यह भाषा शिष्ट संकेत और व्याकरण के नियम न मानने वाली भाषा है। ऐसा कहा जाता है कि हर एक दस कोस पर भाषा बदलती है, किंतु दलितों के संबंध में अंतर का गणित गलत ठहरता है। एक ही गाँव में- गाँव की भाषा और अछूत टोली की भाषा में भेद दिखाई देता है।”⁴¹⁷

दलित साहित्य ने संस्कृतनिष्ठ परम्परागत साहित्यिक भाषा, काव्य शैली, प्रस्तुतीकरण को नकार कर सर्वग्राही भाषा का प्रयोग किया है। ऐसी भाषा जो दलितों की पीड़ा, अपमान,

⁴¹⁶ डॉ. रवींद्र श्रीवास्तव – भाषाई अस्मिता और हिंदी, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 2015

⁴¹⁷ दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र-डॉ. शरणकुमार लिम्बाले, पृ-45

व्यथा की सही और यथार्थवादी अभिव्यक्ति बन सके। दलित साहित्य की भाषा नकार और विरोध की भाषा है, जिसमें युगों की भावनाएँ साकार हो उठी हैं। “दलित जीवन में इस विकरालता की अभिव्यक्ति और भी भयानक हैं। आज की दलित कविता वर्ण, वर्ग, जाति और लिंग के समान भाषा के अधीशत्व को भी पहचानती हैं।”⁴¹⁸

दलित कवयित्रियाँ भाषाओं और भौगलिक दूरी के कारण चाहे जितनी दूर हों परंतु उनकी अभिव्यक्ति प्रायः एक जैसी ही है। उसकी चिंताएँ, उसकी चुनौतियाँ, उनके सरोकार एक समान हैं, क्योंकि सभी शोषणों की एकरूपता का जवाब भी एक है। वह है- संघर्ष और सृजन एवं एकता की जरूरत। कवयित्री सुशीला टाकभौरे अपनी कविता में कहती हैं-

“तुम्हें क्यों शर्म नहीं आई?

गल चुकी मोमबत्तियाँ

आज वह जंगल की आग है

बुझाये न बुझेगी

बन जायेगी

आग का दरिया।

पहचानो उसके नये तेवर,

श्रद्धा, शर्म, दया, धरम

किसमें खोजते हो?

सँभालो अपने

पूराने जेवर,

धान के थान

⁴¹⁸ कविता का स्त्रीपक्ष- प्रमीला के.पी. पृ. 167

कवयित्री की 'आज की खुद्दर औरत' कविता की पंक्तियों में नारी विद्रोह का स्वर सुनाई पड़ता है। यह तेवर हिंदी दलित कविता की पहचान है। दलित कविता ने अंधकार से लड़ते हुए जुगनू के समान अपने भीतर असंख्य सूर्यों को जन्म दिया है। जो उसकी अभिव्यक्ति को शक्ति देता है। सूर्य, रोशनी, प्रकाश, रात-दिन, ज्वालामुखी, समुद्र, तूफान आदि दलित कविता में शब्द-भर नहीं हैं बल्कि, ये आवेगपूर्ण अनुभवों की अभिव्यक्ति है। विमल थोरात कहती हैं "दलित, कविता व्यक्तिगत अनुभवों से संपृक्त होने के साथ ही समूह मन के अनुभवों की अनुभूति भी है।"⁴²⁰

स्त्रीत्व यानी नारीत्व यानी पत्नीत्व यानी नारी सुलभ कोमलता, दुर्बलता आदि। बृहत् हिंदी कोष के अनुसार इन सब पर्यायों के अतिरिक्त स्त्रीत्व एक पुल्लिंग शब्द भी है, जिस भाषा में स्त्रीत्व को व्याख्यायित करने वाला शब्द ही दूसरे गुट में चला जाता है। "युग-युगों से दमित रहनेवाली संवेदनाएँ सरल और सपाट होकर बाहर उपस्थिति नहीं हो सकती, तभी उसकी आवाज़ या तो चौंकानेवाली होती है, नहीं तो आक्रामक। औरत की जैविकता उसके उपबोध को नियंत्रित करती है। वैसे वह कविता का भी उपबोध बन जाता है। कविता ही नहीं, कोई भी मानवीय अभिव्यंजना खुद का धोखा नहीं करती।"⁴²¹ सुशीला टाकभौरै की तरह कई कवयित्रियों ने अपनी कविताओं में विद्रोह, आक्रोश और संघर्ष को अभिव्यक्ति किया है। अनिता भारती 'प्रतिघात' कविता में कहती हैं-

“तो दोस्त,

सँभालो अपने आप को

सरल जरूर रहो पर चौकन्ने भी रहो

वर्ना कहीं ऐसा न हो

⁴¹⁹ सुशीला टाकभौरै-यह तुम भी जानो, तुमने उसे कब पहचाना, पृ-81-82

⁴²⁰ विमल थोरात-मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिंदी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, 1996, पृ-142

⁴²¹ कविता का स्त्रीपक्ष- प्रमीला के.पी. पृ. 168

कि जब वह कोई प्रतिघात करे
तो वह किसी मुखौटे में सुरक्षित
खड़ा हो मुस्कुरा रहा हो
और तुम अपना दागदार चेहरा लिए
घेर कर मार दिए जाओ।”⁴²²

कविता में कवयित्री ने अपनी बात को साफ़-साफ़ कहने की कोशिश की है। ‘प्रतिघात’ शीर्षक से ही यह पता चल रहा है कि अब दलित स्त्रियाँ चुप रहकर कोई कार्य नहीं करेंगी। बल्कि वह अब अपने ऊपर होने वाले जुल्मों के खिलाफ प्रतिघात अर्थात् पलट कर वार करेंगी। कविता में ‘सरल’ शब्द पर ज़ोर देकर समझाया गया है कि सरल स्वभाव के मनुष्य को दुनिया में ठग लिया जाता है। यहाँ मुख्य धारा और दलित के बीच जो ठगने की प्रथा है, वह दलितों के साथ घटित हो रही है। दलितों को अपना माध्यम बनाकर दगा दिया जाता है। यही कारण है कि कवयित्री सरल जीवन जीने से आगाह कर रही है।

आज की कविता कई लोगों के मतानुसार ‘शिल्प’ ही है। अर्थात् यहाँ कविता अभिव्यक्ति का ढाँचा नहीं, स्वयंसिद्ध कर्म है। इसलिए उन्हें परम्परागत मान्यताओं पर, जैसे कथ्य-शिल्पगत समन्वित स्वरूप पर चिन्ता नहीं। उनके मतानुसार शिल्प स्वयं भाषा है, भाषा स्वयं अर्थ भी। चित्र किस प्रकार स्वयं बोलता है, उसी प्रकार भाषा खुद विवरण और अर्थ बन जाती है। “भाषागत कर्म साहित्यिक ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक जैसे सभी संदर्भों को समेटकर प्रस्तुत होता है। जो लोग शक्तियों से दबाए पड़े रहे थे, पड़े रहते हैं, उनकी अलग भाषा नहीं, लिखित भाषागत साहित्य नहीं, इसलिए उनकी भाषा का नाम ‘मुक्ति की भाषा’ बताई गई है।”⁴²³ कवयित्री रजत रानी ‘मीनू’ अपनी कविता ‘गीदड़ी से शेरनी बनती स्त्री’ की पंक्तियों में कहती हैं-

⁴²² अनिता भारती-खूबसानी का घर, पृ-74

⁴²³ औरत की अभिव्यक्ति एवं आदमी का अधिकार- डॉ. प्रोमिला के.पी. पृ.78

‘मैंने अपने अंदर बैठी गीदड़ी को

दूर खदेड़ दिया

जंगल का रुख करा दिया

अब मैं गीदड़ी नहीं शेरनी हूँ

दिखा सकती हूँ, आँखें

आँखें दिखाने वाले को

इस आत्मविश्वास ने

मेरा जीवन बदल दिया।”⁴²⁴

कविता में ‘गीदड़ी’ और ‘शेरनी’ जैसे दो शब्द जो अपने में वर्ग निर्धारित कर रहा है। यहाँ ‘गीदड़ी’ दलित स्त्री का प्रतिनिधित्व निभा रही है और ‘शेरनी’ पुरुषवादी नकारात्मक सोच का। वह सदियों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी, दशक-दर-दशक, शतक दर शतक, बिना अपराध की डरती आ रही है। कविता में सरल, सहज शब्दों का प्रयोग काफी प्रभावशाली ढंग से हुआ है। भाषा की सरलता में भी अपनी बात को पूरी तरह कहने में सक्षम हुई है। “इतिहास साक्षी है, बार-बार स्त्रियों के लिए ही नैतिक संहिताएँ लिखी गई है। मसलन उसे कितना सच्चरित्र होना चाहिए। चरित्रवान बनाए रखने की संहिताएँ सर्वदा से पुरुषों ने ही लिखी। यह काम पुरुष समूहों ने किया जो बेनाम रहा, तो कभी धार्मिक पाखंडियों ने किया, आज नैतिकता के नए मठाधीश खुल्लमखुल्ला सीना ताने फासीवादी चोंगा पहने अबाध गति से अपनी कुचाल की ओर अग्रसर हैं।”⁴²⁵

यातनाओं से उपजी आक्रोशित भाषा एक तेज औजार की तरह भीतर तक झकझोर देती है। दलित समाज की बोली-बानी के ऐसे अनेक शब्द प्रकट होते हैं, जिनसे साहित्य अनभिज्ञ था। यह दलित साहित्य को ताजगी देता है और भाषा की जड़ता भी टूटती है। दलित

⁴²⁴ पिता भी तो होते हैं माँ – रजत रानी ‘मीनू’, पृ-103

⁴²⁵ सं. रमणिका गुप्ता-स्त्री नैतिकता का तालिबानीकरण, पृ-156

जिस परिवेश में जीवन जीते हैं, वहाँ गंदी गलियों में नंग-धड़ंग घूमते बच्चे हैं, दूषित वातावरण है। जिसे पारम्परिक आलोचक नहीं जानते। उस परिवेश की भाषा को अश्लील कहना पूर्वाग्रह ही कहा जाएगा। कवयित्री रजनी तिलक अपनी कविता 'कौन' में लिखती हैं-

“किसे परवाह है उनके मिट जाने की
सिर पर मैला ढोते, या सड़कों पे भीख मांगते,
कौन जानता है वे कहाँ रहते हैं,
घरों में जंगलों में सड़कों पर या फुटपाथ पर
क्या खाते हैं इनके बच्चे, कैसे जीते हैं ये?”⁴²⁶

अकसर दलित कविताओं में हमें ऐसे शब्द देखने को मिलते हैं, जो उनके जीवन से जुड़े हैं। जंगल, सड़क, फुटपाथ, मैला, दीन, पिछाड़ इत्यादि शब्द दलित समाज का एक तरह से प्रतिनिधित्व करते हैं। इन शब्दों को पढ़कर या सुनकर ही यह पता चल जाता है कि, यह दलित लोगों के साथ जुड़ा है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहना है कि, “दलित कविता में बिम्ब दलित जीवन की त्रासदी और उसके यथार्थ को व्यक्त करते हैं। दलित कविता में अंधेरा, आसपास के परिवेश में गंदगी की सड़ांध, सीलन भरे तंग मकानों में सिसकती ज़िंदगी दलित जीवन के यथार्थ हैं, जो उनके जीवन का अविभाज्य घटक बन गए हैं। उन वस्तुओं को दृश्य बिम्ब के स्थान पर रखकर दलित कवि इन्हीं वस्तुओं में जीवन के प्रतिबिम्ब ढूँढता है।”⁴²⁷

दलित स्त्रियों की कविताओं में भाषा का प्रयोग खुलकर किया गया है। वह किसी भी शब्द का प्रयोग करने से डरती नहीं है। वैदिक काल से देखें तो यह पता चलता है कि शब्दों के प्रयोग में कवियों ने बहुत सावधानी बरती है। परंतु आधुनिक कविताओं में खुलकर शब्दों का प्रयोग किया है। यहाँ किसी भी तरह का कोई व्याकरण या रचना प्रक्रिया नहीं है। कविताओं में

⁴²⁶ रजनी तिलक-पदचाप, पृ-48

⁴²⁷ दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र-ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ-85

अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया गया है। आज की दलित स्त्री कविताओं का एक मात्र लक्ष्य अपनी बात को सबके सामने रखना है। कवयित्री पूनम तुषामड़ अपनी कविता ‘बुरी स्त्री’ में कहती हैं-

“स्त्री-पुरुष संबंधों पर

एड्स पर

गर्भवस्था पर उत्पन्न होने वाली

समस्याओं पर

सड़कों-बसों-ट्रेनों में

धूँती लपलपाई कुंठित भूखी-

आकृतियों को सबक सिखाने को

रहती है तत्परा।”⁴²⁸

जैसा कि कविता की पंक्तियों को पढ़कर कुछ ऐसे शब्द सामने आ रहे हैं, जो हमारे समाज की सोच से खूब करतार है। ‘एड्स’, ‘गर्भवस्था’, ‘स्त्री-पुरुष संबंध’ यह सब ऐसे शब्द हैं, जो यौन संबंधित समस्याओं में आते हैं। पर इन विषयों पर पहले बात उस तरह से सामने नहीं आई जैसा, दलित कवयित्रियाँ बेबाक हो कर लिख रही हैं। आज के युग में एड्स जैसी समस्याओं पर बात करना अनिवार्य है। समाज का मनोरंजन करना केवल कवि का कर्तव्य नहीं होता। वरन् उसे समाज की सच्चाई से खूब करतार भी कवि का कर्म है। दलित स्त्री कविताओं में निराशा नहीं, बल्कि आशा की नई किरण दिखाई देती है। “आज की स्त्री कविता की भाषा के वर्चस्ववाद को भंग करने लगती है। सभी प्रदेशों को खोल देती है। किसी भी अभिव्यक्तियों को देखती-परखती है और उनमें विद्यमान सत्ताधिकारों एवं यौन-सूचनाओं को खोल देती है। किसी भी अभिव्यक्ति को पिछड़ी नहीं मानती।”⁴²⁹

⁴²⁸ समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन-सं. रजनी तिलक, पृ.231

⁴²⁹ औरत की अभिव्यक्ति एवं आदमी का अधिकार-डॉ. प्रेमिला के.पी., पृ-83

‘नीले, नीले रंग के’ कविता संग्रह पढ़ने के बाद सबसे पहले जो बात आकर्षित करती है वह है, हेमलता माहिश्वर की कविता मितभाषी, अल्पाक्षरी और गिने-चुने शब्दों में अभिव्यक्त होती है। शब्दाडंबर में न पड़ते हुए या साहित्यिक शिल्प को न साधते हुए सहज स्वाभाविक रूप से उतरती है। इसी तरह वह आशय सम्पन्न, सामाजिक यथार्थ का ध्यान रखते हुए और परिवर्तकारी संवेदनशीलता को समाहित किए हुए है। कविता ‘अल्फ्रेड नेबुल’ में कहती हैं-

“अल्फ्रेड नेबुल

डायनामाइट

बनते बनाते

संभवतः

क्या तुम मौत की तरफ बढ़ रहे थे?

या मौत से

तुम संभवतः

स्त्री भर बच रहे थे

क्या सोच रहे थे तुम

संभावित मौत के रास्ते नापते”,⁴³⁰

इस कविता में ‘अल्फ्रेड’, ‘नेबुल’, ‘डायनामाइट’, ‘टाइम’, ‘मशीन’ जैसे कई अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया गया है। कविता को लिखते समय कवयित्री ने बुनाबटी शब्दों का प्रयोग न करते हुए, उसे उसी तरह लिखा जो आमतौर पर इस्तेमाल की जाती है। बोलचाल की भाषा में हम अक्सर अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं क्योंकि, उन शब्दों के लिए हिंदी शब्दकोश से शब्द निकालकर प्रयोग में लाना संभव नहीं है। जैसे ‘टाइम’ शब्द

⁴³⁰ नील, नीले रंग के-हेमलता माहिश्वर, पृ-24

‘समय’ शब्द से कहीं अधिक प्रयोग में लाया जाता है। हम अधिकतर ‘वक्त क्या हुआ’, या ‘समय कितना हुआ’ न बोलकर ‘टाइम कितना हुआ’ प्रयोग करते हैं। कवयित्री ने पूरी कविता में इसी तरह अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग कर उसे सरल बनाने का प्रयत्न किया है। “भाषा की परिवर्तनीयता प्रगतिशील है। भाषा भेदों के पूरकत्व से यह सम्भव हो जाती है। आजकल निर्मित भाषा रूपों के संदर्भ में मीडिया की भाषा सर्वाधिक चर्चित है। सांस्कृतिक परिवेश की साधन होने के कारण भाषा तमाम बंदिशों को तोड़कर जनसामान्य के पक्ष में जाने लगती है। अंग्रेजी की तुलना में 2002 के आंकड़ों के अनुसार हिंदी अखबार पढ़नेवालों की संख्या ज्यादा हो गई है।”⁴³¹

लोकभाषा के रूप में अंग्रेजी को पढ़ना उपयोग करना वर्तमान की जरूरत है। पर उसके लिए अपनी भाषा की खासियत को ठुकराना अनुचित है। अंग्रेजी में लिखी ज्ञानसम्पदा हमारे लिए आवश्यक है। कवयित्री रजनी अनुरागी अपनी कई कविताओं में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करती हैं जैसे, ‘चॉकलेट’, ‘स्कूल’, ‘प्लास्टिक’, ‘ब्रेड’, ‘पेंट’, ‘टाई’, ‘रिकॉर्ड’, ‘फुटपाथ’ इत्यादि। साथ ही कवयित्री अपनी कविता ‘खबरदार’ में कहती हैं-

“तुम्हारे ऊपर कभी भी लग सकते हैं लांछन
कि तुम हो वाचाल, बेगैरत, कुल्टा और बदचलन
तुम्हारे प्यार और तुम्हारी ममता के मानी
कभी भी हो सकते हैं बेमानी”⁴³²

कविता में ‘लांछन’, ‘वाचाल’, ‘बेगैरत’, ‘कुल्टा’, ‘बदचलन’ ऐसे शब्दों का इस्तेमाल किया गया है। यह शब्द दलित स्त्री कविताओं में बहुत देखने को मिलता है। कई कवयित्री इन शब्दों को बार-बार अपनी कविता में प्रयोग करती हैं। कई ऐसी भी कविताएँ हैं, जो इन शब्दों के शीर्षक के रूप में सामने आता है। कारण साफ है कि, दलित स्त्रियों पर इन

⁴³¹ न्यू रीपोर्ट, द हिंदू 12 सितम्बर, 2002

⁴³² समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन खंड-1, सं. रजनी तिलक, पृ-42

शब्दों का बार-बार किया जाता आ रहा है। उसे हमेशा से कुल्टा कहकर गली दी जाती है। “स्त्रियों की रचनाओं को उबाऊ, अतिसम्वेदामय, बुद्धिशून्य तथा घरेलू आरोपों से धिक्कारने वाले और उनकी अभिव्यक्तियों को वर्गीय कट्टरपंथी राजनीतिक रवैया माननेवालों को यह गलतफहमी है। यह स्वीकार करने में दिक्कत नहीं है कि, हर रचनात्मक अभिव्यक्ति के समान करने में दिक्कत नहीं है कि हर रचनात्मक अभिव्यक्ति के समान स्त्री लेखन की भी महद् उद्देश्य से सम्पृक्त राजनीति है।”⁴³³

अलग-अलग देश-प्रदेश प्रवेशों में भिन्न-भिन्न भाषाओं में लिखे जाने के कारण इनकी आवाज़ सुसंगठित नहीं। बहुस्वरता इनकी खासियत है। खुलकर अपनी बात रखने का स्वयं पर विश्वास है। स्त्री कविता की भाषा में अश्लील-श्लील-अतिशलील घेरे में नहीं रहती है। उनके अनुसार भाषा नकाब नहीं, स्वयं भाव है। शरीर, घर, समाज, प्रकृति, पर्यावरण, राष्ट्र और विश्व की भाषागत निर्मितियों को नए सिरे से पूनर्व्याख्या देने की कोशिश करती है। शरीर भाषा निर्मितियों को मनोवैज्ञानिकता को देखती है।

“एक पागल लड़की को घूमते

हजारों नजरें होती थीं उस पर

और आज

फिर पढ़ रही हूँ

अखबार में खबर

एक नाबालिग

दलित बच्ची के साथ

बलात्कार

और वह इस कु-कृत्य से है बेखबर।”⁴³⁴

⁴³³ द फेमिनिस्ट क्रिटिक ऑफ़ लांगुएज- सारा मिल्स, पृ-77

⁴³⁴ पिता भी होते हैं माँ- रजत रानी ‘मीनू’, पृ-91

7.3. अभिव्यक्ति के स्तर में भिन्नता

मुख्यधारा में स्त्री कवयित्रियों की एक लम्बी सूची है। वे हिंदी जगत में अपनी लेखनी के माध्यम से समाज में परिवर्तन लाने में समर्थ हुई हैं। इस बिंदु में अभिव्यक्ति के स्तर में भिन्नता मुख्यधारा और दलित स्त्री कविताओं के अंतर्गत देखेंगे। यहाँ इन दोनों की कविताओं में समाज को लेकर और मुख्य रूप से भाषा के संदर्भ में जो-जो भिन्नताएँ आ रही हैं। उस पर चर्चा करेंगे। मुख्यधारा से जुड़कर कई कवयित्रियाँ अपनी कविताओं की रचना कर रही हैं। जिनमें से कुछ की कविताओं का ही उदाहरण प्रस्तुत करूँगी। यहाँ दलित स्त्री कविताओं की भाषा और आदिवासी स्त्री कविताओं की भाषा में बहुत बड़ा अंतर देखने को मिलता है। “भाषा जो सन्नाटे का द्वार है। सन्नाटा जो भाषा के भीतर भी है और उसके दूर-पास के छोरों पर भी। किसी ने कहा है, वह सभ्यता जो शब्दों पर टिकी है, एक बेचैन सभ्यता है।”⁴³⁵

स्त्री भाषा की सबसे बड़ी ताकत है, त्रास और मुक्ति के आनंद का समायोजन। तर्क और अंतः प्रज्ञामूलक उस अर्धविस्मृत भाषिकलय का समायोजन जो गर्भ-गृह में माँ की देह से छनकर शिशु को देह में उतर आता है- प्रसव कालीन क्रमण और संकुचन, स्तर पकड़ने-छुड़ाने की लय, बत्ती जलने-बुझने की लय, स्वीकार-निषेध की लय एक तरह से औरतों के जीवन की लय भी हो जाती है और इनकी भाषा भी। मुख्यधारा की कवयित्री रंजना जायसवाल अपनी एक कविता ‘यायावर स्त्री’ में लिखती हैं-

“मेरे भीतर से
निकल आयी है
एक यायावर स्त्री
न शर्म न लिहाज
हीं, हीं, ठीं-ठीं करती

⁴³⁵ स्त्री लेखन-के. वनजा, पृ-30

बात-बात कर कहकहे लगाती
वे मकसद बतियाती सिर्फ प्यार की भाषा समझती
उच्छृंखला आवारा सी।”⁴³⁶

कवयित्री बेशक अपनी कविता से पितृसत्तात्मक समाज के खिलाफ अपनी आवाज़ उठा रही है परंतु हमें यहाँ भाषाई स्तर में क्या भिन्नताएँ आती हैं वह देखना है। कवयित्री ने सरल और सहज शब्दों का ही प्रयोग किया, पर अपनी एक शैली भी दिखाई। शब्दों की पुनरावृत्ति जैसे- ‘हीं-हीं’, ‘ठीं-ठीं’, ‘बात-बात’ आदि केवल दो पंक्तियों में लगातार प्रयोग किया है। भाषा और संवेदना दोनों ही स्तर में भिन्नताएँ हैं। जहाँ मुख्यधारा की कवयित्रियों के लिए केवल लिंगगत समस्या अर्थात् अपने परिवार से लड़ना पड़ता है, वहीं दूसरी ओर दलित स्त्री लिंग और जाति की समस्या अर्थात् समाज और परिवार से लड़ रही हैं। जहाँ संवेदनाएँ अलग हो जाती है वहाँ स्वभाव है कि भाषाई अंतर तो अवश्य मिलेगा।

अनामिका ‘स्त्री मुक्ति और भाषा’ में कहती हैं “भाषा के महीन लकरपेंच, टूटे-फूटे पुश्तैनी गहनों की तरह औरतों के कोष में सुरक्षित रहते हैं और वक्त पड़ने पर वे इन्हें अस्त्र भी बना लेती हैं। दरअसल यह तो स्थापित तथ्य है कि, भाषिक औजारों से लड़ी जाती है अस्मिता की लड़ाई। हँसते-हँसते जान निकाल देने की कला ग्रामवधुओं से सीखे कोई! विशेषकर ग्वालिनों, रंगरेजनियों, मलिनों, नैनों, कुंजरिनों और दाइयों से।”⁴³⁷ अनामिका अपनी कविता ‘वृद्धाएँ धरती का नमक हैं’ में कहती हैं-

“कपड़ा है देह” जीर्णाणि वस्त्राणि’....वाला
यह श्लोक ‘गीता’ का सुना था कभी बहुत बचपन में
पापा के पेट पर

⁴³⁶ रंजना जायसवाल-जब मैं स्त्री हूँ, पृ-93

⁴³⁷ स्त्री-मुक्ति और कविता-डॉ. प्रमीला के.पी., पृ-10

पढ़ लेते-लेते!”⁴³⁸

कवयित्री की कविता में स्त्री की विविध छवियाँ मौजूद हैं। ‘स्त्रियाँ’, ‘मौसियाँ’, ‘एक औरत का पहला राजकीय प्रवास’, ‘तुलसी का झोला’, ‘सद्गृहस्थ’, ‘वृद्धाएँ’, ‘सार्वजनिक चौका’ जैसी कविताओं में अलग-अलग तरह की स्त्री छवियाँ मौजूद हैं, जो दलित स्त्री कविता के शीर्षक से बहुत भिन्न हैं। ऊपर की कविता में संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग किया है। कवयित्री अनामिका भाषा को बहुत महत्व देती हैं। अक्सर उनकी कविताओं में जटिल शब्दों की धुनी लगी रहती है। “गाँव-घर की भाभियों, चाचियों, बुआओं की गालियाँ, उलाहने, कहावतें, किस्में, गीत, पहेलियाँ और ताने भाषा से एक ऐसी जोरदार होली खेलते हैं कि, ‘धोबिनिया धोए आधी रात’ वाला अलग हो जाता है। साहित्य के सिर इनकी इस रंग-रंगीली, दृष्टान्तबद्ध, चित्रमयी, ठस्सेदार, ठेठ भाषा का ऋण बहुत बड़ा है।”⁴³⁹

दलित कवयित्री रजनी तिलक की कविताओं को पढ़कर हमें उनकी भाषा-शैली का सुंदर नमूना मिलता है। अधिकार हनन के विरुद्ध सदा व्यंग्य की भाषा और स्थितियों से जुड़े शब्दों का प्रयोग होता है। वे अपनी ‘माँ’ शीर्षक कविता में कहती हैं-

“खेत, खलिहान

पेड़..... पहाड़..... नदी..... नाल

आसमान के पक्षी

जमीन की चींटी, दीवार की छिपकली

तुम्हारे रिश्ते!

दया, करुणा, भक्ति

सखा-बिरादर

किचन-बाथरूम

⁴³⁸ कवि ने कहा-अनामिका, पृ-23

⁴³⁹ कहती हैं औरतें-अनामिका, पृ-18

सोफे कुर्सी डबलबैड।”⁴⁴⁰

जैसा कि हम इस कविता में भाषा के नए प्रयोग को देख सके हैं। कारक चिन्ह कम से कम प्रयोग किया गया है। यहाँ केवल एक-एक शब्द से ही पंक्ति बनी है और हर पंक्ति एक-दूसरे के अर्थ में भिन्न प्रतीक हो रही है। भाषा अपनी पूर्णता में किसी तरह की एकांगिता बर्दाश्त नहीं करती और इसलिए हर तरह की अन्यायपूर्ण एकांगिता के भास्वर विरोध का हथियार बनती है। भाषा को व्यक्ति के अधीनीकरण के सांस्कृतिक षड्यंत्र का हथियार जब-जब बनाया गया, भाषा गवाह है कि उसे निरस्त्र करने के हथियार भी उसी से निकले।

मुख्यधारा की कवयित्री कात्यायनी की कविताओं में बहुत अधिक संस्कृतनिष्ठ शब्दों के प्रयोग के साथ, कई तरह के संदर्भों को भी प्रस्तुत करता है। जैसे- उनकी कविता ‘मुख्तसर-सी कुछ बातें’ में कहती है कि,

“हम कई-कई बार तनहाइयों, दुखों,
आवारगी, ऐंठ, इंतजार, काई, धुंध,
घास, राख,
शिकायतों, भुनभुनाहटों, संदेहों, छायाओं,
संग्रहालयों, धुआ हुई चीखों,
अनैतिक चाहतों
और खुद को यूँ मिटा देने की
खबती ख्वाहिशों के भी होकर रहे।”⁴⁴¹

एक तरफ दलित कवयित्री रजनी तिलक की कविता और दूसरी तरफ कवयित्री कात्यायनी की कविता को पढ़ते हुए ही, हमें दोनों में विभिन्नताएँ नज़र आने लगती हैं। दोनों जिस भाषा-शैली का प्रयोग करती हैं वह एक-दूसरे से भिन्न है। परंतु दोनों ही आधुनिक

⁴⁴⁰ हवा सी बेचैन युवतियाँ-रजनी तिलक, पृ-43

⁴⁴¹ कहती हैं औरतें-अनामिका, पृ-89

कविता के अंतर्गत आती हैं। जिस कारण हमें कुछ समानताएँ भी दिखाई देती हैं। कवयित्री कम शब्दों का प्रयोग कर बहुत कुछ कहना चाहती हैं। अनामिका स्त्री-भाषा के बारे में कहती हैं “स्त्रियों के यहाँ कविता-कहानी में चित्रित हर लैंडस्केप, उनमें प्रयुक्त हर लोकोमोटिक या लोक भाषा से नागमणि की तरह उठाया गया हर व्यंजक शब्द कहावत, मुहावरा, बिंब, चरित्र, संवाद, प्रसंगादि अस्मिता की लड़ाई में एक छोटी-मोटी युद्ध भूमि की भूमिका अखितयार कर गया है।”⁴⁴²

मुख्यधारा की स्त्री कविताओं की तरह आदिवासी स्त्री कविताओं की भाषा-शैली दलित स्त्री कविताओं से भिन्न होती हैं। कवयित्री सरोज केरकेट्टा अपनी कविता ‘मज़दूरी’ में कहती हैं-

“मज़दूरी करते-करते युवती ने
पाया जीवन-साथी
दोनों मज़दूरी करते
तब भी
चारु खाली
माड़-भात खा-खा कर
कैसे पालें बच्चे?”⁴⁴³

कविता में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो आदिवासी समाज का प्रतिनिधित्व करता है। वह शब्द केवल आदिवासी लोग ही अपने रोजमर्रा के जीवन में इस्तेमाल करते हैं। कविता की पंक्तियों में ‘चारु’ शब्द ‘मिट्टी से बना खाना बनाने का बर्तन’ के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। अक्सर हम ‘चारु’ शब्द सुनकर यह अंदाजा लगाते हैं कि,

⁴⁴² स्त्री मुक्ति और कविता-सं. प्रमीला के.पी., पृ-9

⁴⁴³ कलम को तीर होने दो- सं. रमणिका गुप्ता, पृ-258

यह किसी मनुष्य का नाम होगा। अगर कवयित्री पाद-टिप्पणी में इस अर्थ को स्पष्ट नहीं करती तो, हमारे लिए कविता में इस शब्द का अर्थ नहीं निकलता। सरोज केरकेड़ा खड़िया की नवोदित कवयित्री ने अपनी ‘मजदूर’ कविता में प्रेमी जोड़ा गोवा जाने की कोशिश करता है क्योंकि, झारखंड में रोजगार और पानी नहीं है, जो उन्हें गोवा जा कर मिल जाएगा। रमणिका गुप्ता अपनी पुस्तक ‘कलम को तीर होने दो’ में लिखती हैं “आदिवासी भाषाएँ ध्वनि आधारित होती हैं। फलतः वह हिंदी भाषा को नई-नई ध्वनियों, लयों, स्वरों, शब्दों और मुहावरों से लैस भी कर रही है। आदिम युग के मिथकों और कल्पनाओं को सहेज रही है और इतिहास से छूटे प्रसंगों को भी कविता-कहानी व गीतों में ढाल रही हैं।”⁴⁴⁴ कवयित्री अनिता भारती अपनी कविता ‘तुम्हें क्या लगता है?’ में कहती हैं-

“दरअसल,
छोटू कभी तुम्हारा
छूटकू बन ही नहीं सकता
तुम्हें क्या लगता है
जाति और वर्ग की
खाई पाटना इतना आसान है?”⁴⁴⁵

दलित समाज में मनुष्य के नाम की अलग पहचान दिखाई देती है। मुख्यधारा के लोगों ने दलितों को कभी मनुष्य का दर्ज तो दिया ही नहीं। साथ ही उनका नाम भी नीच जाति को आधार मानकर ही दिया। इस कविता में ‘छोटू’ शब्द आकार में छोटा होने के कारण नहीं रखा गया। बल्कि यह वह ‘छोटू’ है, जो पूरे दलित समाज का प्रतिनिधित्व कर रहा है। भाषा की दृष्टि से देखा जाए तो कवयित्री ने अपनी कविता में एक प्रतीक के रूप में ‘छोटू’ का प्रयोग किया है। इसी संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं “साहित्य में प्रतीक

⁴⁴⁴ कलम को तीर होने दो- सं. रमणिका गुप्ता, पृ-5

⁴⁴⁵ खखसाना का घर- अनिता भारती, पृ-17

की महत्ता सर्वविदित है। प्रतीक द्वारा भावना, विचार, बोध आदि की अभिव्यक्ति जहाँ रचना को प्रभावशाली बनाती है, वही अर्थपूर्ण भी। प्रतीक द्वारा किसी भी बात को संक्षेप में कहा जा सकता है। दलित साहित्य में समाज की पीड़ा, बेबसी, उत्पीड़न और शोषण से उपजे आक्रोश को, सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग हुआ है।⁴⁴⁶

7.4. अफ्रो-अमेरिकन स्त्री भाषा का सांस्कृतिक उत्सव

ब्लैक कविताएँ अफ्रो-अमेरिकन भाषा प्रथाओं से मेल खाती हैं। अफ्रो-अमेरिकन कवयित्री अपने काव्यों में अलग-अलग शब्दावलियों, उचित संज्ञाओं, ऐतिहासिक आंकड़ों और मौखिक प्रथाओं का उपयोग करती हैं। वास्तव में, अफ्रो-अमेरिकन समुदायों की सांस्कृतिक और सामाजिक रूप से इतिहास को जानना आवश्यक है। कवयित्रियाँ स्वयं के अनुभवों को किस तरह अपने काव्य में प्रस्तुत करती हैं, यह उनके भाषा की संस्कृति से पता चलता है।

गुलामों को आरम्भ में लिखना-पढ़ना आता ही नहीं था, न ही उन्हें पढ़ने की सुविधा थी। शुरूआती दौर में उनके पास लिखित रूप में कुछ था ही नहीं। चूंकि वह अफ्रीका के अलग-अलग कबीलों से थे, तो उनके साथ-साथ लोक भाषा, लोक संगीत, लोक कला, लोक कथाएँ (ऑरल ट्रेडिसन) भी आयीं। उनकी यह परम्परा मौखिक रूप से काफी मजबूत थी। अफ्रीका से आये गुलामों का धर्म ईसाई नहीं था, जिस कारण उनकी कहावतें, संगीत, संकेत आदि सब कुछ अमेरीका के श्वेत लोगों से भिन्न थे। अमेरीका आने के बाद भी यह परम्परा उनके साथ चली आई। क्योंकि यह उनकी विरासत का एक हिस्सा है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह परम्परा उनके परिवारों को मिलता गया। उनकी शब्दावली, संगीत, प्रतीक आदि चीजों की परम्परा उनकी भाषाओं में उभर कर तब सामने आया जब, वह लिखने लगे।

⁴⁴⁶ दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र – ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ-84

एक समय आया कि गुलामी समाप्त होने लगी। कुछ अश्वेत लोगों ने अपने गुलामी के वक्त ही लिखना-पढ़ना सीख लिया था और कुछ गुलामी के समाप्त होने के इंतज़ार के बाद। जाहिर सी बात है अपनी लेखनी के आरम्भ में ही उन्होंने अपने अनुभव, दुःख, दर्द, शोषण को सर्वप्रथम कविताओं में लिखा। किस तरह कोड़ों से मारा गया, सताए गए, बलात्कार के शिकार बने, ये सारी बातें उनके लेखन के शुरूआत में आईं। उनकी शब्दावली ज्यादातर उनके श्वेत मालिकों की देन थी। चूंकि मालिक ईसाई धर्म के होते थे, तो उनके प्रतीक भी वहीं से मिला। जब गुलाम संघर्ष करके लिखने-पढ़ने लगे, तब इनकी शब्दावली फिर बदल गई। विकसित होने के साथ-साथ, उन्होंने अपने देश की संस्कृति, साहित्य और सभ्यता को याद किया। अब उनके साहित्य में अमेरीका और अफ्रीका दोनों की भाषाओं और संस्कृति का प्रभाव नज़र आ रहा था। इस मिश्रित शब्दावली में अफ्रीका और अमेरिका दोनों की शब्दावली है। वह अब दोनों तरह की बातें लिखने लगे।

फिर एक समय ऐसा भी आया, जब न केवल श्वेत लोग इनका शोषण करते थे बल्कि अपने लोगों के भीतर भी जो भेदभाव, शोषण और अत्याचार हो रहा था, उस पर भी लिखना शुरू किया, तो उसकी एक अलग भाषा बनी। अफ्रो-अमेरिकन लोगों में स्त्री-पुरुष में लिंगगत भेदभाव था। स्त्रियाँ जब अपने ही घर-परिवार में पुरुषों के द्वारा अत्याचार का शिकार बनी, तो उसकी लेखनी में जाहिर हुआ और भाषा में भी भिन्नता नज़र आई। जब पुरुष स्त्री शोषण के बारे में लिखते हैं तो उनकी भाषा-शैली स्त्रियों से भिन्न दिखाई देती है। पुरुष ज्यादातर बाहरी संघर्ष की बात करता रहा, तो उसकी शब्दावली स्त्रियों की शब्दावली से भिन्न है। क्योंकि स्त्री आंतरिक संघर्ष के बारे में लिखती हैं कि वह किस तरह श्वेत पुरुषों के द्वारा, श्वेत स्त्रियों के द्वारा और अश्वेत पुरुषों के द्वारा शोषित होती आ रही है।

अनामिका लिखती है “भाषिक संरचना में अस्मिता की तलाश का प्रश्न जो फ्रेंच भाषाविदों ने उठाया- उसके आधार पर इतना तो कहा जा सकता है कि हाशिए पर रहने वालों

की भाषा हमेशा ही अधिक जीवंत, रंग-रंगीली और ठस्सेदार होती हैं। जो भी वर्ग-वर्ण, लिंग-एक श्रोता की स्थिति में विधेय स्थान पर, अवरुद्ध और उपभोग होते हैं- पता नहीं किन स्त्रियों से, क्षतिपूर्ति सिद्धांत के अनुकूल उनकी भाषा में एक अलग तरह की खानी, तेजस्विता और अनुगूँजी खचाखच समा जाती है। इसका सबसे स्पष्ट प्रमाण स्त्रियों की भाषा है।”⁴⁴⁷

अफ्रो-अमेरिकन स्त्री रचनाकारों को अब आधुनिक अमेरिकी कवियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। कई कठिनाईयों और अन्याय के बावजूद, उनकी कविताएँ किसी ज़िंदगी के जश्न की तरह हैं। साथ ही इनकी कविताओं में न केवल भेदभाव और अन्याय की आलोचना है, बल्कि जश्न मनाने के लिए एक संस्कृति भी है। यह परम्परा में समृद्ध संस्कृति है, शायद पहले इसे साहसपूर्वक व्यक्त नहीं किया गया था, लेकिन अब इसके आंतरिक गुणों के बारे में जागरूकता के साथ पुनर्जीवित किया गया है। उदाहरण के तौर पर यह धारणा है कि ‘काला सुंदर और अद्वितीय है’।

7.5. क्या कविता राजनीतिक, सिद्धांत या कला हो सकती है?

अफ्रो-अमेरिकन कवयित्री ऑड्रे लॉर्ड ने अपनी कविताओं में यह सिद्ध कर दिया है कि कविता में राजनीति, सिद्धांत और कला तीनों का समावेश हो सकता है। “Sonia Sanchez with her haiku-like style, in her exploration of self in exchange and conflict with community, in her probing of the personal self’s relation to the public self, in her search for the higher public self, in her constant as redefining of those selves, especially as female body and spirit.”⁴⁴⁸ अर्थात् सोनिया सांचेज़ अपने हाइकु जैसी शैली के साथ, बदले में स्वयं की खोज और समुदाय के साथ संघर्ष में, उच्च सार्वजनिक स्वयं की खोज में, अपने आप को निरंतर

⁴⁴⁷ स्त्री-मुक्ति और कविता- सं. डॉ. प्रमीला के.पी. पृ. 7-8

⁴⁴⁸ The garden thrives: twentieth century African-american poetry, 1996, p.xxviii-xxix

रूप से उन स्वयं को फिर से परिभाषित करने के रूप में, विशेष रूप से महिला शरीर और आत्मा के रूप में।

सन् 1970 के दशक से अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों ने साबित कर दिया है अश्वेत कवि शुद्ध रचनात्मक ऊर्जाके साथ कला के काम लिख सकते हैं।

सन् 1960 के दशक की कविता के दृष्टिकोण में बदलाव आया। नागरिक अधिकार आंदोलन, अश्वेत शक्ति आंदोलन और अश्वेत कला आंदोलन की आपात स्थिति के साथ एक उग्रतापूर्ण मुद्रा बनती है, जिसे सांस्कृतिकवाद में लाया गया है। कई लोगों का मानना है कि इस दौरान लिखी गई कविता विशुद्ध रूप से राजनीतिक और सामाजिक थी। सन् 1970 और उसके बाद अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों द्वारा लिखी गई कविता साबित कर देती है कि, अश्वेत कविता दोनों ही तरह से राजनीतिक, उपदेशात्मक और कला हो सकती है। सन् 1970 के दशक के बाद की कविता विभिन्न शैलियों और सांस्कृतिक परम्पराओं पर अभिव्यक्ति की विविधता में उल्लेखनीय रूप से समृद्ध है। ये स्त्री कवयित्रियाँ अपने संदेश के माध्यम से समाज को अच्छी तरह से प्रभावित कर सकती हैं कि यह धारणाओं और दिमाग की सोच को बदल देगी।

वे शुद्ध प्रचार नहीं हैं क्योंकि इसे कभी-कभी केवल साहित्यिक के अलावा अन्य कारणों से बनाया गया है। इनमें से कई कविताएँ मूल, जैविक, जीवन्त और एक ही समय में एक संदेश अपने अंदर दबाई हुई हैं। अब ये विविधतापूर्ण और सबसे शानदार कविता है। यह संगीतमय है, लोगों की आवाज़ जो वे अच्छे हैं, उपहार और कलात्मक लोगों के रंग को व्यक्त करता है। माया एंजेलो बताती हैं कि, “we are a tongued folk. A race of singers. Our lips shape words and rhythms which elevate our spirits and quicken our blood...I have spent over fifty years listening to my

people.”⁴⁴⁹ अर्थात् हम एक तरह के लोक जीभ वाले लोग हैं। गायकों की भी एक नस्ल है। हमारे होंठ शब्दों और लय को आकार देते हैं जो हमारी आत्माओं को ऊंचा करते हैं और हमारे खून को बढ़ाते हैं....मैंने अपने लोगों को सुनने में पचास साल से अधिक का समय बिताया है।

सोनिया सांचेज़ ने भी माना है कि, “I had to wash my ego in the needs/aspirations of my people.”⁴⁵⁰ अर्थात् मुझे अपने लोगों की जरूरतों/आकांक्षाओं के लिए अपना अंहकार को धोना पड़ा। आत्मकथात्मक कथन में अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों की कविता में उनके दुख, दर्द और उनके स्थगित सपनों को व्यक्त करने के लिए केंद्रीय है। यह उनके अनुभव के पीछे की सच्चाई को पाने का एक साधन है। सेल्विन आर. कॉडजोय (1984) ने यह बताया है कि, “The practice of the autobiographical statement until the contemporary era, remains the quintessential literary genre for capturing the cadence of the afro-american being, revealing its deepest aspirations and tracing the evolution of the afro-american psyche under the impact of slavery and modern U.S. imperialism.”⁴⁵¹ अर्थात् समकालीन युग तक आत्मकथात्मक कथन का अभ्यास अफ्रो-अमेरिकन जातियों के तालमेल को बनाए रखने के लिए सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक शैली बनी हुई है, अपनी गहरी आकांक्षाओं को करती है। गुलामी और आधुनिक यू.एस. साम्राज्यवाद के प्रभाव में अफ्रो-अमेरिकन मानस के विकास का पता लगाती है।

अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों के लेखन में एक बदलाव आया। जिसने अमेरिका के लिंगवाद की प्रकृति के बारे में महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाया है। इस प्रकार उन्होंने स्वयं के

⁴⁴⁹ The race for theory- ed. Mari evans, p- 3

⁴⁵⁰ The race for theory- ed. Mari evans, p-415

⁴⁵¹ The race for theory- ed. Mari evans, p-06

अस्तित्व और अश्वेतों के रूप में ध्यान केंद्रित किया। 1970 के दशक के बाद से अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों ने विभिन्न विषयों की खोज की है और विभिन्न रूपों में अपनी प्रतिभा व्यक्त की। साहित्य जगत में पारम्परिक रूप से जो दरवाजे बंद कर दिये थे स्त्रियों के लिए, खास कर श्वेत और अश्वेत पुरुषों के द्वारा। अब वह अपने लेखन के प्रसार और गुणवत्ता के साथ खुलने लगे थे। नब्बे के दशक के मध्य से अफ्रो-अमेरिकन कविता और विशेष रूप से महिलाओं की कविता के माध्यम से, समृद्धि, विषयों की सार्वभौमिकता और तकनीकी परिपक्वता हासिल करना जारी रहा।

सन् 1977 में Barbara Smith ने 'Towards a Black Feminist Criticism' में कहती है कि, "embodies the realisation that the politics of sex as well as the politics of race and class are interlocking factors."⁴⁵² अर्थात् इस एहसास को मूर्त रूप देता है कि सेक्स की राजनीति के साथ-साथ नस्ल और वर्ग की राजनीति भी अंतर्ग्रथन कारक हैं।

सोनिया सांचेज़ (1934) एक मौलिक और गंभीर लेखिका हैं। उनकी कविताएँ अश्वेत और श्वेत लोगों, स्त्री-पुरुष के बीच और संस्कृतिक के बीच के संघर्षों को दर्शाती हैं। वह अपनी भाषा और संरचना में नवीनता का उपयोग करती है। कभी-कभी अपनी कविता में ब्लेक भाषण का भी उपयोग करती हैं। उनमें लोगों को वास्तविक रूप से स्वतंत्र देखने की दृष्टि भी है। 'right on: white American' (1970) उनकी शानदार कविताओं में से एक है।

"this country might have

Been a pio

⁴⁵² Ed. Gloria Hull et al, 1982

Neer land

Once.

But there ain't

No mo

Indians blowing

Custer's mind

With a different

Image of America.”⁴⁵³

निक्की गियोवन्नी एक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रशंसित और सशक्त लेखिका हैं। कम उम्र से ही उन्हें विस्थापन की भावना का अनुभव करना पड़ा। जब उनकी दादी को शहरी नवीकरण द्वारा स्थानांतरित किया गया था।

साठ और सत्तर के दशक के नागरिक अधिकार आंदोलन के साथ उनकी भागीदारी रही। उनकी कविता ‘द टुरू इम्पॉट ऑफ प्रेजेंट डाइलॉग, ब्लैक ब्रसेस निग्रो’ काफी चर्चित रही। सत्तर के दशक के बाद लिखी गई कविता अश्वेत समुदाय के भीतर व्यक्तिगत संबंधों और अस्तित्व पर अधिक केंद्रित है। उनकी सबसे लोकप्रिय, शक्तिशाली और बहुत ही मार्मिक कविता है ‘निक्की-रोज़ा’। कविता अश्वेत परिवारों के प्यार और संबंधों की गहराई के समझ की कमी पर प्रकाश डालती है। श्वेत लोगों के लिए इसे समझना संभव नहीं है। शायद के कभी भी समझ नहीं पायेंगे। अश्वेत लोगों की सच्ची सम्पत्ति और ताकत, गरीबी और अन्य अभावों की परवाह किए बिना, प्यार के इन संबंधों में निहित है। इस कविता में वह लिखती हैं-

“childhood remembrances are always a drag

⁴⁵³ Shake loose my skin: new and selected poems - Sonia sanchez, p- 07

If you're black
You always remember things like living in
Wood lawn
With no inside toilet.
And if you become famous or somethings.”⁴⁵⁴

बहुत कुछ हासिल हुआ है लेकिन अभी-भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। नस्लीय और लैंगिक भेदभाव की आग अभी-भी सुलग रही है और इसे पूरी तरह से खत्म करने की जरूरत है। अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कवयित्रियों ने अपनी शक्तिशाली कविता के माध्यम से अश्वेत लोगों के जीवन को छुआ है और मार्टिन लूथर किंग जूनियर के सपने को साकार करने का प्रयास किया है। अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों की कविताओं का एक उल्लेखनीय पहलू यह है कि वे आज के अमेरिकी समाज में सर्वश्रेष्ठ विषयों में से एक के रूप में व्यापक विषय तक पहुँच गया है। अमेरिकी साहित्य के कई प्रसिद्ध मानव विज्ञान जैसा कि, नॉर्टन एंथोलॉजी और स्वास्थ्य एंथोलॉजी ने अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों को हमारे समय की बेहतरीन कवयित्रियों के रूप में शामिल किया है। निस्संदेह, उन्होंने अमेरिकी साहित्य और विश्व साहित्य में अमूल्य और विशिष्ट योगदान दिया है।

जॉनसन (1988) ने लिखा है कि “As social options increase for Black women, their fictional worlds will expand, developing a repertorie of subjects, themes, forms and genres as seemingly boundless as their gifts for poetry and song.”⁴⁵⁵ अर्थात् सामाजिक विकल्पों में वृद्धि के रूप में अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों के

⁴⁵⁴ www.poetryfoundation.org

⁴⁵⁵ Being and race: Charles Johnson, p-118

लिए उनकी काल्पनिक दुनिया का विस्तार होगा। विषयों और शैलियों की एक सूची विकसित करना जैसा कि कविता और गीत के लिए उपहार के रूप में असीम हो।

अफ्रो-अमेरिकन कविता एक जाति की सौंदर्यवादी रचना है, जैसा कि, कवयित्री ग्वेंडोलिन ब्रूक्स ने व्यक्त किया है, एक विदेशी भूमि 'इट्स फेस ऑल अनशेम्ड' में संघर्ष किया है।

7.6. निष्कर्ष

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविता में अभिव्यक्ति के जो रूप कविताओं के माध्यम से चित्रित किया गया है, मुख्य रूप से स्त्री विरोध, प्रतिरोध और विद्रोह के स्वर भाषा में प्रयोग किया गया है। उन्होंने कविताओं में शब्दों का जाल नहीं बुना है, बल्कि अपनी निजी अनुभूति को काफी साफ शब्दों में व्यक्त किया है। इन दोनों साहित्य की भाषा में केवल नकार और विद्रोह की भाषा नहीं है बल्कि परिवर्तन की छटपटाहट और अंतर्सम्बंधों की ऊर्जा अपने भीतर सँजोए हुए हैं। वह अपनी दुःखद स्थितियों पर संताप व्यक्त करता है। लेकिन अतीत के स्याह में अपनी अस्तित्व को ढूँढ़ना चाहती है।

मुख्यधारा की कवयित्री और दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन कवयित्रियों की कविताओं में जो अंतर देखा गया है, वहीं इनकी पहचान बना है। दोनों क्षेत्र की स्त्रियाँ अपने अनुभव को अपनी नज़र से देख रही हैं। जो उनके साहित्य को एक-दूसरे से भिन्न बनाता है। जाति और रंग की जो गुलामी इनकी कविताओं में देखने को मिलती है वह किसी अन्य साहित्य में नहीं है। अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों की कविताओं की भाषा, उनकी लोक परम्परा की देन है। अतः दोनों ही साहित्य की भाषा स्त्रियों की अनुभूति के साथ जुड़ी हुई है। उनके संघर्ष, बलिदान, त्याग के चेहरे उनकी भाषा में झलकता है।

उपसंहार

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं की संपूर्ण रचनाओं और साहित्य का अवलोकन करने पर यह पता चलता है कि इन दोनों साहित्य की कविताओं में जाति और नस्ल की बात तो की गई हैं, परंतु जो मुख्य रूप से उभर कर आता है, वह उनकी अस्मिता की पहचान है। हमारे समाज में पुरुषवादी सोच के चलते स्त्रियों को तिहरे जीवन जीने पर विवश होना पड़ा। लिंग भेदभाव के कारण पुरुषों ने सदैव स्त्रियों को अपने पैर की जूती ही समझा है। चली आ रही इसी रूढ़िवादी परम्परा को अब दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों ने शिक्षित बनकर अपनी आवाज़ बुलंद कर दिया है। आज दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों के हाथ में अक्षर अस्त्र बनकर युगों-युगों से चली आ रही शोषण व्यवस्था पर प्रहार कर रहे हैं और अपनी भावनाओं को व्यक्त कर रहे हैं।

दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका जैसे पृथ्वी के इन बड़े हिस्सों में सैकड़ों साल से अन्य देशों से लोगों को पकड़-पकड़ कर उन्हें गुलाम बनाया जाता था। यह दासों को खरीदने-बेचने की प्रथा यूरोप और अन्य विकसित राष्ट्रों के लिए बड़ी लज्जा की बात थी। उस कलंक को दूर करने के लिए अंग्रेज, अमेरिकन आदि उदार लोगों ने बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़कर अपने नुकसान की बात तो दूर, उन्होंने अपनी जान की भी परवाह नहीं की और गुलामों की मुक्ति के लिए लड़ते रहे। यह गुलामी की प्रथा कई सालों से चली आ रही थी। इस अमानवीय गुलामी की प्रथा को समूल नष्ट कर देने की वजह से जो यातनाएँ सहनी पड़ी। उससे उन्हें मुक्त करने के लिए संघर्ष किया। जो गुलाम एक-दूसरे से जुदा कर दिये गये थे, उन्हें एक-दूसरे के साथ मिला दिया। यदि आज उन्हें उन गरीब अनाथ गुलामों की बदतर स्थिति देखकर दया न आयी होती, तो वे गरीब बेचारे अपने प्रियजनों से मिलने की इच्छा मन में ही रखकर मर गये होते। अमेरिका के लोगों ने आज सैकड़ों साल से चली आ रही इस गुलामी की अमानवीय परम्परा को समाप्त करके गरीब अनाथ लोगों को उन चंद लोगों के जुल्म से मुक्त करके उन्हें पूरी तरह

से सुख की जिंदगी दी है। इन बातों की शूद्र-अतिशूद्रों को अन्य लोगों की तुलना में बहुत ज्यादा खुशी होगी। क्योंकि गुलामी की अवस्था में गुलाम लोगों को, गुलाम जातियों को कितनी यातनाएँ बर्दाश्त करती पड़ती हैं, इसका स्वयं अनुभव किये बिना अंदाजा नहीं लगाया जा सकता है। जो सहता है, वही जानता है।

भारत में स्वतंत्रता के बाद मराठी में दलित साहित्य पूरे तूफान के साथ सामने आया। तो दूसरी तरफ अश्वेत साहित्य में प्रथम विश्वयुद्ध के बाद अश्वेतों ने अपनी अस्मिता के लिए आँखें खोली हैं। इन दोनों साहित्य ने अपनी ओर पूरे विश्व का ध्यान आकृष्ट किया। इनकी कविता हमारी केवल आज की वैचारिक उथल-पुथल की देन मात्र नहीं है। अपितु अतीत की अनुदारता, वर्तमान की निष्ठुरता और भविष्य की चिंता दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन कविता के केंद्रीय विषय हैं।

दलित कविता का रचनाकार अमेरिका के ब्लैक और दक्षिण अफ्रिका के अश्वेतों के रचनाकार से प्रकारांतर से जुड़ा है। फर्क इतना है कि वह नस्लभेद, रंगभेद के विशेष रूप से संबंध रखता है तो दलित सृजन जातिभेद, वर्णभेद का साहित्यिक परिणाम है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के पास इसके क्रूर नस्लवादी इतिहास का एक जीता-जागता स्मारक है। अमेरिका में सदियों से चले आ रहे अश्वेत उत्पीड़न और देश में नस्लीय हिंसा के शिकार हजारों अश्वेत पीड़ितों को याद में देश का पहला स्मारक 'द नेशनल मेमोरियल फॉर पीस एंड जस्टिस' अलाबा या शहर के मॉन्टगोसरी में 2018 में खोला गया। इस प्रोजेक्ट को शुरू करने वाले संगठन 'इक्वल जस्टिस इनिशिएटिव' का तर्क है कि दो सदी से चली आ रही, गुलामी सिविल वॉर के साथ खत्म नहीं हुई थी। यह उत्पीड़न लिंग, फिर नस्लीय अलगाव, नागरिक अधिकारों के दमन में बदला और उसके बाद नस्लीय आधार पर पक्षपातपूर्ण तरीके से हो रही कैद में बदल गया। दुनिया के कई देशों ने अपने शर्मनाक इतिहास

को स्वीकार है। दक्षिण अफ्रीका ने रंगभेद को कुबूला, जर्मनी ने होलोकॉस्ट का स्मारक बनवाया। कनाडा में शोषण का शिकार हुए मूल निवासियों से माफी माँगी और अमेरिका ने सदियों से अश्वेतों के खिलाफ हुई हिंसा को अब तक कभी इतने स्पष्ट और सार्वजनिक तौर पर स्वीकार नहीं किया।

म्यूजियम के अनुसार 20 लाख अमेरिकी अब भी कैद में है। इनमें ज्यादातर अश्वेत हैं, तीन में से एक अश्वेत अमेरिकी की उसके जीवन काल में एक बार जेल जाने की उम्मीद होती है क्योंकि, एक ही अपराध करने पर किसी श्वेत आदमी की तुलना में उसके दोषी ठहराने की संभावना छह गुना है। म्यूजियम और स्मारक के उद्घाटन के समय नागरिक अधिकार कार्यकर्ता और कांग्रेस नेता जॉन लेविस ने कहा कि, 'अमेरिका के नस्लवादी इतिहास को अनदेखा करना कोई विकल्प नहीं है। कुछ लोगों का कहना है कि ऐसा पहले हुआ था, हमें इसे भूल जाना चाहिए। हम नहीं भूल सकते कि सैकड़ों-हजारों लोगों के साथ क्या हुआ था। हम नस्लीय हिंसा को खत्म करेंगे।'

कवयित्री एलिस वॉकर की रचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि, राष्ट्र कितना भी उन्नतिशील हो, प्रगतिशील हो, औरत के जीवन में कोई अंतर नहीं आता है। 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ', जैसे नारे देने से या लोकतंत्र का वास्ता देने से स्त्री पुरुष में बराबरी नहीं आ सकती। औरत के रंग या शरीर के अवयवों को लेकर उसे अपमानित नहीं कर उसे जीवन के हर क्षेत्र में बराबरी का अवसर मिले, तभी हम स्त्री मुक्ति की कल्पना कर सकते हैं। इसके लिए औरत को खुद से प्रयत्नशील होना होगा। नारीवादी अवधारणा में व्यापक बदलाव नारीवाद की तीसरी लहर के बाद आया। नारीवाद की तीसरी लहर मुख्यतः लैटिन अमेरिकी, एशियाई और अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों से सम्बंधित थी। इस लहर पर उत्तर-आधुनिक विचारधारा का प्रभाव था, जो विभिन्नताओं का सम्मान करती थी। विभिन्नता की अवधारणा के फलस्वरूप ही इस बात पर विचार किया जाने लगा कि एक जैसे सिद्धांत से सभी वर्गों की स्त्रियों की

समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता है। भिन्न-भिन्न वर्गों की समस्याएँ अलग-अलग हैं और इसीलिए उनका समाधान भी अलग ढंग से निकलता है।

तुलनात्मक अध्ययन के दौरान अफ्रो-अमेरिकन और दलित स्त्री कविताओं के साम्य और वैषम्य विशेषताओं को उजागर करके उनके महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाया गया है। इस शोध अध्ययन से न केवल देश बल्कि पूरे विश्व में इन दोनों समाज के यथार्थ को सामने रखा जा रहा है। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कवयित्री की कविताओं के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात तो साफ हो गई है कि दोनों कविताओं का मूल स्रोत एवं भावना एक समान है। मनुष्य की पीड़ा में कोई अंतर नहीं होता है पर यहाँ सवाल स्त्री-पुरुष के लिंग का है। तुलनात्मक अध्ययन के कारण ही यह दोनों साहित्य को एक धरातल पर रखकर आलोचना करना संभव हो पाया है। जबकि दोनों साहित्य का क्षेत्र, देश, काल, वातावरण, भाषा, साहित्य, संस्कृति, परम्परा आदि सब एक दूसरे से भिन्न है। इसके बावजूद तुलनात्मक अध्ययन के कारण ही उनकी सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवेश के साम्य-वैषम्य स्पष्ट हुआ है। विश्व में भावगत एकता की प्रतिष्ठा हेतु तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन महत्वपूर्ण है। विश्व में भावगत एकता की प्रतिष्ठा हेतु तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन महत्वपूर्ण है।

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं का ऐतिहासिक दृष्टि से दोनों साहित्य के इतिहास का जानना आवश्यक है। भारत में वर्ण-व्यवस्था और अमेरिका में रंग भेद के जड़ को मिटाने के लिए साहित्य का माध्यम लिया। सन् 1914 को 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हीरा डोम की 'अछूत की शिकायत' को दलित की सर्वप्रथम कविता का दर्जा दिया जाता है। वहीं अफ्रो-अमेरिकन साहित्य में सर्वप्रथम जो रचना सामने आती है वह लूसी टेरी की 'वार्स फाइट' कविता है। अपने साथ हुए अन्याय, अस्पृश्यता और घृणा भरे जीवन को अभिव्यक्ति करती है। दोनों साहित्य के ऐतिहासिक संदर्भ में जाति, शोषण, वर्ग, गुलामी, नस्ल, रंग, भेदभाव, अमानवीयता, अत्याचार जैसे और भी न जाने कितनी यातनाओं का दस्तावेज

प्रस्तुत करती हैं। कवयित्रियों ने एक नयी इतिहास-दृष्टि को विकसित किया है। इसके पीछे लम्बे समय का इतिहास-बोध है। अनुभव से प्राप्त अंतहीन यातना, समय का ताप तथा इतिहास के दबाव झेलने पड़े हैं। अपने कलम के हथियार से कवयित्रियों ने इतिहास के पन्नों को बदलकर अपनी अस्मिता, अनुभूत के रूप को साझा किया है।

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं के सामाजिक शोषण पर विश्लेषित चर्चा करते इस हुए हम निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि समाज से ही उत्पन्न कई समस्याओं को आज स्त्रियाँ झेल रही हैं। पुरुषवादी समाज ने स्त्रियों को एक पिंजरे में कैद रखा है। जिसकी बेड़ियों को पूरी तरह तोड़ना एक चुनौतिपूर्ण काम है। लिंगगत भेदभाव का शिकार स्त्री के साथ जो भी अन्याय एवं शोषण सदियों से चली आ रही है, उस पर स्त्री आज सवाल उठा रही हैं। कवयित्री रजनी तिलक अपनी कविता 'औरत-औरत में अंतर' में सभी औरतों के दुःख एक समान नहीं है यह कहने का प्रयास कर रही है। पुरुषों को हर तरह की स्वतंत्रता प्राप्त है परंतु बेटी पैदा होते ही, उसे जाति, वर्ग, लिंग के आधार पर कई नियम सुना दिये जाते हैं। मनुष्यता के धरातल पर क्यों दलित एवं अश्वेत स्त्रियों को ही निचले पायदान पर रखा जाता है। समाज में लैंगिक भेदभाव दूरकर, समानता की भावना स्थापित करने पर ही स्त्री को समानता का अधिकार पूर्ण रूप से प्राप्त होगा। यहाँ केवल अस्मिता की बात नहीं है बल्कि स्त्रियों की सुरक्षा भी अत्यंत आवश्यक है।

दोनों ही समाज में जब तक स्त्रियों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण में बदलाव नहीं आएगा, तब तक दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों को सामाजिक संघर्ष करना पड़ेगा। आज स्त्री शिक्षित हो रही है, वह अपने अधिकारों की पहचान करते हुए, इस समाज में आगे बढ़ रही है। दोनों साहित्य की कवयित्रियों ने सामाजिक भेदभाव के चलते समाज में स्त्रियों के साथ हो रहे शोषण को अपनी कविताओं में पूरी तरह से व्यक्त करने का प्रयास किया है। दलित एवं अश्वेत स्त्रियाँ अपने स्वत्वाधिकारों, अस्मिता के लिए किया गया संघर्ष ही उनकी सामाजिक

स्थिति को मजबूत बना सकता है। इसके बिना उनके जीवन में कोई सार्थक बदलाव संभव ही नहीं है।

इक्कीसवीं सदी की स्त्रियाँ काफी हद तक स्वयं आर्थिक रूप से निर्भर नहीं हैं। अर्थ समाज को प्रभावित करता है जिसके कारण दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों को भी कई समस्याओं का सामना करना पड़ा है। कहीं स्त्री संघर्ष कर आगे बढ़ रही है, तो कहीं आर्थिक अभाव के कारण दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं हो पा रही है। समाज और परिवार में स्त्री की आर्थिक सुरक्षा के लिए कानून पास करवाए गये हैं। इन सब के बावजूद दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों की स्थिति में कहाँ तक परिवर्तन आया है, यह हम देख चुके हैं। अमेरिका जैसे राष्ट्र में स्त्री की नैतिकता का नए तरीके से शोषण होता है। अश्वेत स्त्रियों को मनुष्य के रूप में नहीं वस्तु के तौर पर बेचा जाता था। उस समय से आज के समय में काफी परिवर्तन तो आया ही है। भले ही वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो गयी है परंतु लिंग भेद के कारण 'स्त्री' को स्त्री होने का दंड मिलता है। स्त्री के रूप में पैदा होने का मतलब ही पीड़ित, शोषित, शारीरिक-मानसिक शोषण का शिकार हो रही है। इसके बाद भी उन्होंने आर्थिक रूप से स्वावलंबी होकर अपने आत्मविश्वास बढ़ाया है।

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में राजनीतिक षड्यंत्र में केवल स्त्रियों को ही नहीं बल्कि इन कवयित्रियों ने दलित एवं अश्वेत समाज को दिखाया है। उन्होंने लिंग भेद-भाव न कर के समाज में चल रही राजनीति को कविताओं के माध्यम से दिखाया गया है। स्त्रियों की भागीदारी राजनीति के क्षेत्र में पुरुषों के मुकाबले कम रही है। जिसका मुख्य कारण ही पुरुषवादी सोच है जो यह आज भी मानती है कि स्त्री केवल घर संभाल सकती है। डॉ. अम्बेडकर ने हर क्षेत्र में स्त्रियों को आगे बढ़ने की प्रेरणा दी है। वे दलित समाज व स्त्री समाज को शोषण से बचा कर उन्हें सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अधिकार दिलाना चाहते थे। अपने जीवन काल में गहन अध्ययन, चिंतन-मनन करके निष्कर्ष रूप में उन्होंने इस बात को समझा

है कि शिक्षा, संघर्ष और संगठन द्वारा ही दलित स्त्री अपना जीवन सम्मानपूर्वक जी सकेगी। वहीं दूसरी तरफ मार्टिन लूथर किंग जुनियर ने किस प्रकार अफ्रो-अमेरिकन समाज में क्रांति और प्रेरणा का स्रोत दिया। इन्होंने अमेरिकी समाज से रंगभेद और नस्लवाद को हटाने के लिए कई आंदोलन चलाए। पर अभी भी राजनीति के क्षेत्र में स्त्रियों के कदम कम ही देखने को मिलते हैं। जबकि स्त्री पूरे परिवार, समाज और देश संभालने के काबिल है। इसलिए दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों को इस अंधेरगर्दी से स्वयं के लिए राह निकालना पड़ेगा।

धार्मिक कट्टरता, उन्माद का सबसे अधिक प्रभाव स्त्री वर्ग पर ही हुआ है। धर्म एवं संस्कृति का पालन करने के लिए स्त्रियों को मजबूर किया जाता है। चाहे विवाह से पहले हो या विवाह के बाद, हमारी संस्कृति में धर्म को चलाने का ठेका स्त्री के कंधे पर ही है। धार्मिक रूढ़ियों के नाम पर सदियों से स्त्रियों पर अत्याचार किया जा रहा है। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कवयित्रियों ने कविताओं में धर्म एवं संस्कृति के अंधविश्वास पर प्रश्न चिह्न लगाया है। धर्म के नाम पर स्त्रियों को भारत में देवी का रूप मानते हैं और उसी देवी को जाति और लिंग के आधार पर स्त्रियाँ पर शोषण किया जाता है। इसके साथ-साथ उन्हें अपनी संस्कृति से ब्लैक नस्ल को हमेशा दूर रखने की कोशिश की जाती है। अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों ने संस्कृति के कई आधार अपने लिए बनाए। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं का अध्ययन करते हुए धार्मिक एवं सांस्कृतिक यातनाओं पर भी विश्लेषणात्मक रूप से विचार किया गया है।

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविता में अभिव्यक्ति के विविध आयाम में मुख्य रूप से स्त्री विरोध, प्रतिरोध और विद्रोह के स्वर भाषा में प्रयोग किया गया है। इनकी कविताओं का अध्ययन करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि ये कविताएँ मुख्यधारा की कविताओं से किस तरह भिन्न हैं। इन दोनों साहित्य की भाषा में केवल नकार और विद्रोह की भाषा नहीं है, बल्कि परिवर्तन की छटपटाहट और अंतर्संबंधों की उर्जा अपने भीतर संजोए हुए

हैं। वह अपनी दुःखद स्थितियों पर संताप व्यक्त करता है। लेकिन अतीत के स्याह में अपने अस्तित्व को ढूँढना चाहती है। अतः दोनों ही साहित्य की भाषा स्त्रियों के अनुभूति के साथ जुड़ी हुई है। उनके संघर्ष, बलिदान, त्याग का चेहरा उनकी भाषा में झलकता है। इन कविताओं में काल्पनिकता का अभाव है, क्योंकि कविता के हर एक शब्द उनके जीवन के यथार्थ को व्यक्त करती हैं। जन्म से अब तक के संघर्ष को उन्होंने शब्दों में पिरोया है। रंगभेद और जाति भेदभाव के खिलाफ ये रचनाएँ उत्पीड़न और मानवता की सशक्त आवाज़ बन कर उभरी हैं। आज दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं को दुनिया की किसी भी भाषा के उच्चतम साहित्य के समक्ष रखा जा सकता है। इनके पाठक सारी दुनिया में फैले हुए हैं। इन कविताओं का मूल उद्देश्य गुलामी के जीवन, अन्याय, अत्याचार, शोषण की गाथा को उजागर कर 'मानव मुक्ति' की कामना करना है।

हाल में हुई एक घटना का जिक्र यहाँ करना आवश्यक है। 25 मई 2020 को अमेरिका के एक अश्वेत जॉर्ज फ्लॉयड की पुलिस हिरासत में मौत हो गई। एक श्वेत पुलिसकर्मी ने जॉर्ज को हैंड कफ लगाया। इसी दौरान वह पुलिस जॉर्ज की गर्दन पर बैठ गया। जॉर्ज बार-बार पुलिस वाले को कह रहा था कि वह हट जाए, उसे साँस लेने में तकलीफ हो रही है। जॉर्ज के आखिरी शब्द ही यही थे कि 'I can't Breath'। परंतु पुलिस वाले ने उसकी बात नहीं मानी और अंततः उसकी जान चली गई। इस घटना को लेकर विरोध प्रदर्शन अमेरिका के कई शहरों में फैल गया। वॉशिंगटन में तो प्रदर्शनकारी व्हाइट हाउस के बाहर भी इकट्ठा हो गए। करीब 40 शहरों में विरोध प्रदर्शन हुआ और कर्फ्यू लगा दिया गया। अमेरिका में जो हुआ, कहा जा रहा था कि साल 1968 में मार्टिन लूथर किंग की हत्या के बाद से अब तक नस्ल भेद को लेकर इतनी बड़ी हिंसा नहीं देखी गई है। पूर्व राष्ट्रपति बराक ओबामा ने अपने कार्यकाल में समाज की खाई को पाटने की कोशिश की थी। उन्होंने कहा कि साल 2020 के अमेरिका में ऐसा होना सामान्य बात नहीं है।

विरोध प्रदर्शन करने वाले लोगों का कहना था कि पुलिस द्वारा झूठी बातें कही जा रही हैं। हत्या सिर्फ इसलिए हुई क्योंकि जॉर्ज अश्वेत था। उनकी मांग यह है कि सरकार को इसे गंभीरता से लेते हुए दोषी पुलिस वालों को सख्त से सख्त सजा देनी चाहिए। इस घटना के बाद एक बात तो साफ है कि नस्लवाद आज भी कहीं-न-कहीं श्वेत अमेरिकी लोगों के बीच पनप रही है। जिसका शिकार जॉर्ज फ्लॉयड को होना पड़ा। इससे पहले भी अमेरिका में पुलिस के हाथों न जाने कितने अश्वेत अमेरिकी मारे जा चुके हैं। नामों की सूची बहुत लंबी है। मारे गए लोगों में एक साल के बच्चे से लेकर 84 साल के बुजुर्ग तक शामिल हैं। इन सबके बावजूद एक बात ध्यान देने की है कि बेशक रंगभेद का भेदभाव आज भी अमेरिका में जीवित है परंतु वहीं दूसरी ओर श्वेत अमेरिकी लोग कुछ ऐसे भी हैं जो इस नस्लवाद के विरुद्ध आवाज़ उठा रहे हैं। प्रदर्शनकर्ताओं में यह हम साफ तौर से देख सकते हैं कि, केवल सड़कों पर अश्वेत समुदाय नहीं था बल्कि साथ में श्वेत अमेरिकी लोगों ने भी जमकर विरोध प्रदर्शन किया। उदाहरण के रूप में 2009 में अमेरिका के लोगों ने एक अश्वेत को अमेरिका के राष्ट्रपति के रूप में चुना और बराक हुसैन ओबामा ने अमेरिका के प्रथम अफ्रो-अमेरिकन राष्ट्रपति पद की शपथ ली।

अतः दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं के तुलनात्मक अध्ययन के दौरान दोनों ही कविताओं में समानताएँ और विषमताएँ उजागर कर, उनके महत्वपूर्ण मुद्दों को सामने लाने की पूरी कोशिश की गई है। इस अध्ययन से न केवल देश बल्कि पूरे विश्व के धरातल पर इन दोनों समाज के यथार्थ को सामने रखा जा रहा है। आज दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कवयित्री शान से सिर उठाकर, बिना किसी झिझक या शर्म के अपनी बात कहती है। इस शोध कार्य को करने के दौरान दलित एवं अश्वेत समाज का वह यथार्थ सामने आया, जो हमारे देश और अमेरिका के समाज व्यवस्था का आश्चर्यजनक सच है। मेरे लिए यह अनुभव बिल्कुल नया है क्योंकि मेरी पृष्ठभूमि दलित जाति एवं अश्वेत नस्ल से नहीं है। परंतु मैंने पूरी

ईमानदारी के साथ अपना शोध कार्य करने की कोशिश की है। साथ ही यह भी ध्यान में रखा है कि दलित एवं अश्वेत स्त्रियों की पीड़ा, दुःख, अन्याय, अत्याचार, दर्द को सही से अनुभव कर उसकी आलोचना कर सकूँ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

● आधार ग्रंथ सूची

क्रम	पुस्तक नाम	लेखक नाम	प्रकाशन वर्ष	प्रकाशक
1.	दलित चेतना की कविताएँ	रामचंद्र	2011	प्रवीण कुमार (सम्पादक), स्वराज प्रकाशन 4698/1 21 अंसारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली-110002
2.	नील नीले रंग के	हेमलता महिश्वर	2015	शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स वैस्ट गोरखपार्क शाहदरा, दिल्ली-110032
3.	पदचाप	रजनी तिलक	2000	सैंटर फॉर अल्टरनेटिव दलित मिडिया, एडी-118-बी शालीमार बाग, दिल्ली- 110052
4.	पिता भी तो होते हैं माँ	रजत रानी 'मीनू'	2015	वाणी प्रकाशन 4695 21-ए दरियागंज, नयी दिल्ली 110002
5.	बिना किसी भूमिका के	रजनी अनुरागी	2011	आरोही ए-2/1281 सेक्टर-11 रोहिणी, दिल्ली-110085
6.	माँ मुझे मत दो	पूनम तुषामड़	2011	सफ़ाई कर्मचारी आंदोलन 96 पाकेट 8 सैक्टर 22 रोहिणी, दिल्ली-110086
7.	यह तुम भी जानो; तुमने उसे कब पहचाना	सुशीला टाकभौर	2013	स्वराज प्रकाशन 4698/1 21 अंसारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली-110002
8.	रूखसाना का घर	अनिता भारती	2015	स्वराज प्रकाशन 4698/1 21 अंसारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली-110002
9.	समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन (खंड-1)	सं. रजनी तिलक, रजनी अनुरागी	2011	स्वराज प्रकाशन 4698/1 21 अंसारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली-110002

10.	समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन (खंड-2)	सं. रजनी तिलक, सुशीला टाकभौरे	2015	स्वराज प्रकाशन 4698/1 21 अंसारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली-110002
11.	सावित्रीबाई फुले की कविताएँ	सं. अनिता भारती	2015	स्वराज प्रकाशन 4698/1 21 अंसारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली-110002
12.	स्वाति बूंद और खारे मोती; हमारे हिस्से का सूरज	सुशीला टाकभौरे	2014	स्वराज प्रकाशन 4698/1 21 अंसारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली-110002
13.	हवा-सी बेचैन युवतियाँ	रजनी तिलक	2014	स्वराज प्रकाशन 4698/1 21 अंसारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली-110002
14.	And Still I Rise	Maya Angelou	2014	Virago Press, Brown Book Group, London EC4YODY
15.	Collected poems	Alice Walker	2005	Phoenix, Orion Books Ltd, Orion House, 5Upper st Martin's Lane, London
16.	Oh Pray My Wings are Gonna Fit me	Maya Angelou	1975	United States, Random House, New York
17.	Selected Poems	Rita Dove	1996	Tata McGraw-Hill Publishing Company Limited 4/12 Asaf Ali Road, New Delhi- 110002
18.	Shake Loose My Skin: New And Selected Poems	Sonia Sanchez	2000	Beacon Press, 24 Farnsworth Street Boston, MA02210
19.	The Collected	Nikki Giovanni	2007	William Morrow, New

	Poetry of Nikki Giovanni (1968-1998)			York
20.	The Poems of Phillis Wheatley	Phillis Wheatley	2015	Dover Publications, Mineola, New York
21.	The Poetry of Black America	Ed. Arnold Adoff	1973	Harper & Row, Publishers New York, Inc. 10 East 53 rd street, NY, 10022
22.	The World of Gwendolyn Brooks	Gwendolyn Brooks	1971	Harper & Row, 49 East 33 rd street New York- 10016

● सहायक ग्रंथ सूची

क्रम	पुस्तक नाम	लेखक नाम	प्रकाशन वर्ष	प्रकाशक
1.	अफ्रो-अमेरिकन साहित्य स्त्री स्वर	विजय शर्मा	2014	वाणी प्रकाशन 4695 21-ए दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002
2.	अम्बेडकरवादी स्त्री-चिंतन	सं. तेज सिंह	2011	स्वराज प्रकाशन 4698/1 21 अंसारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली-110002
3.	आदमी की निगाह में औरत	राजेंद्र यादव	2001	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि 1-बी, नेताजी सुभाषमार्ग, नई दिल्ली- 110002
4.	इक्कीसवीं सदी की ओर	सं. सुमन कृष्णकांत	2001	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1-बी नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली- 110002
5.	एक अमरीकी	बृज किशोर वशिष्ठ	2008	स्वराज प्रकाशन 4698/1 21

	गुलाम फ्रेडरिक डगलस			अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-110002
6.	और बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा...(खंड1-5)	सं. एल.जी.मेश्राम 'विमलकीर्ति'	2008	राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/13 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-110002
7.	औरत की अभिव्यक्ति एवं आदमी का अधिकार	डॉ.प्रोमिला के.पी.	2004	जवाहर पुस्तकालय हिंदी पुस्तक प्रकाशन एवं वितरक, मथुरा-281001
8.	औरतें और आवाज़ें	क्षमा शर्मा	2005	आलेख प्रकाशन नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
9.	गुलामगिरी	जोतिराव फूले	2011	गौतम बुक सेंटर गली नं.9 हरदेवपुरी शाहदरा, दिल्ली-110093
10.	डॉ.अम्बेडकर: एक पुनर्मुल्यांकन	कंवल भारती	1997	बोधिसत्त्व प्रकाशन सिविल लाइंस रौशन बाग, रामपुर-244901
11.	डॉ.अम्बेडकर के समाजशास्त्रीय विचार	डॉ.डी.आर.जाटव	1996	समता साहित्य सदन इमलीवाला फाटक, जयपुर-302005
12.	डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर	डॉ. सूर्यनाथारण रणसुभे	1998	राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-110002
13.	तुलनात्मक साहित्य	सं. डॉ.नर्गेद्र		नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
14.	तुलनात्मक साहित्य की चुनौतियाँ	सं. प्रो.क्रांति मुदिराज	2008	मिलिंद प्रकाशन4-3-178/2 सुल्तान बाजार, हैदराबाद-500095
15.	तुलनात्मक साहित्य भारतीय परिप्रेक्ष्य	इंद्रनाथ चौधरी	2010	वाणी प्रकाशन 4695 21-ए दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
16.	तुलनात्मक	सं. प्रो.जी.गोपीनाथन	2008	महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी

	साहित्य विश्वकोश (प्रथम खंड-सिद्धांत एवं अनुप्रयोग)			विश्वविद्यालय पंचटीका, वर्धा-442001
17	तुलनात्मक साहित्य हिंदी और उड़िया के परिप्रेक्ष्य में	डॉ. अरुण होता	2008	ज्ञान भारती रूप नगर, दिल्ली-110007
18	दलित और अश्वेत साहित्य: कुछ विचार	सं. चमन लाल	2001	सचिव भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला
19	दलित नारी: एक विमर्श	सं. डॉ. मंजू सुमान	2004	सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली
20	दलित महिलाएँ	सं. ज्ञानेन्द्र रावत	2004	सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली
21	दलित राजनीति की समस्याएँ	सं. राजकिशोर	2006	वाणी प्रकाशन 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली-110002
22	दलित विमर्श के विविध आयाम	डॉ. वीरेंद्र सिंह यादव	2010	राधा पब्लिकेशंस अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-110002
23	दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र	ओमप्रकाश वाल्मीकि	2011	राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-110002
24	दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र	डॉ. शरणकुमार लिम्बाले	2010	वाणी प्रकाशन 21-ए दरियागंज नई दिल्ली-110002
25	दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर	विमल थोरात	2001	अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली
26	दलित साहित्य : दशा और दिशा	माता प्रसाद	2003	भारतीय दलित साहित्य आकादमी माडल टाउन, दिल्ली-110009
27	दलित साहित्य बुनियादी सरोकार	कृष्णदत्त पालीवाल	2009	वाणी प्रकाशन 21-ए दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
28	दलित हिंदी कविता का	श्यामबाबू शर्मा	2017	अनुज्ञा बुक्स वेस्ट गोरख पार्क शाहदरा, दिल्ली-110032

	वैचारिक पक्ष			
29	नारी शोषण और मानवाधिकार	श्री.मंजू शर्मा	2008	राज पब्लिशिंग हाउस परनामी मंदिर, जयपुर-302014
30	नवें दशक की हिंदी दलित कविता	रजत रानी 'मीनू'	2014	दलित साहित्य प्रकाशन संस्था सैक्टर 5-979 आर.के.पुरम, नई दिल्ली-22
31	भारत का संविधान (एक परिचय)	आचार्य डॉ.दुर्गा दास बसु	2019	बिल्डिंग नं.10 डीएलएफ सर्किर सिटी, गुडगाँव-122002
32	भारतीय नारी: समाज के ऐतिहासिक संदर्भों में	सुशीला टाकभौर	2015	अनिरुद्ध बुक्स 19 केवल पार्क आजादपुर, दिल्ली-110033
33	भारतीय साहित्य में दलित एवं स्त्री	सं. चमन लाल	2001	सारांश प्राकाशन प्राइवेट लिमिटेड मयूर विहार-1, दिल्ली-110091
34	भारतीय कवितावादों के कटघरे में	डॉ.वी.कृष्ण	2010	संजय प्रकाशन-4378/4 डी.209 जे.एम.डी.हाऊस अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-110002
35	मनुस्मृति (मानव संहिता)	सं. श्री.भगवतुला सुबहमण्यम्	2011	नवरत्न बुक हाउस रहमान विधि- अरण्डलपेट, विजयवाडा-2
36	विश्व धरातल पर दलित साहित्य	डॉ.सोहनपाल सुमनाक्षर	1999	भारतीय दलित साहित्य अकादमी 233 टैगोर पार्क मॉडल टाउन, दिल्ली-110009
37	समकालीन कविता के सरोकार	डॉ.गुरुचरण सिंह	2000	नवलोक प्रकाशन बी-422/21 भजनपुरा, दिल्ली-110053
38	समकालीन नारीवाद और दलित स्त्री का प्रतिरोध	अनिता भारती	2013	स्वराज प्रकाशन 4698/1 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-110002

39.	समकालीन परिदृश्य में स्त्रीवादीकविता	ओमलता	2014	स्वराज प्रकाशन 4698/1 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-110002
40.	स्त्री: उपेक्षिता	प्रभा खेतान	1992	हिंदी पॉकेट बुक्स प्रा.लि. जे-40 जोरबाग लेन, नई दिल्ली- 110003
41.	स्त्री-कविता: पहचान और द्वंद्व (खंड-2)	रेखा सेठी	2019	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1-बी नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली-110002
42.	स्त्री-कविता: पक्ष और परिप्रेक्ष्य (खंड-1)	रेखा सेठी	2019	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1-बी नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली-110002
43.	स्त्री चिंतन और हिंदी कविता	डॉ. पवन कुमार पाण्डे	2017	ईशा ज्ञानदीप ए.डी.77ए शालीमार बाग, नई दिल्ली- 110088
44.	स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक	मृणाल पाण्डे	1987	राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड जगतपुरी, दिल्ली- 110051
45.	स्त्री नैतिकता का तालिबानीकरण	सं. रमणिका गुप्ता	2014	नवचेतन प्रकाशन प्रतापपुरा शाहदरा, दिल्ली-110032
46.	स्त्री-मुक्ति संघर्ष और इतिहास	रमणिका गुप्ता	2014	सामयिक प्रकाशन जयवाड़ा नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली-110002
47.	स्त्री-लेखन	के.वनजा	2017	अनुज्ञा बुक्स वेस्ट गोरख पार्क शाहदरा, दिल्ली-110032
48.	स्त्री विमर्श कलम और कुदाल के बहाने	रमणिका गुप्ता	2007	शिल्पायन वेस्ट गोरख पार्क शाहदरा, दिल्ली-110032
49.	स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास	सं. डॉ. संजय गर्ग	2014	सामयिक जयवाड़ा नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली-110002
50.	African- American	Ed. Angelyn Mitchell	2009	United States of American, Cambridge

	Women's Literature			University Press, New York
51.	American Literature and Culture	Laxmi Para Suram	1995	Prestige Books, New Delhi- 110008
52.	Black American literature 1760- Present	Ruth Miller	1971	Glencoe Press Beverly Hills, California
53.	Black Culture and The Harlem Renaissance	Cary D Wintz	1988	Rice University Press, Houston, Texas
54.	Black Women's Blues (1934-1988)	Rita B. Dandridge	1992	G.K.Hall & Co. 866 Third Avenue, New York- 10022
55.	Comparative Literature Theory and Practice	Ed. Amiya Dev, Sisir kumar Das	1989	Indian Institute of Advanced Study, Rashtrapati Nivas, Shimla- 171005
56.	Dalits And African-Americans- A Study in Comparison	S.D.Kapoor	2004	Kalpaz Publications, C-30, Satyawati Nagar, Delhi- 110052
57.	Feminism and American Literature	Ed. R.K.Dhawan	1996	Prestige Books, New Delhi- 110008
58.	New Dimensions in Contemporary Literature	Ed. R.K.Dhawan, Shahram R. Sistani	2013	Prestige Books International, New Delhi- 110060

59.	The Health Anthology of American Literature, Volume- A	Ed. Paul Lauter	2006	Houghton Mifflin Company, Boston, New York
60.	Women And Her Family (Indian and Afro-American)	Alladi Uma	1989	Sterling Publishers Private Limited, L-10, Green Park Extension, New Delhi- 110016

● पत्र-पत्रिकाएँ

क्रम	पत्रिका का नाम	सम्पादक नाम	प्रकाशन
1.	दलित अस्मिता	सं. विमल थोरात	अप्रैल-सितम्बर 2015
2.	दलित साहित्य	सं. डॉ. जयप्रकाश कर्दम	वार्षिकी 2013
3.	स्त्रीकाल	सं. संजीव चंदन	अक्टूबर-दिसम्बर 2013
4.	हंस	सं. राजेंद्र यादव	जनवरी-फरवरी 2000

● वेब सामग्री

1. <https://www.wikipedia.org/>
2. www.hindisamay.com
3. www.poemhunter.com
4. www.bbc.com

- परिशिष्ट

1. प्रकाशित शोध आलेख-1

378

विषय-क्रम

पृ.सं.	
5	संपादक
	<u>आलेख</u>
8	छायावाद के सौ वर्ष - डॉ. एम.वेंकटेश्वर
15	अंग्रेजी साहित्य में महिला लेखिकाएँ एवं नारी मुक्ति - डॉ. चन्द्रा मुखर्जी
18	प्रयोजनमूलक भाषा और उसकी व्यावहारिक अनिवार्यता : शैक्षणिक स्तर पर (तेलुगु राज्यों के संदर्भ में) - डॉ. बी.सत्यनारायण
22	जन चेतना के प्रयुक्ता : जी. कल्याणराव का साहित्य - डॉ. जी.वी.रत्नाकर
27	गाँधीवादी चेतना के कवि : हरिवंशराय बच्चन - डॉ.राजीव कुमार
30	गोविन्द मिश्र के उपन्यासों में चित्रित बुंदेलखंड की स्त्रियों का जीवन संघर्ष - अनिल कुमार
33	कमलकुमार और आवर्तन-सैईदा मेहराज
36	नरेन्द्र कोहिली की श्रेष्ठ कहानी "गाडीवान" - बी.एल.सौम्या
39	सुविख्यात शैलीकार : रामवृक्ष बेनीपुरी - राजेन्द्र परदेसी
44	"अन्या से अनन्या" में अभिव्यक्त स्त्री जीवन की विविध छवि - विद्याराम मीना
49	अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में सामाजिक भेदभाव - सुनीता प्रधान
54	कैवल भारती का आलोचना-कर्म और कबीर - घाटे कैलास बळीराम
60	'पोस्टर'(डॉ.शंकर शेष) नाटक में लोकपक्षीय चिंतन और विचारधारा - डॉ. लीना बी.एल
65	"चित्रा मुद्गल का पोस्ट बाक्स नं 203, नाला सोपारा: एक परिचय" - यू. हरिकृष्ण आचार
67	विमर्शों की भाषा के रूप में हिन्दी - कुमार सौरभ
71	दक्खिनी हिन्दी और हिन्दी में अंतर - डॉ. डी.जयप्रदा
76	श्रीकांत वर्मा का काव्य संसार - डॉ.सन्तोष कुमार

अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में सामाजिक भेदभाव

- सुनीता प्रधान

अफ्रीका के लोगों के साथ जो गुलामी की प्रथा जुड़ी रही सदियों से, जिसका मुख्य कारण समाज ही रहा है। अमेरिका समाज ने अफ्रीका के लोगों को गुलाम बनने में तो मजबूर कर दिया। उसके साथ-साथ आज तक कहीं-न-कहीं गोरों के मन में यह भावना बनी हुई है। समाज ही वह डोरी होती है जो लोगों को आपस में जोड़े रखता है। परंतु जब यही समाज कुछ लोगों के लिए वह जेल या कहीं तो नरक बन जाता है तब मनुष्य को जीवन जीने की चाह भी मर जाती है। अफ्रो-अमेरिकन लोगों के जीवन से जुड़ी यथार्थ को साहित्य, कला, संगीत, नृत्य तो प्रस्तुत किया है साथ ही फिल्मों में भी इन्हें उतारा गया है।

इस विषय पर अध्ययन करते समय माने साहित्य को तो पढ़ा ही साथ ही उनके जीवन को और जानने समझने के लिए कुछ फिल्मों को भी देखा। फिल्मों को देखते समय उस सच्चाई और दर्द को मैंने अपने आँखों में महसूस किया। अमेरिका के समाज ने जो नियम-कानून अफ्रीका के लोगों के लिए लगाया था वह इंसानी सभ्यता की पहचान ही मिटा दी। मानव का दूसरे मानव के प्रति इतनी अमानवीय अत्याचार क्रूरता के सभी बंधनों को तोड़ देता है।

हम यहाँ पर अफ्रो-अमेरिका स्त्री के साथ हुए सामाजिक अत्याचारों और समस्याओं पर बात करेंगे। अमेरिका के लोगों ने जब अफ्रीका के लोगों को गुलाम बनाया तो उन्होंने स्त्री-पुरुष में कोई भेदभाव नहीं किया। दोनों को एक समान यातनाएँ दी। स्त्री सोचकर भी उन्हें बकसा नहीं, बल्कि स्त्रियों के साथ तो दोहरा शोषण होता रहा। आलोचक हस्टन ए.वेक कहते हैं कि ए क्रिटिक्स फंक्सन मस्ट अल्सो वी पेड टू द सोसियोलोजीकॉल कॉन्डिशनिंग ऑफ क्रिटिसिज़्म एज ए मीन ऑफ प्रोवाइडिंग सेफगार्ड एगेंस्ट एन अलाइन ओरिएंटेशन ऑफ जजमेंट ओर ईवालुएशन ए फेक्टर ऑफ विडिच द क्रिटिक मे रीमेन व्लिसफूली ऑनएवारा।

हस्टन ए.वेक ज्यूनिअर का कथन ध्यान में लिया जाए तो यह कहना उचित होगा कि जिस साहित्य की आत्मा ही 'समाज' और 'सामाजिक समस्या' है, उस साहित्य के आकलन के लिए इस समस्या पर बात करना अत्यंत आवश्यक है।

अश्वेत के गुलामी का मुख्य और एक मात्र कारण उनका रंग है। अमेरिका के लोगों ने इसी बात के कारण ही उन्हें सदियों से गुलामी का जीवन जीने में मजबूर कर दिया। क्या केवल रंग के आधार पर मनुष्य के साथ अत्याचार किया जाता है? इन सवाल का जवाब अमेरिका के मूल निवासियों के पास नहीं होगा। 'रंग' केवल त्वचा का ऊपरी भाग है। जो कभी भी मनुष्य की पहचान बन नहीं सकता है। मनुष्य की पहचान उसके स्वभाव, काविलियत और व्यवहार से करना चाहिए। त्वचा का रंग 'गोरा' या 'काला' होने से वे मालिक और गुलाम नहीं बन जाते हैं।

एलिस वॉकर अपनी कविता 'विदाउट कॉमर्सियाल्स' में लिखती हैं -

स्टोप ब्लीचिंग

योर रिक्न

एंड टॉकिंग

एवाऊट

सो मच ब्लैक

इज़ नॉट वेड

एट ऑल

देयर आर ब्लैक नाइट्स

वेट रॉक

अस

इन ड्रीम्स

ओर इफ यू मस्ट,

ब्लीच ओनली वीकज़ इट प्लीज़स यू

टू वी ब्राऊन,

टू वी एवल टू सी फ़ॉर एज़ लॉग

एज़ यू केन वीयर इट

द होल वॉलर्ड्स

लाइटर फेस रीफ्लेक्टेड

इन योर ऑन।²

कवयित्री ने इस पंक्तियों में अपनी बात काफी साफ शब्दों में प्रस्तुत किया है। हमारे रंग की व्यावसायिक रूप न देकर उसकी सच्चाई को जानना चाहिए। कविता के आरंभ में कवयित्री गोरे रंग के बारे में बताती है कि गोरा रंग बुरा नहीं बल्कि सुवह का प्रतीक है। जो हमारे दिन को उजाले से भर देती है साथ ही सौवला रंग उस गर्मी में उस सूरज की रोशनी की तरह है जो आपके आँखों में पड़ते ही पूरी दुनिया अँधेरी नज़र आती है।

कवयित्री अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों को कहती है कि अपने चेहरे को निखारना बंद करो और यह कहना कि कालारंग सुंदर नहीं होता। कालारंग या त्वचा कहीं से बदसूरत नहीं है। काली-अंधेरी रात जो हमारे सपनों को रींदती है उससे लड़ो। कुछ ऐसा करो जिससे पूरी दुनिया तुम्हारे चेहरे से चमके। बेल ह्यूक्स ने एलिस वॉकर के 'कॉलर पर्पव' और 'थार्ड लाइफ' टोनी मॉरीसन की 'सूला' और वाम्बारा की 'द सल्ट इटर्स' (1980) इन रचनाओं में लेखिकाओं के योगदान के बारे में लिखते हैं कि, 'दे स्ट्रगल वाई ब्लैक फीमेल कैरेक्टर्स फॉर सब्जेक्टिविटी, दो फोर्ज्ड इन रेडिकल रेसिस्टांस द द स्टेट्स युजवाली टेक्स द फॉर्म ऑफ ब्लैक वीमेन ब्रेकींग फ्री फ्रॉम वाउंडेरिज़ फॉर टेमसेल्व्स।'³

एलिस वॉकर ने कई उपन्यासों, कहानियों, निबंधों और कविताओं की रचना की है। उनकी प्रसिद्ध कृति 'कलर पेपर' (उपन्यास) स्त्री शक्ति के दस्तावेज के रूप में समाने आया है। उनका कहना है कि अधिकांश पुरुष यातना की जिस सीमा को छू सकते हैं बहुत सी स्त्रियों के लिए गर्भपात का अनुभव उससे कई अधिक पीड़ादायक है। यह दया और आत्म रक्षा का काम है।⁴ उनकी इन पंक्तियों में स्त्रियों की शक्ति व्यक्त होती है जो पुरुषों के मुकाबले कई अधिक होता है। पुरुष यह बात अकसर भूल जाते हैं कि उनका वजूद स्त्रियों के वजह से है। श्वेत लोगों ने अश्वेत स्त्रियों के साथ केवल रंग के आधार पर शोषण किया। स्त्रियों की स्थिति हर समाज में एक सी है। स्त्री के चरित्र हमेशा अग्नि परीक्षा देने की आवश्यकता पड़ती है। इन सवालों का जवाब न तो भारतीय पुरुष के पास है तो न ही अश्वेत पुरुषों के पास होगा।

गेंडोलिन ब्रूक्स अपनी कविता 'बेल्ड ऑफ पॉल मे ली' में लिखती हैं -

एट स्कूल, योर गार्ल्स वेर द ब्राइट लिटिल गार्ल्स

यू कूडन्ट एवाइड डार्क मीट

यलो वाज़ फॉर टू लूक एट,

ब्लैक फॉर द फेमिश्ड टू इट

यलो वाज़ फॉर टू लूक एट,

ब्लैक फॉर द फेमिश्ड टू इट

यू ग्रीऊ अप विथ ब्राइट्स स्कीस् ऑन द ब्रेन,

एंड मी इन योर ब्लैक फोक्स बेड

कवयित्री ने रंग भेद के कारण समाज में जो गुलामी की प्रथा कायम है उस समस्या को कविता में प्रस्तुत किया है। श्वेतों की सोच में ही काले और गोरे रंग को लेकर जो भेदभाव बैठ गया है, उसे निकालना बहुत मुश्किल है। जीवन में जितने अभाव, कष्ट और दुःख हो सकते हैं, अश्वेत स्त्री का जीवन उन सब से परिपूर्ण रहा है।

जितनी घृणा, अपमान, अन्याय और अपेक्षा उसने सही है वह अमेरिकी समाज की असभ्यता, अमानवीय और वर्चस्व का इतिहास बयान करता है। अश्वेत स्त्रियों का दमन, शोषण और उनको दी गयी शारीरिक मानसिक यंत्रणायें समाज के माथे पर एक बड़ा कलंक है। कोई भी सभ्य समाज अपने इस प्रकार के व्यवहार पर कभी गर्व नहीं कर सकता, सिर्फ शर्मसार हो सकता है।

यहाँ बात छोटे समाज की नहीं है बल्कि एक विशाल देश के सामाजिक मानसिकता की जाएगी। अमेरिका का समाज अपने में ही कई समाजों को लेकर बना है। पर इन सभी समाज का सोच एक ही तरह है जो मनुष्य को रंग या नस्ल के आधार पर बाँटते हैं। श्वेत लोगों ने अश्वेत पुरुषों के साथ जैसा व्यवहार और अत्याचार किया, वैसा अत्याचार स्त्रियों के साथ नहीं किया गया। बल्कि उससे भी अधिक शोषण का शिकार स्त्रियों को होना पड़ा। इसका कारण केवल एक ही है कि वह स्त्री है। समाज के नियम स्त्रियों के लिए पूरे विश्व में एक जैसे ही हैं। चाहे भारत में हो या अमेरिका में उसे केवल एक ही निगाह से देखा जाता है। माया एंजेलो की कविता 'प्रीजनर' में लिखती हैं-

ब्लैक नाइट द मी
 माइ सेल्फ ऑफ मी स्लीक्स
 इन द फ्लोइस एंड हीस्टोरी
 ऑफ फीयर। टू सीक्रेट होल्ड
 मी डीप एंड क्लोज़ माइ
 इयर्स ऑफ लूल्स एंड डेंग्स
 एंड मेमोरी ऑफ हेट
 देन नाइट एंड स्लीप
 एंड ड्रीम्स
 इट्स जेल एंड बेल
 देन रेल्स टू रन⁶

सामाजिक क्रूरता में बंधी है अश्वेत जीवन। जीवन-मुक्ति की कामना और इस गुलामी की जंजीर को तोड़ना चाहते हैं। गुलामों के जीवन की सबसे बड़ी विवशता है कि उन्हें इस गुलामी के जीवन से आज़ादी तो मिल गई है परंतु वह शोषण, अत्याचार, दर्द आज तक रातों को सोने नहीं देता है। कविता में अश्वेत स्त्रियों की यादों में नफ़रत, घृणा ही भरा हुआ है। उनकी रातें बुरे सपने की तरह बीतती हैं। माया एंजेलो ने अपनी कविता के माध्यम से खुद के अनुभव से जुड़ी यथार्थ को उजागर किया है। उनकी कविताओं में नस्ल और लिंग से जुड़ी समस्याओं से लड़ती, संघर्ष कर रही अश्वेत स्त्रियों की कहानियाँ हैं। कवयित्री ने हर कदम पर संघर्षों के थपेड़ों में मुकाबला करती रही, चाहे बचपन में अपनी माँ के प्रेमी द्वारा बलात्कार का शिकार होने की दुर्घटना हो, युवावस्था में अनजाने में ही गर्भवती होने की घटना हो आदि उन्होंने सभी परिस्थितियों में उभरी और उसके बाद अधिक जुझारु होकर जीवन का सामना करती रही।

डब्ल्यू.ई.वी. डुबोइस ने 'द सोल्स ऑफ ब्लॉक फॉक' में लिखते हैं कि, नीग्रोज़ ऑफ ट्रेनिंग एंड इंटेलिजेंस हू हेड हिदेर्तो प्रीटेंडेड टू रीगार्ड द रेस प्रोब्लेम एज ऑफ स्ट्रीक्टली पर्सनल कनसर्न एंड हू सॉट इंडिविजुअल सलवेशन इन एकीड ऑफ एटेचमेंट एंड साइलेंस फाउंड ए बोंड इन देयर कमन ग्रीवेंस एंड ए लांगुएज थॉ ह्विच टू एक्सप्रेस देम⁷।

एलिस वॉकर अपनी कविता 'थीफ' में लिखती हैं -
 आइ विश टू ऑन ओन्ली द वार्म्थ
 ऑफ योर स्कीन
 द साउंड योर थोट्स मेक
 रीवरबीरिटिंग ऑफ द कोल्डनेस
 ऑफ माइ लोस
 टू लोव यू पीयर्ली
 एज आइ लोव ट्रेस एंड

द क्वाइट शीस एंड

कलर्स

ऑफ माइ हाउस*

कवयित्री ने इन पंक्तियों में प्रकृति से उसकी खूबसूरती और सच्चाई को चोरी करना चाहती है। समाज में मनुष्य के मन में जो क्रूरता की भावना है वह प्रकृति में नहीं होती है। प्रकृति के लिए हर कोई एक समान होता है चाहे वह श्वेत हो, अश्वेत हो या स्त्री हो। श्वेतों के साथ-साथ अश्वेत पुरुषों ने भी अश्वेत स्त्रियों पर शोषण किया। जहाँ एक तरफ अफ्रो-अमेरिकन स्त्री स्वयं के लिए समाज से लड़ती रही, वहीं उसे अश्वेत पुरुषों से भी लड़कर सामने आना पड़ा। एलिस वॉकर ने कई उपन्यासों, कहानियों, निबंधों और कविताओं की रचना है। उनकी प्रसिद्ध कृति 'कल पर्पल' (उपन्यास) स्त्री शक्ति दस्तावेज के रूप में सामने आया है। उनका कहना है कि अधिकांश पुरुष यातना की जिस सीमा को छू सकते हैं बहुत-सी स्त्रियों के लिए गर्भपात का अनुभव उससे कई अधिक पीड़ादायक है यह दया और आत्मरक्षा का काम है।*

समाज लोगों से बना है पर जब उसी समाज के अपने नियम-कानून से लोगों का जीवन किसी तर्क से कम न हो तो वह समाज, समाज नहीं रहता है। नस्ल या रंग के कारण अश्वेत लोगों को समाज में मनुष्य की तरह नहीं बल्कि एक गुलाम की जिंदगी मिली।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. हस्टन ए बेक - जुनिअर/ रीडिंग ब्लैक : एसेज इन द क्रिटिसिज्म ऑफ आफ्रिकन,

केरिबीन एंड ब्लैक अमेरिकन लीटरेचर, पृ.2

2. हर ब्लू बोडी एन्थ्रॉपिंग वी नॉ - एलाइस वाकर, पृ-381. 382

3. वेल हूक्स, रीवोलुसनरी ब्लैक वीमेन : मेकिंग आउर सेल्स सबजेक्ट, एडिटर पॉल

ई.लोगान, पृ.56

4. अफ्रो-अमेरिकन साहित्य स्त्री स्वर - विजय शर्मा पृ.259

5. द वाल्ड ऑफ गैडलीन ब्रूक्स, पृ.45

6. ओह प्रे माइ विंग्स आरे गोन्ना फिट मी वेल - माया एंजेलो, पृ.50

7. सैंडर्स रेडींग इन इंट्रोडक्सन टू द स्टडी ऑफ द सोल्स ऑफ ब्लैक फॉक बाइ डब्लू.ई.बी.

डूवोइस चिकागो, 1931, पृ.ix

8. हर ब्लू बोडी एन्थ्रॉपिंग वी नॉ, एलिस वाकर, पृ.224

9. अफ्रो-अमेरिकन साहित्य स्त्री स्वर - विजय शर्मा, पृ.259

संपर्क-सूत्र :- शोधार्थी, कमरा नं.241, महिला छात्रावास-3, हैदराबाद विश्वविद्यालय,
हैदराबाद-500046, तेलंगाना। मो:7382549521

अक्तूबर-दिसंबर 2018 / 53

2. प्रकाशित शोध आलेख-2

ISSN: 2394 5303 | Impact Factor 4.002(IJIF) | *Printing Area™ International Research Journal* | January 2018 | Issue-37, Vol-05 | 01

आंतरराष्ट्रीय बहुभाषिक शोध पत्रिका

प्रिंटिंग एरिया

Printing Area International Interdisciplinary Research
Journal in Marathi, Hindi & English Languages
January 2018, Issue-37, Vol-05

Editor

Dr. Bapu g. Gholap

(M.A.Mar.& Pol.Sci.,B.Ed.Ph.D.NET.)

Co-Editor

Dr. Ravindranath Kewat

(M.A. Ph.D.)

“Printed by: Harshwardhan Publication Pvt.Ltd. Published by Ghodke Archana Rajendra & Printed & published at Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.,At.Post. Limbaganesh Dist,Beed -431122 (Maharashtra) and Editor Dr. Gholap Bapu Ganpat.”



Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.

At.Post.Limbaganesh,Tq.Dist.Beed
Pin-431126 (Maharashtra) Cell:07588057695,09850203295
harshwardhanpubli@gmail.com, vidyawarta@gmail.com

Reg.No.U74120 MH2013 PTC 251205

All Types Educational & Reference Book Publisher & Distributors / www.vidyawarta.com

27) उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयों एवं सम्बद्ध महाविद्यालयों में संगीत शिक्षण की..... Dr. Payal Chaturvedi, BAREILLY (UP)	99
28) इक्कीसवीं सदी में स्त्री समस्याएँ, (जयश्री राँय की कहानियों के संदर्भ में) बनजा तालदी, गच्चीबौली, हैदराबाद	104
29) ग्रामीण विकास में पंचायती राज व्यवस्था की भूमिका अभिषेक त्रिपाठी, वर्धा	108
30) प्राचीन भारत का दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों के साथ व्यापारिक और औपनिवेशिक.... डॉ मनोज कुमार सिंह, छावनी, टेकारी, जिला-गया, बिहार	112
31) नगरीय भारत में धर्म : आस्था एवं परिवर्तन डॉ. अर्चना सिंह, गोरखपुर (उ.प्र.)	114
32) हिंदी कविता में चित्रित स्त्रीवादी सामाजिक सरोकार गीतांजली साहू, गच्चीबौली, हैदराबाद	118
33) कथाकार चन्द्रकांता व स्त्रीवादी लेखन कुसुम चौधरी, जयपुर	122
34) उत्तराखण्ड की थारू जनजाति का समाज एवं जनजीवन : एक अध्ययन — डॉ. दीपक कुमार, रूड़की—हरिद्वार	124
35) दलित एवं अपरो—अमेरिकन स्त्री कविताओं में स्त्री चेतना सुनीता प्रधान, हैदराबाद, तेलंगाना	129
36) वर्तमान उच्च शिक्षा की परीक्षा प्रणाली में सुधार डॉ. सुश्री भारती भट्ट, श्री धनराज पाटील, सेंधवा	131
37) भारतीय समाज और राम सविता रानी ठाकुर, जम्मू	134
38) सरदार सरोवर परियोजना से डूब प्रभावित सांस्कृतिक धरोवर का विश्लेषणात्मक डॉ तोताराम पटेल, धरमपुरी धार (म प्र)	138
39) 'पश्चिम निमाड़ जिले में बैंकों द्वारा औद्योगिक वित्त' डॉ. लता राठौर, वानियावाड़, गुजरात	143

35

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में स्त्री चेतना

सुनीता प्रधान

पीएच.डी, शोधार्थी

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाना

विश्व के इतिहास में दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में स्त्री अस्तित्व की पहचान है। इन दोनों साहित्य का समन्वय उनका यथार्थ की गाथा सुनना है। जहाँ दुःख और दर्द के अलावा कुछ मिला ही नहीं। अपने अस्तित्व के लड़ाई में साहित्य को अपना हथियार बनाया और इस हथियार ने आज इन दोनों साहित्य को एक अलग पहचान दी है। देश और दुनिया के सभी कोनों में अपनी बात पहुँचाई है। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों ने अपनी बुनियाद को साबित किया है कि मनुष्य में स्त्री-पुरुष, रंगभेद, जातिप्रथा के भेदभाव को समाप्त कर एकता स्थापित करना है। इन्होंने अपनी सच्चाई को साहित्य के हर पन्ने पर उजागर किया है। कविता एक वह आधार है जिसके चार पंक्तियों में ही दुनिया को समा लिया है। छोटा मुँह बड़ी बात की इस प्रक्रिया ने स्त्री चेतना जागृत करने में कई सफलता पाई है। ग्वेंडोलिन ब्रूक्स अपने अफ्रो-अमेरिकन कवयित्री होने की बात को इस तरह व्यक्त करती हैं, "समटाइम्स देयर इज ए क्वारेल् केन पोएट्री बी 'ब्लैक'? द फेक्ट देट ए पोएट इज ए ब्लैक मीनस देट हिज लाइफ, हिज पोएट्री एण्ड द हिस्टोरिज ऑफ हिज एंसेस्टोरस हेव विन डिफ्रेंट फ्रम द हिस्टोरिज ऑफ चाइनिज, जापानिज पोएट्स। एस्कीमो पोएट्स, इंडियन पोएट्स, इरीस पोएट्स...द पोएट्री फ्रम ब्लैक पोएट्स इनसाइड इट आर डीफ्रेंट विससेस एण्डआउट राइटनेस।"

यह वस्तु स्थिति है कि दलित साहित्य और

अश्वेत साहित्य हमारे दुनिया का दर्पण हैं। जो देखा, अनुभव किया, मांगा जाना, समझा उसका अंकन उत्कृष्टापूर्वक हुआ है। आज के वैज्ञानिक युग में नारी और पुरुष के चरित्र के मापदंड अलग-अलग हैं। विडम्बना यह है कि नारी के लिए सदियों पूर्व गढ़ी गई पुरुष-प्रधान समाज-व्यवस्था द्वारा घटिया व दकियानूसी मान्यताएँ आज भी जस की तस मौजूद हैं दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों ने जब स्वयं को पहचाना, तब अपने अस्तित्व के वजूद को बनाने के लिए काफी संघर्ष किया। लेकिन एक स्त्री अपने ही वजूद की पहचान से डरती भी है कि वह एक स्त्री है। कवयित्री सुशीला टाकभैर अपनी कविता 'स्त्री' में लिखती हैं —

“वह सोचती है

लिखते समय कलम को झुका ले

बोलते समय बात को संभाल ले

और समझने के लिए

सबके दृष्टिकोण से देखे

क्योंकि वह एक स्त्री है।”

गुलामी का जीवन तो पुरुषों ने भी सहा था किंतु स्त्रियों के लिए तो दोहरा अभिशाप है। परिवार और समाज दोनों के यातनाओं का शिकार बनी। समय के साथ-साथ उन्होंने भी स्वयं के लिए लड़ना सिख लिया। समाज में स्त्री जाति पर होने वाले शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार, अन्याय और पैशाचिक कार्यों को रोकने के लिए समानता, स्वतंत्रता और शोषण के विरुद्ध मौलिक अधिकारों का प्रावधान भारतीय संविधान में किया गया है। इतना ही नहीं, स्त्री जाति को मानवीय अधिकार दिलाने के लिए राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर महिला आयोगों की स्थापना भी की गई है, लेकिन समाज में स्त्रियों की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं आया है। यदि कारण कार्य के नियमानुसार स्त्रियों की इस स्थिति का कारण खोजा जाए, तो ज्ञात होता है कि इसका मुख्य कारण भारत में मनु की व्यवस्था है, जिसने स्त्री समाज की समानता और स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा दिया था। इस संदर्भ में मनु का कथन विशेष तौर पर उल्लेखनीय है, वह कहता है —

“पुरुषों को चाहिए कि वे अपने अधीनस्थ स्त्रियों को कभी स्वतंत्र न रहने दें। वे विदित विषयों में लगी हुई

भी अपने वंश में रहे, ऐसा यत्न करें। कुमारी अवस्था में पिता उसकी रखवाली करता है, युवावस्था में पति और बुढ़ापे में पुत्र उसकी रक्षा करते हैं। स्त्री का सर्वथा स्वतंत्र रहना योग्य नहीं।”

भारतीय समाज की पुरानी एवं रूढ़िवादी परम्परा के चलते स्त्रियों की स्थिति आज इसप्रकार हो गयी है। परंतु अमेरिका में कोई परम्परा या अंधविश्वास के विचार नहीं थे। वरन् वहाँ तो केवल रंग के आधार पर इतना बड़ा इतिहास रचा गया। किसी भी व्यक्ति का रंग उसकी पहचान बन नहीं सकता। परंतु अमेरिकी लोगों ने इसे अपना हथियार बनाकर अश्वेत स्त्री और पुरुषों को अपना गुलाम बनाया। रंग चाहे गोरा हो या काला मनुष्य की पहचान अपने कर्म से होनी चाहिये। अश्वेत स्त्रियों को जानवर और स्त्री दोनों समझा गया। श्वेत पुरुषों ने अपनी वासना का शिकार बनाया, तब उन्हें रंगों में कोई अंतर नजर क्यों नहीं आया? कवयित्री एलिस वॉकर ने अपनी कविता ‘ही सेड कॉम’ में कहती है कि,

“ही सेड कम
लेट मी एक्सप्लोएट यू
समबोडी मस्ट डू इट
एण्ड वूडनट यू
प्रिटर ए ब्रदर ?
कम, शो मी योर फेस,
अल स्केयर्ड विथ टियर्स
अनबर्डेन यर हार्ट—
बिफॉर द ऑपचुनिटी
पास्से अवे।”

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों ने अपनी कविता में केवल वही लिखा जो समाज और परिवार ने उन्हें दिया। ग्वेंडोलिन ब्रक्स ने व्यक्त किया है, “आइ गेट एबाउट सार्कुमस्टेंस देट हेव बीन इंप्लुएंस् वाई हरीबल हेपेनिंग्स इन आउर सोसाइटी।”

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्रियों को धीरे-धीरे पूर्व संस्कारों के कीचड़ से निकलना पड़ेगा। यह क्रांतिकारी परिवर्तनवादी दलित एवं अश्वेत साहित्य का सिलसिला है। अब परिवर्तन आना जरूरी है। अपमान, तिरस्कार के जीवन को छोड़कर अब नई पहचान की ओर बढ़ना है। स्वयं के साथ-साथ पूरी दुनिया की स्त्रियों के लिए संघर्ष करना है। क्रांति लाने के लिए यह आवश्यक है कि अमेरिकी स्त्रियों के

अंदर वह ज्योति जागृत की, जिसके प्रकाश से पुरे दुनिया जगमगा उठी है।

‘पढ़ो मनुस्मृति

उलट महाभारत, पलट रामायण।

पढ़ कानून

मिट्टा तिमिर, लगा हलकार।

पढ़ समाजशास्त्र, बन सावित्री

शिक्षा का परचन।”

‘शिक्षा का परचम’ कविता में कवयित्री ने कुछ शब्दों में ही अपनी बात बड़े पैमाने से सामने रखा है। इस कविता में शिक्षा के महत्व को समझने के लिए वैदिक काल से उदाहरण देते हुए समकालीन समय तक पहुँच गयी है। दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में अब मुक्ति की आशा दिखाई देती है। सदियों से झेल रही इस गुलामी की प्रथा को समाप्त कर समता की भावना फैलाना चाहती है। अब अपने अधिकार के लिए पीछे नहीं हटेगी। गिरगी, उठेगी और अपने लिए लड़ेगी जरूर।

“यू मै शूट मी विथ योर वोईस,
यू मै कट मी विथ योर आइज,
यू मै किल मी विथ योर हेडफुलनेस,
बट स्टिल, लाइक एयार,
आइ विल राइज।”

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में जीवन जीने का हौसला देती है। दमन-शोषण के खिलाफ सिर उठाकर खड़े होने की चिख देती है। यह कविताएँ प्रेरणा शक्ति का काम करती है। इन्हें पढ़कर हम स्वयं को पहचानते हैं।

दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन साहित्य शाब्दिक चमत्कार उत्पन्न करने मात्र के लिए कविता नहीं है, बल्कि उसका सीधा संबंध मानव के लोकतांत्रिक अधिकारों से है और यही व्यक्ति के जीवन को बेहतर बनाने की मांग भी है। शब्दों के गहन अर्थ या शब्दजाल के सौंदर्य की पक्षधर वह नहीं है, बल्कि सीधे-सीधे उसके वंद में व्यक्ति की चिंताएँ होती हैं। इस प्रकार समाज और देश में समता की पक्षधर दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं राष्ट्रीय एकता का आधारभूत स्वर है।

अपने साथ हुए अन्याय, अस्मृश्यता और घृणा भरे जीवन को अभिव्यक्त करती हुए दलित एवं अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताएँ हैं। कवयित्रियों ने एक

नयी इतिहास—दृष्टि विकसित की है। यह कोई शून्य में विकसित नहीं हुई है। इसके पीछे उनका लम्बे समय का इतिहास—बोध है, अनुभव से प्राप्त अंतहीन यातना, समय का ताप तथा इतिहास के दबाव झेलने पड़े हैं। इन्हीं इतिहास—दृष्टि का अंजन प्राप्त हुआ है। दलित एवं अफ्रो—अमेरिकन स्त्री लेखन आज प्रौढ़ता तो प्राप्त हो चुका है। वह अपनी नस्ल, अपनी संस्कृति को लेकर गर्वित है। शान से सिर उठाकर, बिना किसी झिझक या शर्म के ये रचनाकार अपनी बात कहती है। इन्होंने समीक्षकों को बाध्य किया है कि इनमें काम का मूल्यांकन इनके कार्य की शक्तों पर हो, किसी अन्य मूल्यों के द्वारा इनके कार्य को न जाँचा जाए। इनके अनोखे अनुभवों को दूसरों के तरजू पर न तोला जाए। आज इनकी रचनाओं को न दुनिया की किसी भी भाषा के उच्चतम साहित्य के समक्ष रखा जा सकता है। इनके पाठक सारी दुनिया में फैले हुए हैं। आलोचक उनको अनदेखा करने की हिम्मत नहीं कर सकते हैं। साहित्य ने इन्हें इतना सम्मान दिलाया है कि आज इन्हें भाषण देने और अनुभव साझा करने के लिए बुलाया जाता है। आज दलित एवं अफ्रो—अमेरिकन स्त्री के लिए लिखने—पढ़ने के अवसर पूरी तरफ से उपलब्ध हैं। संचार और सूचना के तमाम साधन इनको हसिल हैं। समाज में जब तक असमानता, अत्याचार, दमन है, तब तक इनकी कलम रुकने वाली नहीं है।

संदर्भ
१. ग्वेंडोलिन ब्रूक्स/ इंट्रोडक्सन, ब्लैक वर्ड्स
वेट से, डंट क्राइ स्क्रीम, बाई डोल्ली

२. सुशीला टकभौर — मेरे काव्य—संग्रह —
यह तुम भी जानो रू तुमने उसे कब पहचान, पृ—३९

३. मनुस्मृति, ९/ २, ३

४. एलिस वॉकर— कॉलेक्टेड पॉएम्स, हार
व्यू बडी एन्थ्रॉपिंग वि.नॉ आर्थिंग पोएम्स १९६५—१९९०,
पृ—२१३

५. ग्वेंडोलिन ब्रूक्स/ इंट्रोडक्सन— ब्लैक
वर्ड्स वेट से, डंट क्राइ स्क्रीम, बाई डोल्लीक पदचाप
— रजनी तिलक, पृ—१६

६. एण्ड स्टिल आइ राइज—माया एंजेलो,
पृ—४२

वर्तमान उच्च शिक्षा की परीक्षा प्रणाली में सुधार

प्राचार्य डॉ. सुश्री भारती भट्ट

व्याख्याता— श्री धनराज पाटील

(स्वामी विवेकानंद शिक्षा महाविद्यालय, सेंधवा)

भारत में उच्चशिक्षा व इसकी वर्तमान परीक्षा प्रणाली की स्थिति को लेकर बहुत ही असंतोषजनक स्थिति ही नहीं बरन् खतरे की घंटी बजने की स्थिति तक संभावनाएँ बन गयी है।

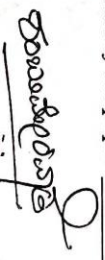
कोटारी आयोग के अनुसार, 'वर्तमान भारत में प्रचलित उच्चशिक्षा की दुर्व्यवस्था अंग्रेजी की देन है और इस दुर्व्यवस्था का हमारी अर्वाचीन व्यवस्था से कोई लेन—देन नहीं है। उच्च शिक्षा राष्ट्र के अन्तःकरण स्वरूप में राष्ट्रीय जीवन—पद्धति के निर्धारित के रूप में कार्य कर रही है।' किन्तु यही उच्च शिक्षा वर्तमान में विभिन्न समस्याओं से जुझ रही है। अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए प्रतिदिन द्वन्द से गुजर रही है, उच्च शिक्षा की विभिन्न समस्याएँ जैसे दोषपूर्ण पाठ्यक्रम, उद्देश्यहीनता, स्वायत्ता, अनुशासनहीनता, निर्देशन व परामर्श का अभाव, अपव्यय, विशिष्टीकरण, शिक्षा का माध्यम व दोषपूर्ण परीक्षा—प्रणाली में सुधार के लिए अनेकों सभाएँ, समिति, आयोग एवं नीतियों का गठन व उनकी सिफारिशों की मान्यता व उनके क्रियान्वयन की दिशा में आवश्यक कदम उठाये गये हैं वे निम्नानुसार हैं :—

सन् १९०२ में भारतीय विश्वविद्यालयीन आयोग ने इसके विषय में यह मत व्यक्त किया है कि— "भारत में विश्वविद्यालयीन शिक्षा का महानतम दोष यह है कि शिक्षण, परीक्षा के अधीन है न कि परीक्षा शिक्षण के।"

उच्च शिक्षा की परीक्षा प्रणाली के औचित्य :—

उच्च शिक्षा की परीक्षा प्रणाली का

3. राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमाण पत्र-1

	B.L.D.E. Associations	
S.B. ARTS & K.C.P. SCIENCE COLLEGE, VIJAYAPUR		
RANI CHANNAMMA UNIVERSITY COLLEGE HINDI TEACHERS ASSOCIATION & RANI CHANNAMMA UNIVERSITY COLLEGE KANNADA TEACHERS ASSOCIATION		
Organised Two Day International Seminar		
"INDIAN LITERATURE IN INTERNATIONAL PERSPECTIVE"		
on भारतीय साहित्य का अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य		
Certificate		
This is to Certify that Prof. / Dr. / Shri / Smt. _____ of _____ (अप्रो-अमेरिकन स्त्री से जुड़ी कलित स्त्री की कथन) हैदराबाद विश्वविद्यालय		
Participated in the Two Day International Seminar on "INDIAN LITERATURE IN INTERNATIONAL PERSPECTIVE"		
Organised by Dept. of Hindi, Kannada & Marathi Held on 16 & 17th February 2018		
as Chief Guest [], Chair Person [], Resource Person [], Paper Precentor [], Participant [], Co-ordinator [],		
Title of the paper _____		
		
Dr. S.T. Menavade Co-ordinator	Dr. K.G. Pujari Principal	

4. राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमाण पत्र-2

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY (A Central University established by an Act of Parliament in 1998) Accredited with "A" Grade by NAAC Gaithowli, Hyderabad - 500 032, Telangana State	DEPARTMENT OF HINDI	CERTIFICATE	This is to certify that Ms. / Mr. / Ms. <i>Shruti Pradhan</i> has participated / chaired session / Presented a paper entitled <i>Hasht-e-Majabadi-ye-Jeebhali' Shait</i> in the Two day National seminar on "HASHIYE KA SAMAJ AUR SAHITYA MEIN ASMITA KE UBHARTE NAYE AYAAM" held on 22 - 23 February 2018.
<i>Dr. Dodda Sesnu Babu</i> Convenor		<i>Dr. Mohd. Khalid Mubashir-uz-zafar</i> Head, Department of Hindi	